युगीन
शैक्षिक चिन्तन



कलासन प्रकाशन

कल्याणी भवन

मॉडर्न मार्केट बीकानेर

द्वारा प्रकाशित

युगीन शैक्षिक चिन्तन

प्रा (डॉ) जमनालाल बायती
(पूर्व वरिष्ठ सम्पादक- शिविरा नयाशिक्षक)
उप प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च अध्ययन
शिक्षा संस्थान बीकानेर (राजस्थान)

1996

कलासन प्रकाशन, बीकानेर

सस्करण	प्रथम 1996
मुद्रक	कल्याणी प्रिण्टर्स
	माल गोदाम रोड बीकानेर
	दूरभाष 526890
प्रमुख वितरक	कामेश्वर प्रकाशन
	तेलीवाडा चौक
	बीकानेर-334 005 [राज]
	फोन 0151-524330
मूल्य	120/-
आवरण	पारस भसाली

आत्म कथ्य

समय समय पर लिखे कुछ निबन्धों का संकलन पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। शिक्षा से जुड़े अधिकारी नियोजक शिक्षक तथा उच्च शिक्षा के अध्येता इस कृति से लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक की गुणवत्ता का सही मूल्यांकन तो पाठक ही कर सकते हैं। पुस्तक किसी भी रूप में यदि पाठकों को कुछ नया सोचने के लिए उद्यत कर सकी तो लेखक अपना श्रम सार्थक मानेगा।

पुस्तक की रचना में लेखक को उसकी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा माहेश्वरी से भरपूर सहयोग मिला है। श्रीमती कृष्णा को धन्यवाद देकर उनके सहयोग का अवमूल्यन नहीं किया जाना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि यह पुस्तक उन्हीं की है।

पुस्तक को अल्प समय में पाठकों तक पहुंचाने के लिये लेखक कलासन-प्रकाशन के मालिक श्री मनमोहन जी कल्याणी को अन्तर्मन से धन्यवाद देता है।

पुस्तक के सुधार के लिये पाठकों के रचनात्मक सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
बीकानेर 334001 (राजस्थान)

प्रो (डॉ) जमनालाल बायती
उप-प्रधानाचार्य

संस्करण	प्रथम 1996
मुद्रक	कल्याणी प्रिण्टर्स
	माल गोदाम रोड, बीकानेर
	दूरभाष 526890
प्रमुख वितरक	कामेश्वर प्रकाशन
	तेलीवाड़ा चौक
	बीकानेर-334 005 [राज.]
	फोन 0151-524330
मूल्य	120/-
आवरण	पारस भसाली

आत्म कथ्य

समय समय पर लिखे कुछ निबन्धों का संकलन पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। शिक्षा से जुड़े अधिकारी नियोजक शिक्षक तथा उच्च शिक्षा के अध्येता इस कृति से लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक की गुणवत्ता का सही मूल्यांकन तो पाठक ही कर सकते हैं। पुस्तक किसी भी रूप में यदि पाठकों को कुछ नया सोचने के लिए उद्यत कर सकी तो लेखक अपना श्रम सार्थक मानेगा।

पुस्तक की रचना में लेखक को उसकी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णा माहेश्वरी से भरपूर सहयोग मिला है। श्रीमती कृष्णा का धन्यवाद देकर उनके सहयोग का अवमूल्यन नहीं किया जाना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि यह पुस्तक उन्हीं की है।

पुस्तक को अल्प समय में पाठकों तक पहुंचाने के लिये लेखक कलासन-प्रकाशन के मालिक श्री मनमोहन जी कल्याणी को अन्तर्मन से धन्यवाद देता है।

पुस्तक के सुधार के लिये पाठकों के रचनात्मक सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान
बीकानेर 334001 (राजस्थान)

प्रो (डॉ) जमनालाल बायती
उप-प्रधानाचार्य

अनुक्रम

शिक्षा का स्वरूप

इस विषय पर प्रस्तुत किए जाने वाले अपने विचारा को विद्यार्थी क पराक्षा में लिखे उत्तरों से आरम्भ करने का लोभ लेखक सवरण नहीं कर पा रहा है। अथशास्त्र क प्रश्न पत्र में आर्थिक विकास सूचक पाच प्रमाण मागे थे। किसा विद्यार्थी न इस प्रश्न का उत्तर यों आरम्भ किया

' परीक्षा भवन में बैठे- बैठ परीक्षार्थी आर्थिक विकास के प्रमाण यों लिख रह हाग- भामकाय कारखाना या मिलो की स्थापना हुई हैं पक्की सडक कई गुनी बढ गई हैं खतों की पैदावार बढी है बिजली का उत्पादन कई गुना बढ गया है जगह- जगह चिकित्सालय खुल गए हैं उनम आने वाले रोगिया की सख्या बढी है तालाबों और बाधा की सख्या म वृद्धि हुई है रेलमार्गों का विस्तार हुआ है नए रलमार्ग बने हैं कारखाना से बाहर आने वाले सभी प्रकार क वाहना की सख्या में भारी वृद्धि हुई है चिकित्सा तथा अभियान्त्रिकी शिक्षा के सस्थाना की प्रवश क्षमता बढाइ गई है वहा काम करने वाले कर्मचारियों तथा अधिकारियो की सख्या मे वृद्धि हुई है महानगरों में बहुमजिली इमारतें बनी है बन रही है विद्यालयो तथा महाविद्यालयो की सख्या कई गुनी बढी है उनम शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी बढे हैं। आदि आदि।'

स्पष्ट है कि यह उत्तर किसी सामान्य विद्यार्थी या 13-17 या 18 वर्ष की आयु वर्ग के विद्यार्थी का नहीं है। किसी उम्रशुदा या समझदार आदमी का उत्तर हागा जिसे एक या अन्य कारण से हायर सैकण्ड्री स्कूल परीक्षा के प्रमाण पत्र की जरूरत रही होगी। उसने पीडा के साथ आगे लिखा परीक्षक महोदय आप कृपा कर ठण्डे मस्तिष्क से अपने विवेक से सोचिए कि क्या यही शिक्षा है? यही विकास है? आदमी विकास के लिए है या विकास आदमी के लिए? इसे कोई सोच ही नहीं रहा है। आज मनुष्य मनुष्य के ही खून का प्यासा हा रहा है बलात्कार- चोरी- डकैती क समाचारों से समाचार पत्र भरे पड हैं बनिया हल्दी में ईंट पीस धनिये मे घोडे की लीद तथा हींग म मक्की का आटा मिला कर बेच रहा है कार्यालया में कर्मचारी मिलते ही नहीं हैं फिर समय पर कार्य निष्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता

अनुक्रम

शिक्षा का स्वरूप

इस विषय पर प्रस्तुत किए जाने वाले अपने विचारो को विद्यार्थी क परीक्षा में लिखे उत्तरा से आरम्भ करन का लोभ लेखक सवरण नहीं कर पा रहा है। अर्थशास्त्र क प्रश्न पत्र में आर्थिक विकास सूचक पाच प्रमाण मागे थे। किसा विद्यार्थी न इस प्रश्न का उत्तर यों आरम्भ किया

" परीक्षा भवन में बैठे- बैठे परीक्षार्थी आर्थिक विकास के प्रमाण यों लिख रह हाग- भीमकाय कारखाना या मिलो की स्थापना हुई हैं पक्की सडकें कई गुनी बढ गई हैं खेतों की पैदावार बढी है बिजली का उत्पादन कई गुना बढ गया है जगह- जगह चिकित्सालय खुल गए हैं उनम आने वाले रोगिया की सख्या बढी है तालाबा और बाधो की सख्या मे वृद्धि हुई है रेलमार्गों का विस्तार हुआ है नए रलमार्ग बने हैं कारखाना से बाहर आने वाले सभी प्रकार क वाहनो की सख्या में भारी वृद्धि हुई है चिकित्सा तथा अभियान्त्रिकी शिक्षा के सस्थाना की प्रवेश क्षमता बढाइ गई है वहा काम करन वाले कर्मचारियों तथा अधिकारियो की सख्या म वृद्धि हुई है महानगरों में बहुमजिली इमारतें बनी है बन रही है विद्यालया तथा महाविद्यालयो की सख्या कई गुनी बढी है उनम शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी बढे हैं। आदि आदि।"

स्पष्ट है कि यह उत्तर किसी सामान्य विद्यार्थी या 13-17 या 18 वर्ष की आयु वर्ग के विद्यार्थी का नहीं है। किसी उम्रशुदा या समझदार आदमी का उत्तर होगा जिसे एक या अन्य कारण स हायर सैकण्ड्री स्कूल परीक्षा क प्रमाण पत्र की जरूरत रही होगी। उसने पीडा के साथ आगे लिखा परीक्षक महोदय आप कृपा कर ठण्डे मस्तिष्क से अपने विवेक स सोचिए कि क्या यही शिक्षा है? यही विकास है? आदमी विकास के लिए है या विकास आदमी के लिए? इसे कोई सोच ही नहीं रहा है। आज मनुष्य मनुष्य के ही खून का प्यासा हो रहा है बलात्कार- चोरी- डकैती के समाचारों से समाचार पत्र भरे पडे हैं बनिया हल्दी में ईंट पीसे धनिये म घोड की लीद तथा हींग म मक्की का आटा मिला कर बेच रहा है कार्यालयो में कमचारी मिलते ही नहीं हैं फिर समय पर कार्य निष्पादन का प्रश्न ही नहीं उठता

है निर्माता घटिया दवाइया यना कर रोगियों के प्राणों से खल रहे हैं। मनुष्य इतना सवेदनहीन हो गया है कि पडोस म कौन रहता है उम क्या कष्ट है यह जानना ही हो चाहता कॉलोनी के माध्यम से विकसित सस्कृति ने लोगो को अलग-थलग रहने ? विवश कर दिया है वे दूसरों से मिलना जुलना ही नहीं चाहते टी वी ने भी इस विचारधारा क विकास में मदद की है औद्योगिक एव प्राविधिक विकास से देश सिमट गया है और मानवीय गुणों का लोप हो गया है। कारखानों के पास विकसित गदी झुग्गी झोपडियों मे मानवीय सम्बन्धों का क्या रूप बदला है? मानवता का कितना ह्रास हुआ है यह किसी से छिपा नहीं है। यह कितना सही है कि आदमी जितना अधिक साक्षर [शिक्षित नहीं] हुआ है उतना ही अधिक वह सुधरे हुए तरीके से झूठ बोलना सीख गया है। धोखा देने की सुधरी हुई तकनीक सीख गया है तथा ज्ञान होने पर स्वकेन्द्रित बता कर अपने को दोष से बच निकलने का प्रयत्न करता है।

प्रश्न उठता है कि क्या यही शिक्षा है? यह शिक्षा का प्रतिफल है? नहीं ऐसा नहीं है। सर्वाधिक हानिकारक बात यह हुई कि शिक्षा का अर्थ रोटी- रोजगार लिया जाने लगा है नौकरी शिक्षा का पर्याय समझा जाने लगा है। यहीं से ह्रास आरम्भ हो गया। शिक्षा का अर्थ है- सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् विद्या वह है जो मुक्तिये शिक्षा का अर्थ है विनयी बनना विनीत होना सवेदनशील बनना सामाजिक-सास्कृतिक आध्यात्मिक नैतिक दृष्टि से उपयागी नागरिक बनना। आर्थिक दृष्टि से भी आत्मनिर्भर नागरिक बनना शिक्षा का एक उद्देश्य हो सकता है पर इसे ही शिक्षा के उद्देश्यों मे प्रथम स्थान पर नहीं माना जा सकता। आधिक उद्देश्य ही सब कुछ हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। यदि शिक्षा के उद्देश्यो को क्रमानुसार लिपिबद्ध किए जाए तो आर्थिक आत्मनिर्भता को नीचे जोडा जा सकता है पर इसे शीर्षस्थ स्थान तो कदापि नहीं दिया जाना चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य है- बालक का सर्वांगीण विकास उसके सोचने विचारने का क्षेत्र विस्तृत हो पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर स्वतत्र चिन्तन कर सके सकुचित दृष्टिकोण का त्याग कर सके एक दूसरे के कष्टों में काम आना उसका दु ख बाटना बडो का आदर करना गुरुजनों के प्रति विनीत बनना छोटे स्वार्थ का बडे स्वार्थ के सामने त्याग करना परिवार के सदस्यो के साथ सराहनीय व्यवहार करना पडोसी के प्रति सहानुभूति हमदर्दी रखना सवेदनशील बनना प्राणिमात्र के प्रति दयालु बनना श्रम के प्रति निष्ठा रखना आदि मानवीय गुणों का विकास। साराशत हमारी शिक्षा का रूप उसकी

व्यवस्था भारतीय सामाजिक सास्कृतिक- आर्थिक-नैतिक- आध्यात्मिक तथा दार्शनिक धरती से जुडा होना चाहिए।

प्रकारान्तर से शिक्षा का अर्थ सीखे हुए ज्ञान से बदली हुई परिस्थितिया मे अपने व्यवहार में परिवर्तन लाना है अर्थात् नई स्थितियों में समायोजन करना ही शिक्षा है। गाधी ने इसी को या कहा- मनुष्य में [या बालक में] प्राप्त प्रकृतिदत्त दैहिक आध्यात्मिक सामाजिक नैतिक और सौंदर्यात्मक सम्भावनाओं को गुणों का प्रकटीकरण करवाना। इसी दृष्टि से शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए, विद्यालय में पढाए जाने वाले विषयों का प्रावधान होना चाहिए। उनके अनुसार शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। जब तक बालक का एक भाषा पर अधिकार न हो जाए तब तक दूसरी भाषा का अध्ययन-अध्यापन आरम्भ न किया जाए। भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों में एक अभिव्यक्ति उद्देश्य भी है। ऐसा मानने के पर्याप्त आधार हैं कि बालक मातृभाषा में ही सर्वाधिक अच्छी अभिव्यक्ति कर सकता है। प्राथमिक विद्यालय में बालक को 5 वर्ष की आयु पूरी करने के पूर्व प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए। पूरे देश में ऐसा कानून अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए क्योंकि इस उम्र तक बालक को खेलने-कूदने के पर्याप्त अनगिनत अवसर मिलने चाहिए। इस कच्ची उम्र में उसे विद्यालय मे प्रवेश दिलाकर उसका बचपन नहीं छीनना चाहिए।

मनुष्य नारोग रहे उसे बीमारी न हो इसके लिए आवश्यक है कि बालक को स्वास्थ्य-विज्ञान का ज्ञान कराया जाए, व्यायाम का अभ्यास हो। उच्च स्तर के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों यथा चिकित्सा विधि अभियान्त्रिकी में मानवीय सम्बन्धों पर अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। अध्यापन समाज कार्य प्रबन्धन आदि के पाठ्यक्रमों म अन्य गुणों के साथ ही व्यावसायिकता का अधिक विकास हो ऐसे प्रयत्न किए जाने चाहिए। यह आज के समाज की अनुभूत आवश्यकता है।

शिक्षा की सीढी सभी प्रान्तों म एक समान होनी चाहिए। इससे अभिभावकों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण होने पर वे कठिनाई का सामना करने से बच सकें। ऐसा होने पर उनका कहीं भी प्रवेश आसानी से हो सकेगा। समग्रत शिक्षा के रूप के सम्बन्ध मे जो भी परिवर्तन किए जाएँ वे आधे मन से न हों पूरे मन से दृढता के साथ दूरगामी फलितार्थों की दृष्टि से किए जाएँ। पाठ्यक्रम में जो भी बातें जोडी जाएँ या हटाई जाएँ उनका सभी स्तरो पर दृढता से पालन हो।

मूल्याकन शिक्षा से अभिन्न रूप से जुडा हुआ है। पढाने वाला शिक्षक ही स्वय मूल्याकन करे उसने अध्यापन के समय किन-किन उद्देश्यों को दिमाग

मे रखा है इस दृष्टि से यही अच्छा मूल्याकन कर सकता है यही मूल्याकन वैध भी होता है। पर आज परीक्षाए तो विडम्बना हो गई हैं शिक्षको पर भाति- भाति के दबाव आते हैं वे सही मूल्याकन ही करेंगे यह सदहास्पद ही रहता है। मूल्याकन की सामाजिक या लोक स्वीकृति बनी रहनी चाहिए। यदि किसी विद्यार्थी के चरित्र प्रमाण पत्र मे समय की पाबन्दी गुण की 'सी' ग्रेड दी गई है तो न तो विद्यार्थी अपना प्रमाण पत्र बताना चाहता है तथा न ही नियोक्ता उसे देखने मे रुचि रखता है। नियोक्ता भी नियुक्ति के पूर्व बोर्ड के प्रमाण पत्र को देख लेना पर्याप्त मानता है। प्रयत्न यह किया जाए कि शिक्षक द्वारा विद्यार्थी को दिए 'सी' ग्रेड की महत्ता स्थापित की जाए तथा नियोक्ता उसे देखे भी। तभी शिक्षक का सम्मान बढ़ेगा। पर यहा यह भी जरूरी है कि शिक्षक को भी मूल्याकन में ईमानदार वैध तथा वस्तुनिष्ठ होना पडेगा।

आज शिक्षा का स्तर यह है कि अधिस्नातक शिक्षक कार्यभार सम्भालने का आवेदन पत्र नहीं लिख सकता गणित सहित स्नातक बाजार में सब्जी खरीदते समय चालाक मालिन से ठग लिया जाता है इसलिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार अहम् प्रश्न है इस पर समय रहते विचार किया जाना चाहिए।

आज व्यवहार मे देखा जाता है कि शिक्षा की ललक हर व्यक्ति मे बढी है। पान बेचने वाला भी अपने बच्चे को एम ए बी ए पास देखना चाहता है। इससे सस्थाना में विद्यार्थियो की सख्या मे कई गुनी वृद्धि हो गई है तथा आज लोक कल्याणकारी राजनैतिक व्यवस्था में उन्हे प्रवेश देने से मना नहीं किया जा सकता। बडी-बडी कक्षाओ मे विद्यार्थियो पर शिक्षक वैयक्तिक ध्यान नहीं दे पाता है। शिक्षा प्रशासकों को एसे साधन एव तरीके खोजने चाहिए जिससे प्रत्येक विद्यार्थी का शिक्षक से निजी सम्पर्क बन सके तथा शिक्षक अपने विद्यार्थियो मे वाछित गुणों का विकास कर सके।

इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए कि अध्यापक के पद पर सही व्यक्ति का चयन हो। कल्पना कीजिए कि दो व्यक्ति अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए आशार्थी हैं। एक प्रथम श्रेणी मे एम ए पास माता- पिता की आज्ञा न मानने वाला परीक्षा मे उदण्डतापूर्वक अनैतिक तरीकों से नकल करना पडोसी से सदैव लडने झगडने वाला बातचीत में गाली-गलोज करने वाला तथा दूसरा आशार्थी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण विनीत माता-पिता की इज्जत करने वाला सहपाठियो के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार करने वाला पडोसियो के साथ सवेदनशील शालीन आदि गुणो वाला। कोई भी

विवेकसम्मत या समझदार आदमी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण आशार्थी को शिक्षक के पद पर नियुक्त कर लगा। ऐसे ही अध्यापक सहायक शिक्षण सामग्री की रचना भी कर सकते हैं तथा कक्षा के उपयोग कर अध्ययन का रुचिप्रद बना सकत हैं।

यह याद रखा जाना अत्यन्त जरूरी है कि बड-बड भवनो म ही अच्छी शिक्षा दी जाएगी। यह कोई आवश्यक नहीं है। छोटी इमारतों म शिक्षा की गुणवत्ता पर निवाह किया जा सकता है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात तो यह है कि शिक्षक को बालक के हित म पूरे मन से काम करने को तत्पर बनाया जाए। भव्य भवना का शिक्षकों के परिश्रम-कक्षा के मधुर एव प्ररणास्पद वातावरण जहा बालक सीखता है म सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है।

कक्षाध्यापन के समय बालक का समग्र व्यक्तित्व शिक्षक के सम्मुख रहना चाहिए। बालक किस परिवार से आया है भाई बहिनों की शिक्षा का स्तर क्या है माता-पिता कितना मार्गदशन कर सकते हैं क्या परिवार की पहली पीढी ही विद्यालय मे आई है इन सबस भी बालक को सीखने के लिए उत्प्रेरणा मिलती ह। यदि शिक्षक के दिमाग मे ये सब बात रही हैं तो कम प्रयत्न तथा कम समय में अधिक चीजें बालक का सिखाई जा सकती हैं तथा बालक प्रसन्नतापूर्वक इन बातो को आत्मसात् कर लगा। सक्षेप मे एसा होने पर शिक्षक बालक का अधिक हित साधन कर सकता है।

इन सब बातो के साथ शिक्षा व्यवस्था ऐसी हो कि शिक्षा का प्रबन्ध विकेन्द्रित हो। जिसम हर आदमी अपना महत्व अनुभव कर सक। शिक्षा क प्रत्यक कार्य से सम्बन्धित प्रत्यक व्यक्ति लगाव अनुभव कर उस कार्य को अपना निजी काय मान। सभप म शिक्षा प्रशासन एव प्रबन्ध स यह बात अनुप्राणित होनी चाहिए कि उपयुक्त बालक का सही अध्यापक स उपलब्ध सीमित साधनों से कम से कम लागत पर प्रसन्नतावर्द्धक वातावरण म सही विषयों की उपयुक्त समय पर शिक्षा प्राप्त हो।

❒

अगली सदी की शिक्षा का सम्भावित स्वरूप

एक समय था जब गुरू अपने आश्रम मे शिष्यों को विद्याभ्यास कराते थे न अधिक विद्यार्थी होते थे फलत गुरु शिष्यों में गाढे पारिवारिक मधुर सम्बन्धों का विकास हो जाता था न आज की तरह परीक्षा के लिए छपे पर्चों के प्रश्न पत्र से ही जाँच होती थी शिक्षक ही मौखिक परीक्षा लेते थे और उनके द्वारा दिया परीक्षा परिणाम सर्वत्र सम्मान पाता था। शिष्य के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व शिक्षक पर होता था। आज शिक्षा से दो मुख्य कार्यों की अपेक्षा की जाती है। प्रथम- नागरिकों को विश्व अर्थव्यवस्था के लिए सचेत बनाना तथा दूसरा- उन्हें ज्ञान कौशल तथा ज्ञानोपयोग की दृष्टि से जागरूक नागरिक बनाना। आज स्थितियों में बहुत परिवर्तन आ गया है मात्र पाँच छ वर्ष बाद इक्कीसवीं सदी का शुभारम्भ होने वाला है। आज की शिक्षा गुरुकुल की ही नहीं वरन् 50-60 वर्ष पूर्व वाली शिक्षा भी नहीं

2 कक्षोन्नति के पूर्व जहा आवश्यक हो वहा सेतु पाठ्यक्रम आरम्भ किये जायगे और
3 अनुपयुक्त विद्यार्थियो को परीक्षा में बैठने से ही विधिवत रोक लिया जायेगा।

इस बात की पूरी सम्भावना बताई जा सकती है कि अगली शताब्दी में इन सुझावो पर गम्भीरता से विचार होगा।

आज चारों ओर से आवाज आ रही है कि शिक्षण सस्थाओं म आरक्षण से कार्य का स्तर प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है। यदि यह सही पाया जाता है तो शिक्षण सस्थाओं में मुख्यत उच्च शिक्षा तथा चिकित्सा महाविद्यालयो म आरक्षण पर सावधानी पूर्वक फिर से विचार किया जा सकता है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी मात्र उत्कृष्टता या श्रेष्ठता को ही उच्च शिक्षा का आधार बताया गया है। (मेरिट एलोन विल बी दी बेसिस) आरक्षण के विरोध म आज विश्व में यह बात जोर से उछाली जा रही है कि या तो श्रेष्ठ बनिये या फिर मच छोडिये। प्रकृतिप्रदत्त गुणा लक्षणों तथा योग्यताओं का अधिकतम विकास हो यही सामाजिक न्याय है प्रजातान्त्रिक देशों का कल्याणकारी उद्देश्य है। यदि कोई राष्ट्र ऐसे महत्त्वहीन विषयो पर उलझ जायेगा तो अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। इक्कीसवीं सदी म श्रेष्ठता या उत्कृष्टता पर ध्यान दिया ही जायेगा उसका समुचित उपयोग होगा ऐसी प्रबल सम्भावना लगती है।

स्कूल शिक्षा समाप्त कर उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों मे प्रवेश लेने वाले लगभग 80 प्रतिशत विद्यार्थी मानविकी पाठ्यक्रमों मे प्रवेश लेते हैं तथा उसमें स अधिकाश विद्यार्थी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण होते है जिनको सार्वजनिक सवाओं में किसी भी प्रकार नहीं खपाया जा सकता। इसलिये अगली सदी मे उच्च शिक्षा सस्थान तथा उनमे भी मानविकी सकायों के विकास की सम्भावना बहुत कम रह जायगी।

विद्यार्थी अर्थपूर्ण स्कूली कार्यक्रम के लिए आवाज उठायेंगे कार्यात्मक साक्षरता पर जोर दिया जायेगा। अस्तित्व बनाये रखने तथा फलने-फूलने के लिए युवाओं को क्या जानना चाहिए,समाज तथा देश को किस प्रकार के ज्ञान तथा कौशल की आवश्यकता है इस प्रकार यदि जीवन से जुडी उपयोगी शिक्षा पर यदि आग्रह किया गया तो शिक्षण सस्थाओ से विद्यार्थियो का अलगाव दूर होगा उनकी उनसे सलग्नता बढेगी। आज तो स्थिति यह है कि उन्हें विद्यालय आने का प्रयोजन या उद्देश्य ही मालूम नहीं है। प्रयत्न यह किया जा रहा है कि हर स्तर पर शिक्षा अपने आप में पूर्ण हो। उच्च प्राथमिक शिक्षा मे प्रवेश के लिए प्राथमिक या महाविद्यालय मे प्रवेश के लिए सीनियर

अगली सदी की शिक्षा का सम्भावित स्वरूप

एक समय था जब गुरू अपने आश्रम में शिष्यों को विद्याभ्यास कराते थे न अधिक विद्यार्थी होते थे फलत गुरु शिष्यों मे गाढे पारिवारिक मधुर सम्बन्धो का विकास हो जाता था न आज की तरह परीक्षा के लिए 3-3 घटों के प्रश्न पत्र से ही जाच होती थी शिक्षक ही मौखिक परीक्षा लेते थे और उनके द्वारा दिया परीक्षा परिणाम सर्वत्र सम्मान पाता था। शिष्य के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व शिक्षक पर होता था। आज शिक्षा से दो मुख्य कार्यों की अपेक्षा की जाती है। प्रथम- नागरिकों को विश्व अर्थव्यवस्था के प्रति सचेत बनाना तथा दूसरा- उन्हें ज्ञान कौशल तथा ज्ञानोपयोग की दृष्टि से जागरूक नागरिक बनाना। आज स्थितियों में बहुत परिवर्तन आ गया है। मात्र पाच छ वर्ष बाद इक्कीसवीं सदी का शुभारम्भ होने वाला है। आज की शिक्षा भूतकाल की ही नहीं वरन् 50-60 वर्ष पूर्व वाली शिक्षा भी नहीं है। तो क्या अगली सदी की शिक्षा आज की सदी की शिक्षा से भिन्न नहीं होगी? हागी वह अवश्य ही भिन्न होगी। धुधला ही सही पर आने वाली सदी की शिक्षा का उसके स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

अगली शताब्दी में यह बात जोर पकड सकती है कि शिक्षा के क्षेत्र मे सख्यात्मक विकास की अपेक्षा गुणवत्ता पर अधिक आग्रह किया जाये। प्राथमिक शिक्षा सबको मिले सम्पूर्ण साक्षरता हो पर उच्च शिक्षा पात्र विद्यार्थियो को ही मिले हर किसी को निरुद्देश्य उच्च शिक्षा में प्रवेश न दिया जाये। वे आधे मन से पढते हैं रोजगार मिलने पर पढना छोड देते हैं इससे सत्र के मध्य अन्य विद्यार्थी को प्रवेश भी नहीं दिया जा सकता और इससे मानवीय साधनों का दुरुपयोग होता है । ज्ञान की गहरी भूख वाले सुपात्र विद्यार्थिया को ही उच्च शिक्षा के लिये प्रवेश दिया जाये। इस समस्या के हल के लिए अगली शताब्दी मे निम्नलिखित तीन बातो की सम्भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं -

1 पात्र एव चुनिन्दा विद्यार्थियों को ही उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश मिलेगा

2 कक्षोन्नति के पूर्व जहा आवश्यक हो वहा सेतु पाठ्यक्रम आरम्भ किये जायेंगे और

3 अनुपयुक्त विद्यार्थियो को परीक्षा में बैठने से ही विधिवत रोक लिया जायेगा।

इस बात का पूरी सम्भावना बताइ जा सकती है कि अगली शताब्दी में इन सुझावों पर गम्भीरता से विचार होगा।

आज चारों ओर से आवाज आ रही है कि शिक्षण सस्थाओं म आरक्षण से कार्य का स्तर प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है। यदि यह सही पाया जाता है तो शिक्षण सस्थाओं में मुख्यत उच्च शिक्षा तथा चिकित्सा महाविद्यालया में आरक्षण पर सावधानी पूर्वक फिर से विचार किया जा सकता है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी मात्र उत्कृष्टता या श्रेष्ठता को ही उच्च शिक्षा का आधार बताया गया है। (मेरिट एलोन विल वी दी बेसिस) आरक्षण के विरोध में आज विश्व में यह बात जोर स उछाला जा रही है कि या तो श्रेष्ठ बनिये या फिर मच छोडिये। प्रकृतिदत्त गुणा लक्षणों तथा योग्यताओं का अधिकतम विकास हो, यही सामाजिक न्याय है प्रजातान्त्रिक देशों का कल्याणकारी उद्देश्य है। यदि कोई राष्ट्र ऐसे महत्वहीन विषयों पर उलझ जायेगा तो अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर समुचित ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। इक्कीसवीं सदी में श्रेष्ठता या उत्कृष्टता पर ध्यान दिया ही जायेगा उसका समुचित उपयोग होगा ऐसी प्रबल सम्भावना लगती है।

स्कूल शिक्षा समाप्त कर उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने वाले लगभग 80 प्रतिशत विद्यार्थी मानविकी पाठ्यक्रमों मे प्रवेश लेते हैं तथा उसमें से अधिकाश विद्यार्थी तृतीय श्रेणी में उत्तीण होते है जिनको सावजनिक सेवाओ में किसी भी प्रकार नहीं खपाया जा सकता। इसलिये अगली सदी मे उच्च शिक्षा सस्थान तथा उनमे भी मानविकी सकायों के विकास की सम्भावना बहुत कम रह जायेगी।

विद्यार्थी अर्थपूर्ण स्कूली कार्यक्रम के लिए आवाज उठायेंगे कार्यात्मक साक्षरता पर जोर दिया जायगा। अस्तित्व बनाये रखने तथा फलने-फूलने के लिए युवाओं को क्या जानना चाहिए,समाज तथा देश को किस प्रकार के ज्ञान तथा कौशल की आवश्यकता है इस प्रकार यदि जीवन से जुडी उपयोगी शिक्षा पर यदि आग्रह किया गया तो शिक्षण सस्थाओं से विद्यार्थियो का अलगाव दूर होगा उनकी उनसे सलग्नता बढेगी। आज तो स्थिति यह है कि उन्हें विद्यालय आने का प्रयोजन या उद्देश्य ही मालूम नहीं है। प्रयत्न यह किया जा रहा है कि हर स्तर पर शिक्षा अपने आप में पूर्ण हो। उच्च प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश के लिए प्राथमिक या महाविद्यालय म प्रवेश के लिए सीनियर

माध्यमिक परीक्षा पास होना अनिवार्य न हो प्रवेश के लिए सम्भव है ऐसी दृढता आवश्यक न हो। प्राथमिक शिक्षा पाने के बाद ही वह नागरिक के रूप मे विकसित हो।

आने वाली सदी की शिक्षा का स्वरूप क्या होगा या उसके किस रूप म परिवर्तन की सम्भावना हो सकती है अगली सदी की शिक्षा के परिवर्तना को सुविधा एव स्पष्टता की दृष्टि से कुछ विशिष्ट शीर्षको में लिपिबद्ध किया जा रहा है जो नीचे की पक्तिया स्पष्ट करती है -

शिक्षादर्शन या शिक्षा के सिद्धान्त

शिक्षा के सामाजिक तथा वैयक्तिक उद्देश्यो मे भारी परिवर्तन की अपेक्षा की जा सकती है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तथा सामाजिक उद्देश्य शिक्षा के प्रमुख प्रयोजन माने जाते थे- इन्हीं की दृष्टि से विषय वस्तु का चयन होता है। शिक्षा मुख्यत दो प्रकार से मानी जाती है - उदार या साहित्यिक या किताबी शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा। सामाजिक विकास के लिए शिक्षा या सस्कृति के सरक्षण के लिये शिक्षा या आध्यात्मिक विकास या अवकाश के लिए शिक्षा या वैयक्तिक कौशल प्राप्ति के लिए शिक्षा की जगह अब शिक्षा को ब्रेड एण्ड बटर या रोटी रोजी से जोडा जा रहा है। आज समझ-बूझ भाई-चारे विश्वबधुत्व या वैयक्तिक विकास के लिए शिक्षा आदि उद्देश्य महत्वपूर्ण नहीं रह गये हैं। इसी दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्यो में परिवर्तन होने की प्रबल सम्भावना है तथा आशा की जानी चाहिए कि आने वाली सदी में रोजगार के लिए शिक्षा-शिक्षा के उद्देश्यो मे प्रमुखता से जुड जाये। अग्रेजो के समय में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य लिपिक तैयार करना था। दूसरे शब्दो में आने वाली सदी तक व्यावसायिक शिक्षा का इतना विकास हो जाये कि शिक्षा के अन्य उद्देश्य ओझल हो जाये। किसी को यह मानने मे आपत्ति नहीं हानी चाहिए कि रोजगार के लिए शिक्षा-शिक्षा का बहुत ही सकुचित उद्देश्य है। पर शिक्षा मत्रालय को जिस प्रकार मानव ससाधन विकास मत्रालय शीर्षक से नये रूप मे परिभाषित किया गया है उसी भाति सम्भव है रोजगार के लिए शिक्षा उद्देश्य स्वीकार करते हुए शिक्षा को मानव ससाधन विकास की प्रक्रिया में केन्द्र बिन्दु माना जाय तथा शिक्षा सही अर्थों में कार्य कर सके।

मनोविज्ञान के स्थापित सिद्धान्तों के अनुसार बालक के विकास पर उसके वशानुक्रम तथा वातावरण का प्रभाव पडता है। प्रौढ शिक्षा दूरस्थ शिक्षा सायकालीन कक्षाय पत्राचार पाठ्यक्रम आकाशवाणी एव दूर दर्शन से पाठो का प्रसारण टेप केसेट आदि के विकास एव विस्तार से देश में साक्षरता

का प्रतिशत बढेगा जिसके फलस्वरूप माता पिता आने वाले समय म उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में बालकों की सोच समझ सामान्य ज्ञान, सूचनाये तथा बुद्धि स्तर निश्चित रूप से सकारात्मक ढग से प्रभावित होगा।

पाठ्यवस्तु

वैज्ञानिक एव प्राद्योगिक विकास से विश्व छोटे से दायरे म सिमट कर रह गया है। भौतिक रूप से देश भले ही पास-पास आ गये हों पर वे अभी अपने छोटे-छोटे स्वार्थों म ही उलझे रहते हैं इसस मानवता के वृहद् हितो को हानि पहुची है। इस दृष्टि से विश्वनागरिकता की बातें जोर पकड सकती हैं। आपसी भाई-चारे तथा सवदनशीलता क विकास सूचक बाते पाठ्यक्रम में जोडी जा सकती है। सयुक्त परिवार एक प्रकार से सामाजिक जीवन में बीमा का कार्य करत है पर आजकल एकाकी परिवार ही अधिक विकसित हो रहे हैं। एसी स्थिति मे सयुक्त परिवार आने वाली सदी की शिक्षा व्यवस्था मे महत्वपूर्ण स्थान बना सकते हैं।

आज औद्योगिक विकास तथा अणुयुग अपन विकास का चरम सीमा पर है। लगता है अब ज्ञान तथा सूचना के युग का बोलबाला रहेगा। अगली सदी के पुस्तकालय आज के पुस्तकालयों से भिन्न होंगे वहा भारी भरकम पुस्तकों की जगह माइक्रो फिल्म्स उपलब्ध रहेगी जिनका विद्यार्थी अनेक रूप में प्रचुरता स उपयोग करेंगे। कम्प्यूटर के माध्यम से हर घर कार्यालय सस्था औद्योगिक सस्थान में उनकी आवश्यकतानुसार सूचनाए सग्रह ही नही रहेगी वरन् वे सूचनाए अद्यतन भी होंगी।

इन परिवर्तनों के कारण शिक्षकों की ट्रैनिंग तथा पुन ट्रैनिंग की आवश्यकता निरन्तर बना रहेगी तथा उनके पाठ्यक्रम की विषय वस्तु भी निरन्तर आवश्यकता एव समय के अनुसार बदलती रहेगी।

शिक्षण विधियां -

व्याख्यान विधि से अध्यापन जिसमें विद्यार्थी मात्र श्रोता बन कर रह जाता है अपना महत्व खो देगा। अगली सदी में सिखाने की अपेक्षा सीखने पर अधिक बल रहेगा। इसी दृष्टि से समूह कार्य कार्य गोष्ठी दल कार्य अभिक्रमित अध्ययन स्लाइड्स ऑवर हड प्रोजेक्टर टप रिकार्डर्स कसेट्स पुस्तकालय अध्ययन स्त्रोत विधि का महत्व दिन प्रतिदिन बढेगा ऐसी आशा की जानी चाहिए। अब सम्पूर्ण साक्षरता का नारा जोर पकड रहा है तो स्वअधिगम (सल्फ लर्निंग) के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री तैयार कर शिक्षार्थी को उपलब्ध कराई जायेगी जिससे वे अपनी गति से तथा अपने

फुर्सत के समय का उपयोग कर शिक्षा का लाभ उठायेंगे। जनसाधारण के लिये ये लर्निंग पेकेजेज बडे महत्त्व के हो जायेंगे। इन सब कार्यों के लिये भूमिका निर्वहन ब्रेन स्टार्मिंग अभिनवीकरण सरस्वती यात्रायें महत्वपूर्ण सिद्ध होंगी। इन सब गतिविधियों के लिए शिक्षकों का पुन प्रशिक्षण भी जरूरी होगा। इन सब कार्यों के लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार अध्यापक के पद पर निर्णान्त सही व्यक्ति का चयन किया जायेगा जो अध्यापन को समर्पित शिक्षा में प्रयोगो का समर्थक सत्य का अन्वेषक तथा अनुसधान कार्य में रुचि-सम्पन्न हो। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिक्षण सस्थाएँ विज्ञान अनुसधान तथा सस्कृति के सरक्षण परिवर्द्धन तथा सशोधन की केन्द्र बन जायेगी।

अध्यापक-विद्यार्थी सम्बन्ध -

ऊपर के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अगली सदी में बालक की बुद्धि एव उसके तार्किक स्तर में अभूतपूर्व सुधार होगा। ऐसा होने पर बच्चों से बिना सोचे समझे आज्ञा पालन की आशा नही की जा सकेगी। यदि माता-पिता ने किसी काम को करने से बच्चे को मना किया तो सम्भव है बालक तत्काल आज्ञा का पालन न करे। गुणावगुण की दृष्टि से वह आज्ञा को देखेगा समझ में न आने पर बालक माता-पिता से तर्क वितर्क भी कर सकता है। अपेक्षा यह भी की जा सकती है कि मातापिता से तर्क करके सन्तुष्ट होकर ही उनकी आज्ञा का पालन करे। इसी भाति यदि कक्षा मे अध्यापक ने उसे कभी दण्ड स्वरूप बेंच पर खडा होने को कहा तो वह तत्काल अध्यापक की आज्ञा मान लेगा ऐसा भी नहीं सोचा जाना चाहिए। बालक बेंच पर खडा होने के पूर्व अपने अपराध का कारण तथा उसकी गम्भीरता भी जानना चाहेगा तभी वह आज्ञा पालन करेगा। अध्यापकों तथा माता-पिताओं को भी बालक के इन तर्कपूर्ण विवादो को सुनने समझने को तथा उत्तर देने के लिए अपने आपको तैयार करना चाहिए। उन्हें यह बात अपने दिमाग से बाहर निकाल देना चाहिए कि वे आयु में बडे होने से तथा अधिक अनुभवी होने से अपनी हर बात बच्चों से मनवा लेंगे।

विद्यार्थी तो विनीत है उसके शालीन तथा विनीत न होने का प्रश्न ही नही है। प्रश्न यदि है तो मात्र यह कि बाल सुलभ जिज्ञासा वृत्ति पर ध्यान दिया जाये और बालक की समय पर उचित मार्गदर्शन की आशा धुमिल न हो। बालक कोई भी कार्य करने के पूर्व अध्यापक या माता-पिता की आज्ञा का पालन करने के पूर्व यदि अपनी शका का समाधान या जिज्ञासा का हल चाहता है तो अध्यापक एव माता-पिता को इसे स्वीकार करना चाहिए

और उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में लेना चाहिए। जिज्ञासा वृत्ति के वशीभूत हो कर ही बालक पूछ रहा है तथा इसे अनुशासनहीनता या अवज्ञा के रूप में नहीं लेना चाहिए।

कक्षा व्यवस्था –

आज कक्षा व्यवस्था में काफी परिवर्तन आ गया है। आज अभिक्रमित अध्ययन विधा कोई नई बात नहीं रह गई है। यही बात दूरदर्शन के लिए भी कही जा सकती है। सम्पन्न विद्यालयों में दूरदर्शन का शिक्षण में भरपूर उपयोग हो रहा है। इस विधा में सही उत्तर उत्प्रेरणा के रूप में प्रयोग किया जाता है विद्यार्थी उत्प्रेरणा पाकर अपनी गति से आगे पढ़ता चलता है। इस तकनीक के प्रयोग होने पर कक्षाकक्ष आज के समान नहीं होंगे। अध्यापन स्वअधिगम के सिद्धान्त के अनुसार आगे बढ़ता चला जायगा। इससे स्पष्ट है कि 21वीं शताब्दी में कक्षाकक्ष का रूप आज से निश्चित रूप से भिन्न होगा और आज के कक्षाकक्ष उस समय तक आउट डटेड हो जायेंगे।

इक्कीसवीं शताब्दी में विद्यालय भवनों तथा प्रयोगशालाओं का सघन उपयोग होगा-विद्यालय पारियों में लगेंगे व भवन कभी बेकार खाली नहीं रहेंगे। भवन का विद्यालय में अवकाश के समय सामुदायिक केन्द्र के रूप में उपयोग होगा पुस्तकालय-वाचनालय सामान्य नागरिकों के लिए खोल दिये जायेंगे। विद्यालय पारियों में लगने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षा की अवसर लागत समाप्त हो जायेगी क्योंकि बच्चे अपनी सुविधानुसार पारी में पढ़ सकेंगे तथा शेष समय पिता के साथ काम कर उनकी मदद कर सकेंगे या पृथक से अंशकालीन या पूर्ण समय का काम कर परिवार की आय बढ़ा सकेंगे। शालाओं का लम्बा अवकाश कृषकों की सुविधानुसार या फसलों के कार्याधिक्य के समय रखा जाए-कृषकों की ऐसी माग प्रस्तुत हो सकती है।

इससे भी अधिक किसान शोषण से मुक्त होने के लिए शिक्षा की माग करेंगे। इससे सम्भव है खेतों तथा चरागाहों पर ही स्कूल चलने लगे। कई बच्चे तो परिवार के छोटे-छोटे कार्यों को छोड़ कर भी पढ़ना पसंद करेंगे। ये पढ़ाई का प्रमाण पत्र प्राप्त कर उच्च पदों की ऊंची-ऊंची नौकरियों की आशा करते हैं ये महत्वाकांक्षाएं सजोये रहेंगे फिर चाहे वे एक ही कक्षा में कई वर्ष रह कर पास करें। पाठ्यक्रम को राष्ट्र की तथा गाव की आवश्यकताओं से जोड़ा जायेगा। यदि ऐसा सही अर्थों में हो गया तो पढ़ाई बीच में छोड़ने वालों की संख्या बहुत घट जायेगी क्योंकि तब शिक्षा उनको अर्थपूर्ण लगने लगेगी।

विज्ञान के विकास के साथ साथ मनोरंजन के साधनों में भी विकास हुआ है एवं विस्तार भी। खेलने तथा मनोरंजन के साधनों का उपयोग करने के बाद विद्यार्थी के पास समय ही कहां बचेगा कि वह गृह कार्य पूरा करे। ऐसी स्थिति में विद्यालयों को पुनर्विचार करना पड़ेगा और बहुत सम्भव है विद्यार्थियों को या तो गृह कार्य से मुक्ति मिल जायेगी या फिर यदि किसी अध्यापक ने गृह कार्य पर जोर दिया या आग्रह किया तो उन्हें गृह कार्य कक्षा में ही अध्यापक के मार्गदर्शन में ही पूरा करना पड़े। ऐसी स्थिति में बच्चों को भारी भरकम बस्ता घर से लाने से मुक्ति मिल जाय तथा पुस्तकें विद्यालय में ही रखी रहे। इससे शिक्षकों को अद्यतन जानकारी रखनी होगी अन्यथा वे छात्रों में विनोद के पात्र हो सकते हैं। विद्यार्थी जब विद्यालय से घर जायेंगे तो उन्हें गृह कार्य का भूत नहीं सतायेगा।

मनोरंजन के इन साधनों का एक प्रभाव कक्षा के सामाजिक संगुथन (सोशल कोहेसन) पर भी पड़ेगा। व्यवहार में आप देखते हैं कि आज चारों ओर कालोनी संस्कृति विकसित हो गई है। इन कॉलोनियों में उच्च आय वर्ग के नागरिक मध्य या निम्न आय वर्ग के नागरिकों के घरों पर या मध्यम आय वर्ग के नागरिक निम्न आय वर्ग के नागरिकों के यहां नहीं आते-जाते इससे न केवल प्राचीन सामाजिक व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है वरन् विद्यार्थियों का ठीक प्रकार से समाजीकरण भी नहीं हो रहा है बालक अलग थलग रहने लगे हैं तथा अपने से निम्न आय वर्ग के बालकों से मिलना जुलना बंद कर रहे हैं उनके सामाजिक सम्बन्धों का क्षेत्र अब छोटा हो रहा है। इस भांति उनकी सामाजिक दुनिया छोटे से क्षेत्र में सिकुड़ कर रह जायेगी और वे केवल अपने आप में केन्द्रित होते जायेंगे। पड़ौसी या सहकर्मी या सहपाठी के प्रति उनकी संवेदना समाप्त हो जायेगी इससे उन्हें कोई मतलब नहीं रह जायेगा कि पड़ोसी किस कष्ट या दुख दर्द में रह रहा है। एक विस्तृत क्षेत्र में होने वाली अन्तः क्रिया (इन्टेरेक्सन) से विद्यार्थी वर्ग वंचित हो जायगा। दूरदर्शन ने भी इस विचार के विकास में मदद की है। बच्चे अपने ही घरों में दूरदर्शन के सामने बैठे रहते हैं किसी से मिलते जुलते ही नहीं इससे सांस्कृतिक रूप से पिछड़ने (कल्चरल लेग) की पूरी पूरी सम्भावना है। यह पिछड़ापन बालक को किस प्रकार प्रभावित करेगा यह तो भविष्य ही बतायेगा।

मूल्यांकन एवं परीक्षायें -

आज परीक्षा व्यवस्था शिक्षा प्रशासकों के लिये संस्था प्रधानों के लिये सबसे गम्भीर समस्या बनी हुई है। परीक्षाओं के आयोजक नकल रोकने

के जो जो भी उपाय करते हैं परीक्षार्थी उन्हें नकारते हुए नकल करने के नये नये तरीके खोज लेते हैं। आज लगभग सभी शिक्षा बोर्ड वस्तुनिष्ठ प्रश्न प्रश्नपत्रों में जोड रहे हैं। सम्भव है अगली सदी म विश्वविद्यालयों की परीक्षार्थियो म भी इन्ह जोडा जाय। इससे प्रश्नो की सख्या बढ जायगी तथा परीक्षार्थिओं को पूरा पाठ्यक्रम पढना होगा। शिक्षकों को वस्तुनिष्ठ परीक्षा की तकनीक तथा दर्शन से परिचित कराने क लिए प्रशिक्षण देना होगा। यदि ऐसा हो सका तो परीक्षा की वैधता बढ जायेगी। यह भी सम्भव है कि वार्षिक परीक्षा के बजाय सिमेस्टर प्रणाली चालू हो जाय। कुछ विश्वविद्यालयों में इसे आरम्भ किया गया है अन्य कुछ ने इसे चालू कर स्थगित कर दिया। सम्भव है इस अनुभव का लाभ उठाकर सभी सावधानिया बरतते हुए पुन सही एव पूरे मन से तथा गम्भीरता के साथ इसे चालू कर दिया जाय।

आज जो परीक्षाए आयोजित होती है वे मुख्यत सूचनाओं की परीक्षा होती है। आने वाले समय मे कौशल तथा ज्ञानोपयोग की दृष्टि से परीक्षा का स्थान महत्वपूर्ण बन जाय।

आज अधिकाश परीक्षाओं में अक दिये जाते हैं जो कई अवाछित तत्वों तथा बुराइयो को जन्म देते हैं कई छात्र तो अपनी जीवन लीला ही समाप्त कर लेते हैं। कई स्थानों पर 48 प्रतिशत तथा कई स्थानो पर 45 प्रतिशत पर द्वितीय श्रेणी प्रदान की जाती है। जो भी स्थिति हो 47 या 44 प्रतिशत को तृतीय श्रेणी दी जायेगी। व्यवहार मे यह अन्तर सुक्ष्मातिसूक्ष्म है जिसम नापने या गिनने की भी गलती हो सकती है तथा विद्यार्थी का अहित हो सकता है। इस मानवीय कमजोरी को दूर करने के लिए ग्रेडिग पद्धति अगली सदी में विधिवत अपनाई जा सकती है ।

परीक्षाओं में नकल की समस्या से परेशान होकर कई शिक्षाशास्त्री अगली शताब्दी मे परीक्षा ही समाप्त कर देने का सुझाव देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा सस्थान के खुलने के दिना की सख्या तथा विद्यार्थी के उपस्थित होने के दिना की सख्या का प्रमाण पत्र परीक्षार्थी को दे दिया जाये। आखिर इस परीक्षा का उपयोग ही क्या है? जब नियोक्ता या अन्य पाठ्यक्रम वाले अपनी प्रवेश परीक्षाए आयोजित करते हैं। चिकित्सा अभियान्त्रिकी शिक्षा आयुर्वेद समाजकार्य आदि सभी अपनी परीक्षाए आयोजित कर प्रवेश देते हैं इसी भाति बैंक तथा अन्य नियोक्ता अपनी अपनी परीक्षाए आयोजित करते हैं तो इन परीक्षाओं की उपयोगिता या वैधता ही क्या है? लगता है कि इनकी सामाजिक स्वीकृति समाप्त हो गई है तो फिर विद्यार्थी को उसके विद्यालय में उपस्थिति के दिना की सख्या का प्रमाण पत्र दे कर पिड छुडा लेना समीचीन लगता है।

अगली सदी मे इस बात की भी प्रबल सम्भावना हो सकती है कि विधि द्वारा खुली पुस्तक परीक्षा प्रणाली को मान्यता प्रदान कर दी जाय। एसी स्थिति मे प्रश्नपत्र बनाना सरल नहीं होगा- शिक्षकों को सदैव ही अपने को अद्यतन बनाये रखना होगा। किस विषय या प्रकरण पर कौनसी नई पुस्तक बाजार में आई है- इसे टाला नहीं जा सकता। विद्यार्थियो का भी विस्तृत अध्ययन क लिए अपने आपको तैयार करना होगा-उन्ह अधिक मानसिक व्यायाम की आदत डालनी होगी तभी व भी परीक्षा मे अच्छे अक प्राप्त कर सकेगे या सम्मानपूर्ण उत्तीर्ण होग।

शिक्षा का प्रबन्ध

शिक्षा का प्रबन्ध अगली शताब्दी तक एक महत्वपूर्ण विषय के रूप मे उभर जायेगा फिर भी इस क्षेत्र में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन की तो आशा नहीं की जा सकती पर इतना अवश्य ही कहा जा सकता है कि शिक्षा के प्रबन्ध म निजी प्रयासो की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे निजी प्रयास सरकार के साथ कधा से कधा मिला कर आगे बढ सकते हैं। कडवरिज या टाटा या बिडला बधुओं के योगदान के समान ही कई समाजसेवी और भी आ सकते हैं तथा शिक्षा का आर्थिक भार वहन करने को तत्पर हो सकते है। सरकार निजी प्रयासो का शिक्षा के विस्तार के लिए वेतन पर शत प्रतिशत अनुदान दे कर प्राथमिक शिक्षा को महत्व दे रही है। जनसाधारण की जेब पर कुछ ही विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करे भविष्य मे यह भी सम्भव नहीं होगा।

शिक्षा का स्तर गिरने का एक प्रमुख कारण स्वय शिक्षा का विस्तार है। स्वतन्त्रता के बाद विद्यालय उनमें पढने वाले विद्यार्थी तथा शिक्षक कई गुने बढे हैं। पर उनक परिवीक्षण क लिए उपयुक्त कार्मिको का आप्रवेश नहीं हुआ है उनकी भर्ती नहीं हुई है। इससे शिक्षा की गुणवत्ता में कमी आई है। पर आने वाले समय मे इस पक्ष पर उचित ध्यान दिया जायेगा ऐसी सम्भावना बताई जा सकती है।

शिक्षा प्रशासन के पाठ्यक्रम को अद्यतन बनाया जा रहा है जो अगली सदी तक पूर्ण विकसित हो जायेग। अब प्रशासन का स्थान प्रबन्धन के पाठ्यक्रम ले रह हैं। पर अभी तक उच्च प्रशासकों को प्रत्यास्मरण पाठ्यक्रमों से प्रशिक्षित नहीं किया गया है। प्रबन्धन के नये पाठ्यक्रमों म प्राधिकारिता का प्रत्यायोजन पक्ति एव सूत्र सम्प्रेषण प्रणाली सगठन विधि एव शोध निर्णय प्रक्रिया मानवीय सम्बन्ध आदि नये प्रकरणों को सम्मिलित किया जा रहा है जो प्रशासको में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित कर सकेगे। इस प्रकार अगली सदी का शिक्षा

प्रशासन एव प्रबन्धन उद्देश्यों पर आधारित होगा तथा सख्ती से पालन भी किया जायेगा।

अगली शताब्दी म निजी विद्यालयों या अग्रेजी माध्यम के विद्यालयों या पब्लिक स्कूलों की माग असीमित रूप से माता पिता द्वारा उठाई जा सकती है। पर इसे सरकार कानून वना कर, सम्भव है नियन्त्रित कर लगी क्योंकि कोई भी सरकार अभिभावको को विद्यालय प्रबन्धको के शोषण से अवश्य ही बचाने का उपाय खोजेगी वह उनको प्रबन्धकों की दया पर नहीं छोड सकती। समाज के प्रभावी नेता व्यावसायिक शिक्षा सस्थान भिन्न भिन्न क्षेत्रों में खोलने का प्रयास करेगे ऐसे पाठ्यक्रम छोटी छोटी अवधि के भी हो सकते हैं जिससे वे रोजगार माध्यम या साधन बता कर प्रवशार्थियों को आकर्षित कर सकेगे। पर स्थिति में निरन्तर उतार चढाव आता रहेगा इसकी पूरी पूरी सम्भावना रहेगी।

आज हर कार्य कन्द्रीकरण पद्धति से हो रहा है। किसी पाठ्यक्रम म प्रवेश सेवा में आप्रवेश, पाठ्यक्रम पाठ्यपुस्तके परीक्षा का आयोजन परीक्षाफलों की घोषणा आदि। इस व्यवस्था में नोकरशाही के कारण कई स्तरो पर कार्य बिगडे हैं तथा उनका वाछित स्तर बना नहीं रह पाया है। आज स्थान स्थान पर विकेन्द्रीकरण के लाभ गिनाये जा रहे हैं। स्वायतशासी विद्यालय एव महाविद्यालय डीम्ड विश्वविद्यालय राष्ट्रीय महत्व के शोध सस्थान इसी विचारधारा के पोषक हैं। सम्भव है अगली शताब्दी में इनका पूर्णरूप विकास हो जाय। निजी विश्वविद्यालय भी इसी प्रकार का विचार है जो क्रमश बल पकड सकता है। शिक्षा में नवाचार तथा प्रयोग के आधार पर इक्कीसवीं सदी में इन कार्यों का महत्व बढ सकता है। कुछ निजी सस्थान यहा तक कि मान्यताहीन सस्थान भी शिक्षा का वाछित स्तर बनाये रखते हुए अच्छे पाठ्यक्रम चला रहे हैं तथा समाज मे सम्मान प्राप्त किये हुए हैं।

यदि कभी प्रधानाचार्य में खेलकूद प्रतियोगिताओं की तिथियों की घोषणा की या विद्यालय बस का रास्ता निश्चित कर दिया तो यह विद्यर्थियों को सहर्ष स्वीकार होगा ही ऐसी अपेक्षा नहीं की जा सकती है। तिथियों की उपयुक्तता या अनुपयुक्ता या बस के रास्ते का सुविधाजनक या असुविधाजनक होने पर विद्यार्थियों की राय भी ली जानी चाहिए। इस प्रकार के प्रधानाचार्य के निर्णयन मे विद्यार्थी भी महत्वपूर्ण भूमिका रख सकते हैं इसी भाति विद्यालय प्रशासन में भी विद्यार्थियों की महत्वपूर्ण भागीदारी हो सकती है। इक्कीसवीं सदी में विद्यार्थी सदैव ही प्रधानाचार्य की हा में हा मिला देंगे ऐसा नहीं सोचा जाना चाहिए।

अगली सदी में दूरस्थ शिक्षा के विकास की प्रबल सम्भावनाय हैं।

प्रथम तो नियोक्ता पूर्व से कार्य कर रहे अपने कर्मचारियो को नई विधियो से प्रशिक्षित करना चाहते हैं जिससे वे नवाचार या विवेकीकरण के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनो से परिचित हो सके। इस कार्य मे स्वय कर्मचारी भी रुचि लेंगे क्योकि वे अधिक शिक्षा प्राप्त कर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहेंगे। ऐसी शिक्षा की व्यवस्था अवकाश के समय में कार्यालय समय से पूर्व या बाद मे सप्ताहान्त मे की जा सकती है इससे पृथक भवनों की आवश्यकता नहीं रहेगी तथा उपलब्ध भवनो का ही सघन उपयोग किया जा सकेगा पत्राचार पाठ्यक्रमों का विस्तार होगा।

जो किन्हीं कारणो से उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके या बदली हुई स्थितियों में उच्च शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जा रही है या महिलाये अब अपनी शिक्षा जारी रख कर अन्य विषयों की शिक्षा प्राप्त करना चाह रही हैं जो गरीब या निचले वर्ग के लोग औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा सके उनके लिए मुक्त शिक्षा सस्थान वरदान सिद्ध होगे। पाश्चात्य देशों मे शिक्षित महिलाये अन्य विषयों की उदाहरणार्थ मनोविज्ञान समाज शास्त्र प्रबन्धन गृह अर्थशास्त्र आन्तरिक सज्जा आदि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रचुरता से आगे आ रही हैं तथा वे अनौपचारिक शिक्षा सस्थाओ से नियमित छात्र न बन सकने के कारण लाभ उठा रही है। ऐसे पाठ्यक्रम अगली सदी में अति लोकप्रिय होगे इसकी पूरी पूरी सम्भावना है।

यदि धुधले भविष्य से दुनिया को बाहर लाना है इस सम्बन्ध में इक्कीसवीं शताब्दी के विद्यार्थी से बहुत कुछ आशा की जानी चाहिए, नव विकास के प्रतिमान से उन्हे परिचित कराना चाहिए। आज मानवता विकास के उस बिन्दु पर पहुच गई है जहा भौतिक सम्पदा भी निरर्थक हो रही है। अब तो प्रश्न यह है कि प्राप्त सम्पदा का उपयुक्त वितरण कैसे हो? तथा मानव प्रकृतिदत्त अपनी क्षमताओं योग्यताओ तथा कौशलो का प्रकृति से सतुलन बनाते हुए विकास कैसे करे? इस सार्थक एव महत्वपूर्ण कार्य के लिए सबकी आखे विद्यालयों पर लगी हुई हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इक्कीसवी शताब्दी के विद्यार्थी को अधिगम की नव प्रक्रिया जाननी होगी।

सक्षेप मे अगली सदी की शिक्षा के सम्भावित स्वरूप पर ऊपर की पक्तियों मे प्रकाश डाला गया है।

❒

शिक्षा मे नवाचार

विद्यालय समाज के लघु रूप म शैक्षिक सुधार तथा समाज की पुन रचना हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विद्यालय दिन-रात समस्याओ तथा चुनौतियो का सामना करते है। समाज की समस्यायें मूलत विद्यालय की ही समस्यायें हैं। इसलिए विद्यालयों को अद्यतन ज्ञान नवीन तकनीक नई सूझबूझ से जानकार होना चाहिए, उन्हें समस्याओं के हल के लिए प्रयत्न करने चाहिए। इन समस्याओ तथा चुनौतियों को हल करने क लिए नवीन कार्यक्रमो नये साधनों तथा नवाचारों पर कार्य करत हैं प्रयाग करते है। इसी भाति विद्यालयों द्वारा भिन्न-भिन्न तरीकों से शैक्षिक नवाचारो पर कार्य किया जाता है। समाज मे परिवर्तनों के कारण विद्यालयो के सामने समस्यायें आती रहती है। विद्यालयो में परिवर्तन पर आग्रह ही शैक्षिक नवाचारों पर विचार करने के अवसर प्रस्तुत करता है। शैक्षिक प्रशासक तथा नियोजक ही शैक्षिक समस्याओं तथा चुनौतियों का सामना करते हैं।

सामान्यतया नवाचार से अर्थ लिया जाता है-परम्पराओ से हटना कार्य सम्पन्न करने की रोष की विधिया से हटना उनम परिवर्तन करना। 'नवाचार शार्टर आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्सनेरी' के अनुसार का अर्थ है-नवीनताओं का समावश पूर्व से चली आ रही परम्पराओ में विकल्प की स्थापना नवीन अनुभव तथा सुस्थापित विधियों में परिवर्तन। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने अपने एक प्रकाशन मे नवाचार को इस प्रकार परिभाषित किया है। उसके अनुसार नवाचार का अर्थ है कि परम्परागत प्रक्रियाओं विशेषत दैनन्दिन अनुभवों नियमों तथा उनमें हेर-फेर ही नहीं वरन् उनम उन पद्धतियों का उपयोग किया जाता है जो बडे सयम तथा धैर्य क साथ किये गये वैज्ञानिक अध्ययन का फल होती हैं और जिनका उद्देश्य लक्ष्य तथा साधन के बीच सर्वोपयुक्त सामञ्जस्य स्थापित करना तथा यह सुनिश्चित करना होता है कि प्रत्येक प्रयत्न से सर्वाधिक फल मिले। इसी भाति शैक्षिक नवाचार को शैक्षिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण घटक के रूप में नये तत्व के समावेश के रूप में-एक प्रेरक शक्ति एव सुस्थापित एव परम्परागत रूप से भिन्न व्यावहारिक राय के रूप में परिभाषित किया जाता है।

नवाचार शब्द की सन्धि-विच्छेद करे तो दो शब्द सामने आते है नव तथा आचार। नव शब्द नवीन का सूचक है तथा आचार शब्द परिवर्तन का। अत नवाचार का अर्थ हुआ -ऐसा परिवर्तन जो स्थापित विधियों परम्पराओं तथा प्रक्रियाओं में नवीनता का समावेश कर।

शिक्षा के क्षेत्र में नवाचार मूलत प्रयोग क बाद एव शिक्षा प्रणाली का अग बनने के पहले की स्थिति है। यदि किसी तत्व तकनीक अवस्था या कारक का प्रभाव ज्ञात करने की योजना बनाई जाती है तो यह योजना ही प्रयोग कहलाती है। स्पष्ट है कि प्रयोग का क्षेत्र छोटा होगा। प्रयोग के अनुभव से लाभ उठा कर ही उसका क्षेत्र विस्तृत किया जायेगा। क्षेत्र को विस्तृत बनाने के पूर्व सशोधन यदि कोई हो तो किया जायेगा। शिक्षा के क्षेत्र म उत्साह जरा ज्यादा ही दिखता है विचार-विमर्श तथा अनुभव के आधार पर उनकी सफलता के प्रति आश्वस्त हो रहा जाता है। फिर भी प्रयोग के रूप में समय सीमा तथा क्षत्र का सीमाकन कर डर या सन्देह या अनिश्चय की स्थिति मिटा लेना चाहते हैं। इसका महत्त्व इसलिए भी है कि यह प्रयोग सामान्य व्यवस्था से दूर हट कर कुछ नवीनता लिए हुए है कार्य विधि में परम्परा से हट कर विचार किया गया है। प्रयोग से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रयोग पर आधारित परिवर्तन शिक्षा प्रणाली या व्यवस्था के अनुकूल रहेगा या नहीं। इस प्रकार पन्नालाल वर्मा (1983)[1] कहते हैं-"नवाचार शिक्षा प्रणाली के अग बनाये जाने का पूर्वाभ्यास मात्र है।'

नवाचार को स्वीकार करने की प्रक्रिया कई अवस्थाओ से गुजरती है। ई एम रोजर्स के अनुसार ये अवस्थाए निम्नलिखित पाच है-बोध या जानकारी रुचि मूल्याकन परीक्षण और अगीकरण

व नवाचारो को स्वीकार करने वाले अधिकारियो को भी पाच भागो मे बाटते हैं-

1 प्रवर्तक 2 प्रारम्भिक अगीकारी 3 प्रारम्भिक बहुसख्यक 4 विलम्बित बहुसख्यक तथा 5 फिसड्डी

नवाचारों को प्रोत्साहित करने के लिए शैक्षिक उपयोगिता को प्रेरणा मानना ठीक है क्योकि जब तक शैक्षिक उपयोगिता या लाभ की सभावना दिखाई नहीं देती तब तक शिक्षक या शिक्षण सस्था उन शैक्षिक नवाचारो को कार्यरूप देने का निर्णय नहीं ले पायेंगे अर्थात उन शैक्षिक नवाचारों पर

1 डा पन्नालाल वर्मा (राजस्थान मे नवाचार दशा और दिशा) शिविरा बीकानेर प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा निदेशालय जनवरी 1983 पृष्ठ 361

कोई भी कार्य करने की जोखिम नहीं उठायगे। स्पष्टत अध्यापक को अपने काम में सुधार की ललक शिक्षा स्तर उन्नयन करने की उनकी जीवन- अभिलाषा ही नवाचार की ओर प्रेरित करती है। दूसरे शब्दो में अध्यापक मे अपने काम के प्रति असतोष हो उन्हें सुधार की सभावनाएँ स्पष्ट दृष्टिगोचार हो तथा उन सभावनाओं पर कार्य करने की दृढ इच्छा तथा निश्चय ही शिक्षा मे नवाचार के लिए रीढ की हड्डी है। इस भाति शैक्षिक नवाचार शैक्षिक प्रगति का रथ माना जा सकता है।

यहा कुछ और नवाचार शब्द की परिभाषाए देना अप्रासगिक नहीं होगा-
कोई विचार व्यवहार या वस्तु जो नया है और वर्तमान रूप से गुणात्मक दृष्टि से भिन्न है, नवाचार कहलाता हैं।

-- एच जी बार्नेट

नवाचार एक ऐसा विचार है जिनमें व्यक्ति नवीनता का अनुभव करता है।

-- ई एम रोजर्स

नवाचार सचेत रह कर किया जाने वाला नवीन तथा विशिष्ट परिवर्तन है जिसे किन्ही उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए अधिक प्रभावी माना जाता है।

-- एम बी माइल्स

एक अभिवृति कौशल एव उपकरण या इनमे से दो या दो से अधिक लक्ष्य जिन्हें एक व्यक्ति या सस्कृति द्वारा पहले व्यावहारिक दृष्टि से न अपनाया गया हो ही नवाचार का सम्प्रत्यय है।

-- एच एस भोला

शैक्षिक नवाचारों के माध्यम से श्रेष्ठ एव मितव्ययी अध्यापन तकनीके उपलब्ध कराना शैक्षिक प्रशासन में परिवर्तन लाना तथा शिक्षण सस्था को जागरूक एव गतिशील बनाये रखना है। शैक्षिक नवाचार का उद्देश्य अध्यापन-विधि शैक्षिक प्रशासन शैक्षिक नियोजन तथा शैक्षिक चिन्तन को अधिकाधिक बौद्धिक तर्क सगत सजग सहज तथा उपयोगितावादी मानदण्डों पर अग्रसर करना है। शैक्षिक नवाचार अध्यापक की इस बात मे मन्द करता है कि उसके प्रयत्न बेकार न जाए तथा उसके प्रयत्नो का अधिकाधिक सुफल मिले।

देश में समय-समय पर विभिन्न शैक्षिक नवाचारों पर कार्य किया गया है। कुछ नवाचार भिन्न भिन्न स्थानों पर सयुक्त प्रयासा के रूप मे शुरू किये गये हैं। उनकी भविष्य में क्या स्थिति होगी? इस पर भी विचार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद नई दिल्ली के क्षेत्रीय सेवा प्रसार विभाग ने 1965 में एक मासिक पत्र "दि न्यू प्रेक्टिसेज

इन स्कूल्स' नाम से शुरू किया था जो दुर्भाग्यवश अपने शैशव म ही 1959 मे बद हो गया। भारत सरकार के शिक्षा मत्रालय ने राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एव प्रशासन महाविद्यालय की सहायता स 1970-71 में भी प्रान्तों मे चल रहे 58 शैक्षिक नवाचारों का अध्ययन किया।

यहा यह स्पष्ट किया जाना उचित जान पडता है कि नवाचार तथा नये या ताजा विचारो (Innovations or New or Recent Trends) मे कैसे भेद किया जायेगा? किसको नवाचार कहा जाये तथा किसको नया विचार। नये या ताजा विचार सापेक्षिक शब्द हैं। नील के विद्यालय मे मुक्त अनुशासन था किसी प्रकार का आदेश विद्यार्थियो को नहीं दिया जाता था। शिक्षार्थी प्रकृति से ही सीखते थे सभव है यह विचार डूगरपुर जिले की तहसील के किसी गाव के लिये आज भी सिद्धान्तत शैक्षिक नवाचार माना जाय। इसी भाति प्रधानाध्यापक वाक्पीठ जो लगभग तीन दशाब्दियों से राजस्थान मे कार्य कर रही है उदयपुर जिले की भीम तहसील क किसी भी गाव के लिए शैक्षिक नवाचार नहीं है जबकि यह प्रधानाध्यापक वाक्पीठ का सम्प्रत्यय अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में नवाचार माना जा सकता है। इस प्रकार किसे नवाचार माना जाय तथा किसे नहीं इस पर देश तथा काल की दृष्टि से भी विचार किया जाना चाहिए।

एक अन्य स्थान पर वर्मा बडी पीडा के साथ इन नवाचारो पर समीक्षात्मक दृष्टि डालते हुए कहते हैं कि 'कई नवाचारों का दम घुट चुका है कइ मृतप्राय हैं कुछ अतिसरक्षण की पीडा भोग रहे तो कुछ सबल के लिए तरस रहे हैं और कुछ शिक्षा प्रणाली का अग बन चुकने के बाद भी अपना चोला नहीं छोड पा रहे हैं।

शैक्षिक नवाचारो का वर्गीकरण

शैक्षिक नवाचारों को दो वर्गों में बाटा जा सकता है-

1 सैद्धान्तिक नवाचार।

2 सगठनात्मक नवाचार।

सैद्धान्तिक नवाचार - इसका सबध चिन्तन से है। यह कार्य हर शिक्षक के वश का नहीं है। इस बौद्धिक कार्य के लिए गिने चुने अध्यापक ही आगे आ सकेंगे। सैद्धान्तिक नवाचार का एक उदाहरण देखिए- आज परीक्षाओं मे नक्ल करने की दुष्प्रवृति बेहिसाब घर करती जा रही है नक्ल को रोकने के लिए जो भी उपाय किये जाते रहे हैं वे सब प्रयत्न असफल हो गये हैं। ऐसी स्थिति में यह सोचा जाने लगा है कि विद्यार्थी की मात्र उसकी विद्यालय म उपस्थित रहने के दिनों की नक्ल करने को रोकने के लिए

जोभी उपाय जाते रहे है। का प्रमाण पत्र दे दिया जाय तथा जो उसको जीविका या काम दे रहे हैं, वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उसकी परीक्षा ले लें। लाक सेवा आयाग भी तो अपने स्तर पर परीक्षाए आयोजित करता है।

सगठनात्मक नवाचार - इन नवाचारा में शिक्षण विधि या शिक्षा की सीढी में परिवर्तन को गिनाया जा सकता है जैसे- व्यक्तिनिष्ठ अध्यापन 10+2+3 शिक्षा योजना या अभिक्रमित अध्ययन

कई बार नवाचारो का यह भद स्पष्ट नहीं दीख पायेगा। किसी एक नवाचार को दोनों वर्गों म रखा जा सकेगा।

शैक्षिक नवाचारों को एक अन्य प्रकार से भी वर्गीकृत किया जा सकता है

1 सामाजिक अन्त क्रियात्मक वर्ग और

2 समस्या समाधान मूलक वर्ग

शैक्षिक नवाचारो के विभिन्न पक्ष

शैक्षिक नवाचारों पर विचार करते समय इनके विभिन्न पक्षो पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए

सामाजिक एव मानवीय पक्ष - इसमें सदेह नहीं कि शैक्षिक नवाचारों को अपनाने से तथा उनपर सफलतापूर्वक कार्य करने से शिक्षा से जुडे विभिन्न वर्गों (शिक्षक प्रशासक नियोजक पर्यवेक्षक चिन्तक आदि) में से किसी एक वर्ग को सम्मान मिल जाये या वह वर्ग अधिक प्रकाश में आ जाय। कुछ नवाचार मानवीय कल्याण क विरुद्ध भी माने जाने लगे हैं जैसे परीक्षाफला का मशीनों पर तैयार हाना इसी भाति अभिक्रमित अध्ययन विधि अध्यापको में यह भय पैदा कर रही है कि इससे तो अध्यापकों का प्रतिस्थापन हो सकता है- इससे अध्यापक बकार हो जायेंगे। यह एक सदेह मात्र ही है जिसका अध्यापक तथा प्रशासक साथ बैठ कर धैर्य के साथ सदेहो का निराकरण कर सही स्थिति समझ सकते हैं।

तकनीकी पक्ष - शैक्षिक नवाचारा पर कार्य करते समय इस बात पर आग्रह रहता है कि वह सामान्य अध्यापक के उपयाग के लिए हो। वह इतना उलझनपूर्ण या तकनीकी पूर्ण न बन जाय कि उसको समझने के लिए भी एक चोटी की शिक्षा प्राप्त तक्नीशियन की जरूरत पडे। इसलिए कई बार प्रशासक यह कहते पाये जाते हैं कि नवाचार की योजना सब की समझ मे आने वाली हो तथा प्रभारी अध्यापक का स्थानान्तर होने पर भी उस पर कार्य जारी रखा जा सके तथा उस पर किया गया व्यय तथा मानवीय श्रम व्यर्थ न चला जाये। फिर भी यह तो नहीं कहा जा सकता कि सभी अध्यापक उसको समझ लेंगे। यह तो निश्चित रूप से मानना ही चाहिए कि नवाचारो

यह होता है कि मानवीय प्रयत्न तथा धन की बचत होने लगती है। इनके अपनाने से समाज के आर्थिक तकनीकी ज्ञान एव मानवीय श्रम का सर्वाधिक समुचित उपयोग होने लगता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि शिक्षा म नवाचारों का प्रवेश शैक्षिक दृष्टि से लाभप्रद लगता है। अब तक लगभग 20-22 शोध अध्ययन (सभी प्रारंभिक प्रकृति के) शैक्षिक नवाचारों के क्षेत्र मे हुए हैं। इन शोध अध्ययनो म प्रधानाध्यापक वाकूपीठ शोध वाकूपीठ सूक्ष्म अध्ययन अभिक्रमित अध्ययन प्रहर पाठशाला विद्यालय सगम कार्य अनुभव विद्यालय योजना, रात्रि पाठशाला आदि सम्मिलित हैं। इन शोध अध्ययनो की अध्यापक उपयोगिता जानते हैं। साधारणतया इन कार्यो से विद्यालयो का सम्मान बढता है तथा शैक्षिक उपयोगिता स्वय स्पष्ट है। इन शोधों की उपयोगिता बहुताशो में अध्यापकों द्वारा नवाचारों की स्वीकृति पर निर्भर है।

नवाचारो की विशेषतायें

1 यह एक नया विचार है। 2 गुणवत्ता की दृष्टि से वर्तमान स्थितियों से नवाचार श्रेष्ठ विचार है। 3 यह एक सुधार के लिए जानबूझ कर दिया गया नियोजित प्रयास है। 4 नवाचार में विशिष्टता का तत्व विद्यमान रहता है। 5 नवाचार का उपयोगिता स्वीकार करते हुए इसे जानबूझ कर अपनाया जाता है।

शैक्षिक नवाचारों सबधी शोध की कठिनाइयाँ

नवाचारो के प्रसारण का अनुमान लगाना बडा कठिन है। नवाचारो को अध्यापकों ने किस सीमा तक स्वीकार कर लिया है या शिक्षा-प्रशासकों ने किसी सीमा तक उन पर विश्वास कर लिया है-यह एक पृथक शोध का विषय है जो काफी उलझनपूर्ण तथा तकनीकी पूर्ण है। नवाचारो की स्वीकृति पर सुस्पष्ट सूझ-बूझपूर्ण शोध कार्य हाथ में लिया जाना चाहिए। एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा। अभिक्रमित- अध्ययन विधि के अपनाने से अध्यापक के प्रतिस्थापन की सभावना बढ जाती है। इस तथ्य को स्वय शिक्षक किस सीमा तक स्वीकार करने को तत्पर हैं उनके उत्तरों के विकल्प इस प्रकार हो सकते हैं -

1 निश्चित रूप से सहमत 2 सहमत 3 तटस्थ
4 असहमत 5 निश्चित रूप से असहमत

इसे पच-बिन्दु मापनी कहा जाता है इसे और अधिक विकसित किया जा सकता है। इसी तथ्य पर प्रशासको की भी प्रतिक्रिया जानी जा सकता है तथा उनसे भी इन्हीं विकल्पो पर उत्तर लिये जा सकते हैं। इसी भाति शैक्षिक प्रशासन सबधी नवाचार शिक्षक किस सीमा तक पसद करते

हैं? मान लीजिए शिक्षा प्रशासन मे सम्प्रेषण प्रणाली नीचे से ऊपर की ओर पुनर्गठित की जाये। अध्यापकों के उत्तरो के विकल्प या बन सकते है -

1 दृढता से पसद

2 पसद

3 अनिश्चित्

4 नापसद

5 दृढता से नापसद।

इस प्रस्तावित सम्प्रेषण प्रणाली को स्वय शिक्षा प्रशासको मे किस सीमा तक स्वीकार करन के लिए तत्परता हैं? प्रथम उदाहरण में दिये गये उत्तरा के विकल्पों को यहा भी काम में लाया जा सकता है। यहा यह स्मरणीय है कि जितने अधिक बिन्दुओं पर मापन होगा मूल्याकन उपकरण की विश्वसनीयता उतनी ही अधिक बढ जायेगी।

फिर भी वैधता की समस्या तो बनी ही रहेगी क्योकि भारतीय स्थितियों में प्रश्नावली या अनुसूची पर उत्तरदाताओं से सही उत्तरों की या उनके मन की सही बात की आशा नहीं की जा सकती तथा शोधकर्त्ता प्रत्यक्ष शिक्षक मित्र के पास जाकर उनके व्यवहार का निरीक्षण नहीं कर सकता है। जो उत्तर प्रश्नावली या अनुसूची पर आप पाए, सभव है उत्तरदाता उनके अनुसार व्यवहार न करे। उनके लिए साक्षात्कार या निरीक्षण या अवलोकन का सहारा लिया जा सकता है। शैक्षिक नवाचार स्वय उभरता क्षेत्र हैं। अत इस क्षेत्र मे विधिवत शोध अध्ययन उतना ही और कठिन कार्य है फिर भी इस चुनौती पूर्ण क्षेत्र में अब तक प्रारम्भिक प्रकृति क 20-22 शोध अध्ययन सम्पन्न हुए हैं जिनके विषय क्षेत्र ऊपर बताये गये हैं। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि शैक्षिक नवाचारो पर शोध कार्य करना बडी टेढी खीर है-समय धैर्य सतत प्रयत्न तथा सहनशीलता की बडी आवश्यकता होती है। हर शिक्षक हर दृष्टि से तैयार हो ही यह जरूरी नहीं है।

शैक्षिक नवाचारो के क्षेत्र मे शोध हेतु अधुनातन शीर्षक

शैक्षिक शोध कार्यकर्त्ताओं को निम्न क्षेत्रों में अपने प्रयत्नो को केन्द्रित करना चाहिए-

1 सम्प्रेषण प्रणालिया

2 अनुदशन प्रणालिया

3 विद्यालय का सगठनात्मक वातावरण

4 प्राधिकारा का प्रत्यायोजन

इस विषयों पर आयु, लिग शैक्षिक योग्यता अनुभव पद की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए।

5 नवाचारो की स्वीकार्य क्षमता

6 शिक्षकों/प्रधानाध्यापकों/ प्रशासकों/ पर्यवेक्षण अधिकारियों की नवाचारों के प्रति धारणा।

7 विद्यालयो में नवाचारों को अग्रसर करने के लिए उत्तरदायी घटकों को जानना।

नीचे अतिरिक्त सूची दी जा रही है जिन पर कक्षा में काम करने वाले विभिन्न स्तरो के व्यक्ति अपनी रुचि के विषय पर कार्य आरम्भ कर सकते हैं।

1 अविभक्त विद्यालय व्यवस्था
2 शिशु क्रीडा केन्द्र
3 पत्र वाचन सगोष्ठी
4 युनिसेफ विज्ञान शिक्षण योजना
5 सामुदायिक शिक्षा
6 प्राथमिक शिक्षा हेतु व्यापक उपागमन
7 परीक्षा प्रणाली मे नवाचार
8 समाजोपयोगी उत्पादन कार्य
9 मल्टी-पाइन्ट एन्ट्री
10 विद्यालय एव जिला शिक्षा योजनाए
11 विद्यालय सगम
12 शिक्षानुसधान वाक्पीठ
13 व्यापक आतरिक मूल्याकन योजना
14 नैदानिक परीक्षण एव उपचारात्मक शिक्षा
15 स्वायत्तशासी विद्यालय
16 अनौपचारिक शिक्षा
17 प्रधानाध्यापक वाक्पीठ
18 क्रियाशील अवकाश
19 पुस्तकालय एव वाचनालय सेवाए
20 दलीय परिवीक्षण
21 कार्यानुभव
22 सीखो-कमाओ
23 खेल-कूद

24 प्रौढ शिक्षा
25 रूरल इन्स्टीट्यूट्स
26 चल विद्यालय
27 मूक विद्यालय
28 योग शिक्षा
29 टेलिविजन द्वारा शिक्षा
30 शिक्षक अभिभावक सघ
31 कठपुतली द्वारा शिक्षा
32 दुपहरी का भोजन
33 शिक्षण सामग्री एव पौशाक का विद्यार्थी की उपस्थिति पर प्रभाव' आदि-आदि

शैक्षिक नवाचारो का विरोध-

सिद्धान्त रूप म इन नवाचारा के लाभों से परिचित होते हुए भी अध्यापक तथा प्रशासक दोनो ही कई बार इनका विरोध करते देखे जाते हैं। अब स्थितिया बदलने लगी हैं तथा सभी प्रशासक नवाचारों पर न्यूनाधिक रूप से ध्यान देने लगे हैं। ऐसा माना जा सकता है कि कुछ समय जब तक सक्रमण काल रहेगा नवाचारों को विरोध का सामना करना पडेगा क्योंकि शिक्षा से जुडे किसी एक विशिष्ट वर्ग को हानि हो सकती है- यथा ऊपर के उदाहरण मे परीक्षाफलों को तैयार करना। स्थितियों मे परिवर्तन आया है पर आज भी अध्यापक नवाचारो को तत्काल अस्वीकार करने को तत्पर नहीं हैं तो भी वे उसके प्रति उदासीन तो हैं ही नवाचारो पर कार्य करने के लिए सभी अध्यापक कुछ सीमा तक अपने आपको सक्षम नहीं पाते हैं। अध्यापकों के शैक्षिक नवाचारों के प्रति उदासीन होने या विरोध करने के निम्न कारण हो सकते हैं -

1 नवाचारों के अपनाने से कार्य सम्पादन की प्रकिया में परिवर्तन करना होगा जिसके लिए वे तैयार नहीं हैं।

2 कुछ क्षेत्रों में उदाहरणार्थ- परीक्षाफलो की तैयारी या अभिक्रमित अध्ययन (चाहे सदेह के कारण ही) यदि मशीनो का अध्यापकों से प्रतिस्थापन हो गया तो सेवा से पृथक कर दिये जायेंगे। इस प्रकार उन्ह रोजगार छिनने का डर होता है।

3 जहा मशीनों की सहायता ली जायेगी वहा अध्यापकों को अधिक तेज गति से कार्य करना होगा फलत उन्ह जल्दी थकान होगी एव जीवन का विस्तार कम हो जायेगा।

4 नवाचार के अच्छे फला का श्रेय स्वय अध्यापकों को मिलने क यथाय

प्रशासका पर्यवेक्षण अधिकारियो शैक्षिक-नियोजकों को मिल जायेगा अत वे क्या व्यर्थ का झझट मोल लें?

नवाचारों के इन विरोधों को श्रीवास्तव [1] ने दो भागों में बाटा है -

1 व्यक्तित्व जनित प्रतिरोध कारक-इसमें ये सम्मिलित करते हैं- सन्तुलन आदत प्राथमिकता पराश्रितता नैतिकमन आत्मविश्वास हीनता असुरक्षा एव प्रतिगमन तथा आत्म परितोषी भविष्यवाणी।

2 क्रियात्मक प्रतिराध।

वास्तविकता यह है कि शैक्षिक-नवाचारों का विरोध शिक्षा से जुडे विभिन्न वर्गों के सोचने-विचारने के पिछडेपन का परिणाम है। वे रोज जिस ढग से सोचते विचारते हैं कोई भी काम जिस ढग से लम्बे समय से सम्पादित करते चले आ रहे हैं उस लीक को छोडना नहीं चाहते वे जोखिम उठाने को ही तैयार नहीं हैं- वे परम्परा से करते आये अपने तरीके से ही कार्य करने के लिए तैयार हैं। इसके सिवाय वे इस बात क लिए पूर्णत आश्वस्त ही नहीं हैं कि परिवर्तित तरीके से कार्य करना अधिक लाभप्रद ही होगा।

सरकार ने सैद्धान्तिक रूप से शैक्षिक नवाचारों का सदव समर्थन किया है। यद्यपि प्रशासक पर्यवेक्षण अधिकारी कइ बार शैक्षिक नवाचारों का सदैव विरोध इसलिए करते हैं कि सामान्य अध्यापक इन कार्यों के लिए अतिरिक्त धन स्टेशनरी एव खाली कालाश की माग करेंगे। न कवल इतना ही बल्कि कई बार अध्यापक अधिक शैक्षिक तथा तकनीकी योग्यता प्राप्त व्यक्ति से भेंट करने का आग्रह करेंगे जिससे उन्हे विद्यालय सचालन म बाधा पहुचेगी।

प्रशासक पर्यवेक्षण अधिकारी जिस ढग से काम कर रहे हैं जिस व्यवस्था के वे अभ्यस्त हैं उनमें परिवर्तन करना उनको अच्छा नहीं लगता। शैक्षिक नवाचारो का श्रेय वे अपने अधीनस्थ कार्य कर रहे अध्यापको को देना नहीं चाहते स्वय कार्यालय के कार्य में इतने व्यस्त रहते हैं कि उनके पास इन कार्यों के लिए समय नहीं है। ऐसी स्थिति में न तो वे स्वय कार्य करते हैं तथा न ही अपने अधीनस्थ कार्य कर रहे अध्यापकों को इन कार्यों के लिए प्रोत्साहन देते हैं। शैक्षिक नवाचारों के प्रति उच्चाधिकारी यदि विरोध प्रकट करते है या तटस्थ रहते हैं तो यह उनके साहस के अभाव का ही सूचक माना जाना चाहिए।

शकर शरण श्रीवास्तव शिक्षा म नवाचार एव आधुनिक प्रवृतिया आगरा हर प्रसाद भार्गव 4/230 कचहरी घाट 1987-88 पृष्ठ 14 15 16

एक समय था जब शैक्षिक नवाचारों पर कार्य करने के लिए निजी शिक्षण संस्थाओं या गैर सरकारी अभिकरण अत्यधिक तत्परता बरतते थे। पर आज स्थिति में भारी परिवर्तन आ गया है जो स्पष्ट दीखने लगा है। कई उच्च पदों पर आसीन अधिकारी स्वयं शैक्षिक नवाचारों को अपनाने उन पर कार्य करने के लिए सभा-सम्मेलनों कार्य-गोष्ठियों या कार्य-शालाओं में आग्रह करते देखे जाते हैं। पिछले 5-7 वर्षों में स्थितियों में भारी परिवर्तन आया है जो शिक्षा के क्षेत्र में शुभ लक्षण है। फिर भी प्रयत्नों का विस्तार अपेक्षित है। देश की शीर्षस्थ संस्था राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् ने तो नवाचारों पर किये कार्यों को मंगवाकर पुरस्कृत करना भी आरम्भ किया है। क्या यही सही रूप में प्रेरणा है? वैसे लोक सेवा आयोग राजस्थान द्वारा होने वाली प्रधानाध्यापकों की प्राथमिक परीक्षा में नवाचारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इससे इनकी उपयोगिता स्वयं स्पष्ट है और यदि शैक्षिक अधिकारी नवाचारों पर कार्य करने की गुंजाइश मानते हैं तो शीर्षस्थ अधिकारी को ऐसी स्थितियाँ पैदा करनी चाहिए कि अध्यापक प्रशासक पर्यवेक्षण अधिकारी नियोजक चिन्तक आदि सभी एक स्थान पर बैठकर शैक्षिक नवाचारों का क्षेत्र अधिकार आदि सभी स्पष्ट कर एक मधुर ऐक्य एवं समरसतापूर्ण स्थिति पैदा कर सकें।

❑

शिक्षा का विकासोन्मुखी क्षेत्र

न्यूनाधिक रूप से सभी देश अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शोध के निष्कर्षों का सहारा लेते रहे हैं तथा यही कथन शिक्षा के क्षेत्र में भी समान रूप से व्यवहृत है। पिछले कुछ वर्षों से इस दिशा में दृढ़ संगठित एवं व्यवस्थित प्रयत्न किये गये हैं। इनमें प्रमुख हैं—उच्च अधिकारियों का प्रशिक्षण, अनुभूत अध्यापन विधियां, सुनियोजित सहगामी क्रियाएं, कार्यालय का वैज्ञानिक प्रबन्ध, कर्मचारियों एवं अधिकारियों को प्रोत्साहन एवं पुरस्कृत किया जाना आदि। इन परिवर्तित प्रयासों के पर्याप्त आधार हैं, स्कूली बालकों की संख्या में कई गुनी वृद्धि, शिक्षा की भूमिका में परिवर्तन, शिक्षा के अर्थ का क्षेत्र विस्तृत होना, तथा विद्यालय से अभिभावकों की अपेक्षाओं में वृद्धि होना। बालकों की संख्या में वृद्धि होने के फलस्वरूप विद्यालयों, शिक्षकों, अधिकारियों की संख्या में भी वृद्धि हुई है जिससे उनके मानवीय सम्बन्धों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है तथा इनमें पेचीदगी बढ़ गई है। अब इन सम्बन्धों को वैज्ञानिक दृष्टि से सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न किया जाने लगा है। आज हर माता-पिता की अपेक्षा है कि बच्चा पुस्तकों का कम से कम भार उठाये तथा कम से कम समय में अधिक से अधिक उपलब्धि व ज्ञान कम से कम खर्च एवं प्रयत्न में प्राप्त कर ले। आज यह धारणा इतनी अधिक और क्रान्तिकारी रूप में विकसित हो गयी है कि अब प्रायः पुराने लेखकों की पुस्तकें अपूर्ण मानी जाने लगी हैं। उनके समय में नई पुस्तकों के अभाव में वे पुस्तकें ठीक रही होंगी पर आज उनकी पुस्तकें विद्यार्थी समाज की आवश्यकता पूरी नहीं कर रही हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि पुराने लेखक, शिक्षाविद्, अध्यापक बहुत पीछे रह गये हैं। पुराने शिक्षा शास्त्री या शिक्षा प्रशासक या शैक्षिक नियोजनकर्त्ता जिन सूचनाओं तथा तथ्यों के आधार पर निर्णय लेते थे, विचार विमर्श करते थे, आज के तथ्य व सूचनाएं ही बदल गई हैं—जैसे कक्षाध्यापन के सामान्य उद्देश्य। आज की स्थितियों में यह सम्प्रत्यय समीचीन नहीं माना जाता। भूगोल अध्यापन के उद्देश्य हिन्दी अध्यापन के उद्देश्यों से सर्वथा भिन्न हैं, फिर सामान्य उद्देश्य का प्रश्न ही कहां रहा? सभी विषयों के अपने विशिष्ट उद्देश्य हैं।

शिक्षा की प्रशासनिक समस्याओ को हल करने में अनुभव पर आधारित परम्परा से चली आ रही निर्णय प्रक्रिया साधारण बोध प्रशासनिक चातुर्य सामान्य नेतृत्व प्रत्युत्पन्नमति आदि पर आग्रह कम होता जा रहा है। आजकल परिवर्तन परिवर्द्धन एव सशोधन के साथ ही कर्मचारियों या अधिकारियों की सहभागिता का सिद्धान्त जोर पकड रहा हे। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि विकासशील देश में जिस गति एव मात्रा मे परिवतन आना चाहिए, वह नहीं आ रहा है। सम्भवत इसका कारण शिक्षा से जुडे अधिकारियों एव कर्मचारियों मे खतरा न उठाने की प्रवृत्ति रही है और यह भी सम्भव है कि एक लम्बे समय से सोचने विचारने के तरीके से बाहर निकल कर कल्पना ही नहीं कर रहे हैं।

शिक्षा में नवीन प्रवृतियों का विकास या नवाचार का अर्थ है—शैक्षिक परिवर्तना के महत्वपूर्ण घटक के रूप में सुस्थापित एव परम्परागत रूप से भिन्न नये तत्वा की प्रेरक शक्ति एव व्यावहारिक रूप मे स्थापित किये जाने वाले एव परिभाषित किये जाने वाले प्रयास। तकनीकी दृष्टि से इसका अर्थ है- प्रशासनिक सगठन कक्षाध्यापन अध्यापन विधिया तकनीकी प्रक्रियाओ में सजगतापूर्वक नियोजित एव व्यवस्थित सुधार। शैक्षिक नवाचार का सार यों बताया जा सकता है- एक ऐसी प्रवृति की रचना या विकास करना जो लम्बे समय से चली आई व्यवस्था को आदर्श मानने को तैयार न हो और उसमें परिवर्तन परिवर्द्धन एव सशोधन क अवसर एव उपाय ढूढती रहती है। जिसके फलस्वरूप कई बार ऐसे प्रश्न उठते रहते हैं कि क्या ऐसा करना आवश्यक ही है और यदि हा तो इसके करने की सर्वोत्तम विधि या तकनीक क्या हो सकती है?

शिक्षा के अर्थ की व्यापकता

साधारण नागरिक की दृष्टि से शिक्षा का अर्थ ही बदल गया है। एक समय था जब शिक्षा को कक्षा में दिय गये अनुदेशन का ही पर्याय माना जाता था। बच्चा कक्षा में सीख रहा है या नहीं विद्यालय समय मे बच्चा आज्ञाकारी है या नहीं उसकी सीखने की गति क्या है पूरे समय कक्षा में रहता है या नहीं आदि इसी प्रकार क प्रश्नों पर अध्यापक का ध्यान कन्द्रित रहता था। आज शिक्षा का अर्थ बहुत विस्तृत एव व्यापक माना जाता है तथा शिक्षा को विकासशील विषय (या अनुशासन) के रूप में लिया जाने लगा है। कोई भी तथ्य जो बालक की उपलब्धि को अनुकूल या प्रतिकूल रूप से प्रभावित करे उसे शिक्षा में समाविष्ट किया जाने लगा है। बच्चे यदि कहना नहीं मानते हैं तो क्यों? स्थितिया में क्या व कैसे परिवतन किया जाये कि प्रवेश

पाने वाले सभी बच्चे शिक्षा पूरी करके ही विद्यालय छोडें अध्यापक बच्चो के कल्याण म अधिक रुचि लें स्कूल भवन क्रीडागण तथा प्रयोगशालाओ का अधिक तथा गहन उपयोग कैसे किया जा सकता है तकनीकी विकास के कारण शताब्दी या आधी शताब्दी बाद किस प्रकार के विद्यालय भवनों की आवश्यकता होगी अभिक्रमित अध्ययन विधा के विकसित होने पर कक्षा-कक्षों में किस प्रकार का परिवर्तन आवश्यक हो जायेगा? ये या इनसे जुडे कई प्रश्न हैं जो आज से 40-50 वर्ष पूर्व शिक्षा से बाहर समझे जाते थे। पर आज शिक्षा का अर्थ ही बदल गया है तथा बालक के बेहतर हित म इन सब पर विचार किया जाने लगा है। आज शिक्षा शास्त्र कक्षा मे अनुदेशन तक ही सीमित नहीं है उसम मनोविज्ञान के साथ ही शिक्षा का दर्शन शिक्षा का अर्थशास्त्र शिक्षा का समाज शास्त्र शिक्षा का विकास शास्त्र शिक्षा का मनोविज्ञान एव शिक्षा की सांख्यिकी आदि भी सम्मिलित किये जाने लगे हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव व्यवहार के व्यापक क्षेत्र को समाविष्ट करते हुए शिक्षाशास्त्र विकासशील अनुशासन बन गया है तथा सामाजिक मूल्यों को प्राप्ति की ओर अग्रसर है। यही कारण है कि शिक्षकों की तैयारी के कार्यक्रम को प्रशिक्षण कहने के बजाय अब शिक्षा कहा जाने लगा है। बेचलर आफ टीचिंग (बी टी) की जगह बेचलर आफ एजूकेशन तथा ट्रैनिंग कॉलेज की जगह कॉलेज ऑफ एजूकेशन कहा जाने लगा है।

विविधलक्षी विषय सामग्री का समावेश

अब तक बालक को गिने-चुने विषय पढा देना गृह कार्य देना जाचना परीक्षा लना तथा परीक्षा फला की घोषणा ही विद्यालय जीवन के प्रमुख कार्यकलाप माने जाते थे। आज विद्यालय की इन क्रियाआ म अनगिनत वृद्धि हो गई है जैसे विद्यालय सगम बस व्यवस्था विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तिया विभिन्न विद्यालयो मे उपलब्ध विषय-सकाय तथा उनकी प्रवेश क्षमता सरस्वती यात्राए, केफेटेरिया सेवा प्रौढ शिक्षा या अनौपचारिक शिक्षा व्यावसायिक सस्थानो तथा बैंक डाकघर सहकारी समिति मिल कारखानो का भ्रमण एव प्रत्यक्ष ज्ञान छात्र ससद प्रयोगशाला की देखभाल विद्यालय अभिलेख की देखभाल एव रख-रखाव भवन मरम्मत विद्यालय उद्यान बागवानी तथा कृषि फार्म विद्यालय पत्रिका शिक्षक अभिभावक सघ खेलो की व्यवस्था तथा प्रतियोगिता इन कार्यो के लिए धन सग्रह या जन सहयोग या चेरिटी शो। सक्षेप में कहा जा सकता है कि बालक के सर्वांगीण विकास का प्रत्येक कार्य विद्यालय की गतिविधियों में गिना जाने लगा है। विद्यालयी शिक्षा के लक्ष्यों के अनुरूप इसमे विषय सामग्री की विविधता के साथ ही क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है।

व्यावहारिक अध्ययनों पर बल

अब तक शोध कार्य उपाधि प्राप्त करने की दृष्टि से ही किये जाते रहे हैं उपाधि के बाद ये शोध ग्रन्थ पुस्तकालय की आलमारियों में बन्द हो जाते थे। अब इस दृष्टिकोण में बदलाव आया है। शोध के क्रियात्मक पक्ष पर बल दिया जाने लगा है। शोध कार्य में स्वयं शिक्षक को भाग लेने के लिए प्रोत्साहन दिया जाने लगा है क्योंकि वह ही कक्षा में अध्यापन में गुणात्मक सुधार के लिए पूर्णत उत्तरदायी है। इससे वह स्वयं शोध निष्कर्षों के प्रकाश में अपनी कार्यविधि में संशोधन एवं परिवर्तन कर सके। शुद्ध तात्विक शोध की अपेक्षा कक्षा-कक्ष की गतिविधियों में सुधार की शोध योजनाओं पर प्रमुखता से ध्यान दिया जाने लगा है। ऐसी योजनाओं में क्षेत्रीय एवं लैंगिक भेद के आधार पर बालकों की उपलब्धि गृहकार्य शुद्धीकरण, कक्षा-कक्ष में समायोजन शिक्षकों के साथ व्यवहार, विद्यालय की सम्पत्ति के प्रति ममत्व एवं विनय का सम्प्रत्यय प्रमुख है। पिछले कुछ समय से मानवीय मूल्यों के विकास के तरीके एवं साधनों पर भी प्राथमिकता के साथ ध्यान दिया जाने लगा है। ये सब इस प्रकार के शोध प्रयत्न है कि अध्यापक स्वयं अपना अन्तर्दर्शन कर सकता है अपनी समस्या का निर्धारण कर हल खोजने को तत्पर बन सकता है यदि कहीं कमी दिखती है तो वह सुधार करने को स्वतन्त्र है। इससे स्वयं शिक्षक अपने स्थान के प्रति आश्वस्त हुआ है तथा शोध निष्कर्षों से लाभ उठाने की ललक उसके मन में जगी है।

अन्तर्विषयी अनुसंधानों पर बल

क्रियात्मक अनुसंधान के साथ ही इस बात का प्रभाव स्पष्ट होने लगा है कि बालक को न तो अलग-अलग पढ़ाया जा सकता है तथा न ही बालक को ज्ञान टुकड़ों में दिया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि बच्चों को पढ़ाते समय उनकी समग्र स्थिति-भाई-बहिनों की शिक्षा संगी साथियों का स्तर माता-पिता की माली हालत आदि सभी बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिये। इसी भांति किसी विषय, उदाहरणार्थ नागरिक-शास्त्र पढ़ाते समय उसका सामाजिक संदर्भ छोड़ देना वाछनीय नहीं होगा। मान लीजिए, बच्चों की उपलब्धि न्यून है। इस पर शोध कई चरणों में तथा कई स्तरों पर की जायेगी तभी समस्या को सही रूप में पहचान कर हल किया जा सकेगा। मनोवैज्ञानिक उसकी बुद्धिलब्धि जांच रहे हैं समाजशास्त्री उसकी पारिवारिक स्थिति पर ध्यान रखे हुए है निर्देशन कार्यकर्त्ता घर पर पढ़ने-लिखने की सुविधाओं तथा माता-पिता की सहायता पर ध्यान दे रहे हैं विषयाध्यापक देख रहे हैं कि बच्चे को किस विषय में तथा किस विशिष्ट प्रकरण में सर्वाधिक मार्ग-दर्शन

की आवश्यकता है। इतना ही नहीं यदि समस्या और भी गम्भीर हुई तो सहायता की और भी दिशाएं खोजी जा सकती है। घर पर आरामदायक फर्नीचर उपलब्ध है या नहीं हवादार तथा प्रकाश वाला कमरा है या नहीं बच्चा आवश्यकतानुसार नींद ले पा रहा है या नहीं कहीं परिवार के बड़े सदस्य जमीन या अन्य किसी प्रकार के मुकद्दमा में तो फसे हुए नहीं हैं क्योंकि ये सभी बातें भी न्यूनाधिक रूप से बालक की उपलब्धि को प्रभावित करती है। यदि ऐसा है तो इन्जानियर डाक्टर तथा वकील से भी सहायता ली जा सकती है। इन सब प्रयत्नों का आधार यह है कि बालक के हित में एक से अधिक मस्तिष्क स्पष्ट एवं कारगर सोच-विचार कर सकते हैं। इससे दिन-प्रतिदिन अन्तर्विषयी शोध के जोर पकड़ने का आधार एवं क्षेत्र स्पष्ट होता है।

पाठ्यक्रम की पुनर्रचना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। आज इन परिवर्तनों के फलस्वरूप शिक्षा का स्वरूप शिक्षा की विधियों विद्यार्थियों की रुचियों-आवश्यकताओं एवं देश की अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं में भारी फेर-बदल हो गया है। फलत शैक्षिक नियोजनकर्ता शिक्षा-शास्त्री तथा शिक्षाविद् पाठ्यक्रम की पुनर्रचना के लिए मानस तैयार कर रहे हैं। आज प्राथमिक स्तर की शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के पाठ्यक्रम की पुनर्रचना का विचार जोर पकड़ रहा है। ऐसा करने के पीछे आशय यह है कि शिक्षा को जीवन से जोड़ी जा सके उसे अधिक सारपूर्ण बनाया जाये।

अन्त सेवा शिक्षा का विस्तार

पिछले कुछ समय से पूर्व से नियोजित शिक्षकों का अन्त सेवा प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से अभिस्थापन किया जा रहा है जिससे वे अपने ज्ञान तथा अपनी विषय सामग्री को अद्यतन बना सके तथा अध्यापन विधियों तथा तकनीकों का अधुनातन ज्ञान प्राप्त कर सके। शिक्षक से प्रशासक या पर्यवेक्षक अधिकारी बनते ही उसे भिन्न प्रकार की प्रशासनिक विधि जानने की आवश्यकता होती है एवं उससे भिन्न प्रकार के कार्य के निष्पादन की अपेक्षा की जाती है। इसके लिए विभिन्न अभिकरण कार्य कर रहे हैं—शिक्षा महाविद्यालयों से जुड़े विस्तार सेवा विभाग राज्यों में स्थापित शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान या परिषद्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, राज्य लोक प्रशासन संस्थान एवं राष्ट्रीय शैक्षिक नियोजन एवं प्रशासन संस्थान। इनमें से अन्तिम पांच संस्थान उच्च स्तर के विशिष्ट व्यावसायिक एवं प्रशासन

सम्बन्धी पाठ्यक्रम सचालित करते हैं एव अन्तिम सस्थान का कार्य क्षेत्र तो भारत से बाहर पड़ोसी राष्ट्रों म भी फैला हुआ है। विकसित दर्शों में इस प्रकार के पाठ्यक्रमा का बाहुल्य है। शिक्षा-प्रशासकों से अधिक उच्च तथा व्यवस्थित तकनीको का व्यावसायिक कौशलों का तथा प्रशासनिक प्रणालियो के ज्ञान की अपेक्षा की जाती है तथा य सस्थान अपने कार्यक्रम या पाठ्यक्रम इन्हीं अपेक्षाओं के अनुसार नियोजित करते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में जनसम्पर्क

आज शिक्षा का सम्बन्ध केवल छात्र उसके माता-पिता तथा उसके अध्यापक से ही नहीं रह गया है वरन् शिक्षा के बारे में इन सबके सिवाय शिक्षाविद्, सामाजिक कार्यकर्ता सामान्य जनता शिक्षा प्रशासक एव शिक्षा नियोजक आदि सभी रुचि लेने लगे हैं। शिक्षा सस्थान अपनी नीतियों एव कार्यक्रमों का जनसम्पर्क अधिकारी द्वारा सामान्य जनता में प्रचार करती है। यही कारण कि विश्वविद्यालयों में जनसम्पर्क अधिकारी दोहरी भूमिका निभाते हैं—शिक्षा से जन-प्रतिनिधि गणमान्य व्यक्ति लोकप्रिय व्यक्ति तथा जननेता क्या अपेक्षाएँ रखते हैं जनसम्पर्क अधिकारी यह जानकारी प्राप्त कर सम्बन्धित अधिकारियों को पहुँचाते हैं जिससे उनको अपने कार्यक्रमों का मूल्याकन कर उनमें सशोधन करने म सरलता होती है। शिक्षा की नवीन योजनाओं तथा विद्यालयों की समस्याओ से जन-साधारण को परिचित कराकर उनसे सहयोग प्राप्त करना आज की परिस्थितियो में अपरिहार्य हो गया है। छात्रों को समाज के आदर्शों सिद्धान्तो मूल्यों विचारधाराओं तथा दर्शन से परिचित कराने के लिए विशिष्ट व्यक्तियो के व्याख्यान तथा वैज्ञानिको कलाकारो साहित्यकारो एव समाज सुधारको के प्रयोगात्मक कार्यों की जानकारी देने के लिए प्रसार भाषण-मालाओं का आयोजन किया जाने लगा है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा के माध्यम से अब जन-कल्याण की प्रवृत्ति का विकास हो रहा है। इस दृष्टि से सभी शिक्षा सस्थानों म जनसम्पर्क अधिकारी के पद का सृजन न्यायोचित लगता है।

विभिन्न विभागों म समन्वय

बालचर, राष्ट्रीय सेवा योजना रेडक्रास सोसायटी एन सी सी वाई एम सी ए जैसा सगठन तो अभिन्न रूप से शिक्षा सस्थानो से जुडे हुए ही हैं। ये सगठन राष्ट्र एव समाज हित की विचारधारा विद्यार्थियो में विकसित करते हैं आज स्थिति यह है कि विद्यार्थियों को शिक्षा उपयोगी रूप म तभी दी जा सकती है जबकि शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न सगठनों में समन्वय हो। इन विभिन्न सगठनो या विभागों को इस प्रकार से गिनाया जा सकता

है— राज्य या राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् या संस्थान, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड विश्वविद्यालय साहित्य अकादमी हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग उद्योग विभाग वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्, नियोजन विभाग समाज कल्याण विभाग भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद् तथा संस्कृति विभाग आदि। प्रत्येक विभाग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षा से सम्बन्धित प्रत्येक विभाग या संगठन या अभिकरण की गतिविधियों तथा क्रियाओं को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित करें एवं उनसे जीवन्त सम्बन्ध बनाये रखें। ऐसा करने से निस्सन्देह विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का समुचित विकास किया जा सकता है। इसलिए इन सब विभागों का समन्वय विद्यार्थियों के बेहतर हित के लिए उपयोगी है।

तुलनात्मक शिक्षा पर आग्रह

जब शोध में विभिन्न चरों को समाविष्ट कर उनका प्रभाव देखा जाता है तो सहज ही जिज्ञासा बनती है कि किस चर या तथ्य का अधिक प्रभाव है। अध्यापक के पास विभिन्न प्रकार की सूचनाएं एवं तथ्य रहते हैं वह उनमें तुलना करके देखता है पता लगाता है कि अमुक समस्या के लिए कौनसा उपचार अधिक कारगर या प्रभावी सिद्ध हो रहा है। परीक्षाओं में सामूहिक नकल आज सभी शिक्षा अधिकारियों तथा परीक्षा नियन्त्रकों के लिए सिरदर्द बनी हुई है। भारत में इस प्रवृत्ति के विकास के लिए बाह्य परीक्षा के प्रमाण पत्र या उपाधि पत्र को अत्यधिक महत्व देना रहा है। इस समस्या के हल के लिए जरूरी है कि जहां-जहां यह समस्या पाई जाती है उन देशों में इस समस्या के लिए उत्तरदायी कारणों की जानकारी प्राप्त की जाये तथा प्राप्त निष्कर्षों के प्रकाश में कदम लिए जायं। उदाहरण के लिए, भारत की तुलना में यह समस्या अमेरिका में कम गम्भीर है तो वहां इसके लिए उत्तरदायी कारण है- संस्था का आंतरिक मूल्यांकन सत्र में एक से अधिक बार मूल्यांकन शिक्षार्थी के बारे में संस्था प्रधान की राय सूचक निष्पक्ष टिप्पणी। इसी आधार पर भारत में भी आन्तरिक मूल्यांकन तथा सिमेस्टर प्रणाली पर निरन्तर जोर दिया जा रहा है। मोटे रूप से यह मानने के पर्याप्त आधार हैं कि 'शिक्षा के तुलनात्मक अध्ययन से शिक्षार्थी के सोचन-विचारने का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा वह सहिष्णु बनता है। हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ विश्वविद्यालयों में तो तुलनात्मक शिक्षा को इतना अधिक महत्व दिया जा रहा है कि एम.एड स्तर पर इसका एक अनिवार्य प्रश्न पत्र ही जोड़ दिया गया है।

विज्ञान के रूप में शिक्षाशास्त्र

अब तक शिक्षा को कला माना जाता रहा है। अमुक मूल्यों का विकास

किया जाना चाहिए, व्यक्तित्व के विकास के समय अमुक घटकों पर आग्रह किया जाना चाहिए, इस भांति अब तक शिक्षा पर आदर्शात्मक रूप में ही विचार किया गया है। शिक्षा-शास्त्र म किसी घटना या तथ्य या उप विषय का विधिवत क्रमबद्ध अध्ययन किया जाता है इस अर्थ में शिक्षा शास्त्र को विज्ञान ही कहा जाना चाहिए। पर न केवल इतना ही पाश्चात्य देश तो इससे भी कहीं आगे बढ गए हैं। एक दशक से पाश्चात्य देशों में शिक्षा को चिकित्सा अभियान्त्रिकी अपराध शास्त्र तथा भौतिक विज्ञानों के समान ही विज्ञान क रूप में प्रतिष्ठित करने के क्षेत्र मे बहुत प्रयास हुए हैं। मुख्यत अध्यापन कार्य में शिक्षा म निपुण व्यक्तियों को ही नियोजित किया जाता है तथा अन्य हर किसी व्यक्ति स अध्यापन की आशा नहीं की जाती। शिक्षा के लक्ष्य दैनिक पाठ के लक्ष्यों का निर्धारण पाठोपस्थापना की तकनीक खोजपूर्ण प्रश्न छात्रों की पहल का लाभ उठाना पाठ का प्रभावी प्रस्तुतीकरण विद्यार्थियो की अधिगम में सहभागिता प्रश्न की तकनीक छात्रों से वाछित उत्तर प्राप्त करना श्यामपट लेखन छात्रों को सीखन के लिए उत्प्रेरित करना पाठात की कुशलता आदि कौशलो दक्षताओ चातुर्यों लक्षणों तथा तकनीकों का पनने वाले अध्यापकों में उनके प्रशिक्षण के दौरान विकास किया जाने लगा है। भारत में भी इस प्रकार के छुट-पुट प्रयत्न शिक्षा के प्रगत अध्ययन केन्द्र बडौदा तथा अन्य स्थानो पर हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आने वाले समय में शिक्षा को विज्ञान ही माना जायेगा फिर भले ही वह आदर्शात्मक विज्ञान ही हो।

शिक्षा का स्वतन्त्र विषय/अनुशासन के रूप में उभरना

व्यापक क्षेत्र को समाविष्ट करती हुई विविधतापूर्ण अनुभवों पर आश्रित विषय सामग्री क्रियात्मक अनुसधान विज्ञान के रूप मे शिक्षा शास्त्र अन्तर्विषयी शोध निष्कर्ष पिछले दो दशको से एक स्वतन्त्र विषय के रूप म प्रतिष्ठा पाने को उत्सुक है। कुछ विश्वविद्यालयो में शिक्षा शास्त्र को पृथक सकाय के रूप में मान्यता मिल गई है पर अन्य शेष विश्वविद्यालयों मे शिक्षा शास्त्र को पृथक सकाय के रूप में न मानते हुए कहीं कला सकाय मे समाविष्ट किया गया है तो कहीं समाज विज्ञान सकाय में ही समाविष्ट कर रखा है। शिक्षाशास्त्र को जोधपुर एव अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय में क्रमश कला एव समाज विज्ञान सकाय में समाविष्ट किया गया है। देश में स्कूल शिक्षा के कुछ बार्डो ने शिक्षा को अपने पाठ्यक्रम में स्वतन्त्र विषय के रूप मे स्थान दिया है। यही स्थिति कुछ विश्वविद्यालयों के स्नातक तथा स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो के लिए भी कही जा सकती है। उदाहरणार्थ कुरूक्षेत्र अलीगढ आगरा कानपुर गौहाटी कलकत्ता आदि विश्वविद्यालया में स्नातक परीक्षा के

विषयों में शिक्षा भी एक विषय है तथा शिक्षा विषय सहित स्नातक यदि चाहे तो दो वर्षीय अधिस्नातक शिक्षा विषयक पाठ्यक्रम भी अध्ययन के लिए चुन सकते हैं। पर इन पाठ्यक्रमों का उद्देश्य कौशलयुक्त निष्णात अच्छे अध्यापक उपलब्ध कराना कदापि नहीं है। इतिहास या समाजशास्त्र या भूगोल या अर्थशास्त्र या दर्शन शास्त्र में एम.ए. पास व्यक्ति बैंक में या अन्यत्र लिपिक बन सकता है या अन्य प्रतियोगी परीक्षा मे बैठ सकता है। ठीक इन्हीं सब विषयों की भांति शिक्षा शास्त्रों म एम.ए. पास व्यक्ति भी अध्यापक पद के साथ ही अन्य सभी पदो के लिए भी समान रूप से पात्र है। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि शिक्षा शास्त्र विषय की सामग्री में अभूतपूर्व विस्फोट हुआ है विकास हुआ है ऐसी स्थिति में उसके स्वतन्त्र विषय बनने की पूरी-पूरी सम्भावना उजागर हुई है। एक समय था जब इस विषय की सामग्री को अगुलियो पर गिना जा सकता था तथा समाज विज्ञानों में शिक्षा को उच्च विषय (अनुशासन) होने का स्तर न दिये जाने के पीछे एक सुव्यवस्थित सिद्धान्त का अभाव ही था पर आज ऐसी स्थिति नहीं है। यद्यपि शिक्षा में वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अभी नई है एव शैक्षिक शोध को जनसाधारण से स्वीकृति भी नहीं मिल पाई है। फिर भी शिक्षा से जुडे लोगों को शिक्षा शास्त्र को एक विषय के रूप में उदारता एव विनम्रतापूर्वक स्वीकार करना चाहिए।

शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्थाएँ

आज यह निश्चित मान लिया गया है कि शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था भारत म निरक्षरता नहीं मिटा सकती। निरक्षरता के उपचार के रूप म वैकल्पिक व्यवस्थाए सोची गई हैं— अशकालीन शिक्षा पत्राचार पाठ्यक्रम दूरस्थ शिक्षा शिक्षा के क्षेत्र में निजी प्रयास प्रौढ शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा। प्रौढ शिक्षा की मद पर व्यय की राशि शिक्षितों की सख्या तथा उनकी शिक्षा के स्तर पर भी प्रश्न चिह्न लगाया जाता है। कोई जरुरी नहीं कि हर शिक्षार्थी नियमित रूप से निश्चित समय पर स्कूल में ही पढे सभी विषयों की परीक्षा दें तथा पास भी हो। शिक्षा के इस औपचारिक बन्धन से शिक्षार्थी को मुक्ति देने की आवाज बल पकड रही है। किसी निश्चित समय मे निश्चित पाठ्यक्रम पढ कर सभी विषयों में परीक्षा पास करना जरुरी न हो ऐसी व्यवस्था भारत के लिए अधिक हितकर हो सकती है जिसमे शिक्षार्थी अपनी रुचि के विषयो में अपनी गति से और फुर्सत के समय में पढ कर कुशलता प्राप्त कर ले इसे ही अनौपचारिक व्यवस्था कहते है। इस व्यवस्था मे एक ही छात्र अपनी उपलब्धियो के अनुसार प्राप्त समय में उदाहरणार्थ छठी कक्षा की अग्रेजी

नवीं कक्षा की हिन्दी पाचवी कक्षा की भूगोल दसवीं कक्षा की गणित तथा सातवीं कक्षा का इतिहास एक ही साथ पढ सकता है। इस प्रावधान को 'मल्टीपाइन्ट एण्ट्री' की सज्ञा दी गई है। कुछ अशो में भारत म इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता मानी जा रही है। निरक्षरता समाप्त करना ही इन सभी व्यवस्थाओ के मूल में है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षाशास्त्र का अर्थ समय-समय पर बदलता रहा है फलत इसके स्वरूप तथा अर्थ म भी परिवर्तन आया है। आज शिक्षा से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुडी हरेक बात इसम सम्मिलित की जान लगी है। आने वाले समय में जीवन और पेचीदा होने वाला है तब शिक्षा की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण होगी। शान्ति नि शस्त्रीकरण, स्वचालन उत्तरदायित्व वैज्ञानिक एव तकनीकी विकास भाई-चारा एव नगरीकरण आदि के लिए शिक्षा महत्त्व प्राप्त कर लेगी। शिक्षा क क्षेत्र म जनसख्या विस्फोट तथा उसका नियन्त्रण अस्वास्थ्यकर उत्पादनों पर रोकथाम भी कर नहीं पायेंगे। इसी लिए शिक्षा से सामाजिक परिवर्तन के अभिकर्त्ता रूप म भी सरल भूमिका की अपेक्षा की जाती है। शिक्षा शास्त्र क एक सामान्य विद्यार्थी के रूप में इन भूमिकाओ क निर्वहन के लिए निस्सदेह नागरिक में नवीन गुणों एव क्षमताओं की जरूरत होगी। आज शिक्षा के इस बदलते हुए अर्थ तथा विकसित होते हुए क्षेत्र को देख कर स्वय अनुशासन के रूप मे शिक्षा शास्त्र के 'विकास तथा निर्माण' की पर्याप्त एव उज्ज्वल सम्भावना व्यक्त की जाती है।

❑

व्यवसाय के रूप मे अध्यापन

शिक्षा के क्षेत्र मे आयोजकों प्रशासकों तथा अध्ययन से जुडे स्वय शिक्षको द्वारा अध्यापन के लिए आवश्यक गुणो प्रविधियो तकनीकों तथा विशिष्टताओं के विकास पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। विभिन्न स्तरो के शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में व्यवसाय शब्द कई बार प्रयोग हो सकता है पर व्यवसायी के गुणों तथा अन्य लक्षणो को किसी व्यवसायी सघ द्वारा प्रमाणित नहीं किया जाता। किसी व्यवसायी सघ द्वारा उनका स्तरीकरण नहीं किया गया। प्राथमिक एव माध्यमिक विद्यालयो मे नियुक्त अध्यापक स्वय अपने को निम्न मानते हुए यह स्वीकार करते हैं कि अध्यापन सेवा का व्यवसाय के रूप में विकास हो। महत्वपूर्ण यह है कि अध्यापन व्यवसाय के सम्प्रत्यय को कितना ध्यान दिया गया है तथा इस सम्प्रत्यय का शिक्षको विद्यालयों बालकों तथा उनके सरक्षको के लिये क्या महत्व है तथा वे इससे क्या अर्थ लेते हैं?

धधे की अपेक्षा व्यवसाय का उच्च एव सम्मानजनक अर्थ लिया जाता है एव व्यवसाय शब्द उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक है। शायद ऐसा इसलिये रहा होगा कि जनसाधारण के अनुसार व्यवसाय मे लगे व्यक्ति उच्च शिक्षित होते हैं न कि वे पारवारिक व्यवस्थाओ से जुडे होते हैं व्यवसायी सामाजिक पद-सोपान की दृष्टि से भी उच्च वर्गों से जुडे होते हैं जबकि धधे निम्न वर्ग के लोगो से। इससे स्पष्ट होता है कि व्यवसाय व्यक्ति को दी जाने वाली प्राप्त स्थिति को जनसाधारण से स्वीकार कराता है।

व्यवसाय का अर्थ

व्यवसाय के रूप मे अध्यापन विषय पर भारत मे बहुत कम साहित्य का सृजन हुआ है ऐसी स्थिति में उसके विधिवत प्रकाशन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। प्रशासकीय अधिकारियो ने भी अध्यापन को व्यवसाय सज्ञा न देकर समाज सेवाओं मे सम्मिलित किया है। पाश्चात्य देशों में भी कुछ उत्साही लेखको के नाम इस क्षेत्र में यदाकदा लिये जाते रहे है जिन्होंने भी अपने ढग से विषय का प्रस्तुतीकरण किया है।

Tawney (1920)[1] ने व्यवसाय की परिभाषा इस प्रकार की है- व्यवसाय किसी दिय हुए कार्य को सम्पन्न करन के लिये एक उद्योग (ट्रेड) के रूप मे निश्चित रूप से अपूर्ण पर बुद्धिमता से व्यवस्थित क्रियाओं को कहा जाना चाहिए। देखने मे लगता है कि यह बुद्धिमतापूर्ण व्यवस्थित क्रिया नैतिकता पर आधारित है तथा इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए लोक कल्याण पर आग्रह है। विवेकपूर्ण व्यक्ति लोक कल्याण से हट जाय ऐसा नहीं माना जा सकता है।

जनसाधारण व्यवस्था तथा व्यवसायी को सामान्य अर्थ म लेते रहे है। साधारण दृष्टि से व्यवसाय (ocupation) का अर्थ किसी धधे म अधिक समय तक कार्य करना है तथा उस धधे के लिये कम से कम अवधि का प्रशिक्षण होता है। उदाहरण के लिये ट्रक ड्राईवर का कार्य इस दृष्टि से व्यवसाय माना जाना चाहिए इस प्रकार के अर्थ में सामाजिक प्रतिष्ठा सयुक्त नहीं हैं। इसक दूसरी ओर किसी धधे को व्यवसाय कहलाने के लिए इस धधे से सबधित प्रशिक्षण की अवधि कोई प्रभाव नहीं डालती है। नई सदियों से एक ही काम करते आ रहे है पर उसे व्यवसाय नहीं माना जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक व्यवसाय का अपना क्षेत्र होता है- व्यवसाय में लगे लोग एक विशिष्ट भाषा शैली का प्रयोग करत है उनकी अपनी व्यवहार प्रणाली होती है उनकी अपनी विशिष्टताए होती है। सरस्वती यात्राए, सम्प्राप्ति दक्षताए, शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण दीक्षान्त समारोह उपचारात्मक शिक्षण आदि शब्दों का शिक्षा के क्षेत्र में एक विशिष्ट अर्थ म ही प्रयोग होता है। वहा के रीति-रिवाज परम्पराए वहा के निवासी ही पूरी तरह से सीख पाते है। व्यवसाय के लिए बौद्धिक प्रशिक्षण के फलस्वरूप विशिष्ट दक्षता एव चातुर्थ प्राप्त किया जाते हैं। व्यवसाय कहलाने के लिए यही मुख्य लक्षण है। किसी भी धधे को व्यवसाय कहलाने के लिए निम्न लक्षण गिनाये जा सकते हैं।

1 कार्य या सेवा को सम्पन्न करने के लिए विशिष्ट धधे का पर्याप्त लम्बी अवधि का प्रशिक्षण दिया जाय। स्नातक स्तर पर भी पर्याप्त तैयारी की जाय। चिकित्सा विधि तथा अभियान्त्रिकी का क्षेत्र म वास्तविक कार्य आरम्भ करने के पूर्व एप्रेन्टिसशीप सहित पाच से सात वर्ष तक का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता है।

2 इण्डियन बार काउन्सिल या इण्डियन काउन्सिल ऑफ मेडीसिन्स या इन्जीनियर्स इण्डिया जैसे राष्ट्रीय स्तर पर कोई अभिकरण हो जो व्यवसाय

---

1 R H Tawney The Acquisitive society New york Harcourt Brace and World Inc 1920 p 92

के लिए राष्ट्र के सामने एक सबल आवाज उठा सके। यह अभिकरण ही सदस्यों को कार्य सपन्न करने की अनुमति प्रदान करे लाइसेस दवे। निर्योग्यता होने पर या कार्य का वाछित स्तर प्राप्त न होने पर अभिकरण द्वारा स्वीकृत मानदण्ड प्राप्त न होने पर अनुमति को रद्द किया जाए, व्यक्ति को लाइसेंस लौटा देने को कहा जाये। पिछले दिना राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद् को अधिक प्रभावी बनाने का क्रम शुरू हुआ है। इसे विधार्थी शक्तिया देकर अधिक कारगर बनाया जा रहा है। आशा की जाती है कि शक्ति सम्पन्न होने पर यह सस्था घटिया या निम्न स्तर का काम करने वाले शिक्षकों या सस्थाओ को काम करने से रोक सकेगी।

3 विधि तथा चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य से जुडे दोनों सम्भागी ही पारिश्रमिक तय करते हैं। सेवाओं के विक्रय की अपेक्षा मूलत सेवाओं या परामर्श तथा पारिश्रमिक या वेतन का परस्पर निर्धारण एव आदान प्रदान होता है। ग्राहक तथा क्रेता दोनों में व्यक्तिगत सबध रहते हैं तथा दोनों एक दूसरे का विश्वास करते हैं।

4 पारस्परिक सामूहिक प्रतिष्ठा से आशय यह है कि मौलिक व्यवसाय सामाजिक प्रतिष्ठा का सकेत करते हैं। व्यवसाय में लगे समूह की व्यावसायिक उत्तरदायित्व की सजगता सम्पन्न की जाने वाली सेवाओं की उत्कृष्टता तथा सेवा में लगे सदस्यों के लिए कौशलों क्षमताओं चातुर्यों का प्रमाणीकरण तथा प्रशिक्षण मे प्रवेश पर नियन्त्रण के माध्यम से गुणात्मकता को बनाये रखा जाता है। किसी भी व्यवसाय को सम्पन्न करने के लिए उत्तम कौशल तथा बौद्धिक प्रयत्नों की जरूरत होती है जो प्रशिक्षण की अवधि तथा कार्य के स्तर पर निर्भर करती है।

5 एक आचार सहिता जिसे वैधानिक रूप से लागू किया जा सके कार्य का उच्च स्तर बनाये रखने के लिए भी आचार सहिता जरूरी है और इसलिए भी कि अदक्ष या निम्न श्रेणी के सदस्यो की अनुमति रद्द कर उन्हे कार्य करने से रोका जा सके। पिछले दिनो राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद् द्वारा विधालयी शिक्षकों के लिए तथा विश्वविधालय अनुदान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा से जुडे शिक्षको के लिए आचार सहिता तैयार की गई है। पर इस सम्बन्ध में अभी भी किये जाने के लिए बहुत क्षेत्र हैं।

6 व्यवसाय कहलाने के लिए क्षेत्र निश्चित होना चाहए। चिकित्सा का क्षेत्र जीवविज्ञान तथा रोगनिदान है तथा वकालत का क्षेत्र राज्य शासन सरकार कानून तथा सविधान है।

क्या अध्यापन व्यवसाय है?

एक लंबे समय से कहिय बीसवीं शताब्दी के पूर्व तक भारत में अध्यापन को सेवा ही माना जाता था न कि व्यवसाय। अध्यापक समर्पण की भावना से बच्चों को पढ़ाते थे तथा समाज ही उनकी पालन-पोषण की व्यवस्था करता था । अध्यापन को सेवा भावना से अपनाने के आधार पर ही एकलव्य तथा द्रोणाचार्य आरूणी तथा उसके गुरु कृष्ण-सुदामा तथा उनके गुरु संदीपन के संबंध भारतीय शिक्षा के इतिहास मे अमर हो गये है। अब देखना यह है कि क्या भारत म आज अध्यापन कार्य को ऊपर दी गई इन कसौटियों पर व्यवसाय कहा जा सकता है? यदि नहीं तो इस दिशा में क्या प्रयत्न और किये जाने चाहिए?

अध्यापन व्यवसाय म प्रवेश करने के लिए स्नातकों के लिए शिक्षा स्नातक पाठ्यक्रम एक सत्र का है। प्राथमिक शिक्षक का पाठ्यक्रम अवश्य ही दो सत्रों का है। व्यायाम शिक्षक शिशु शिक्षक उद्योग शिक्षक माटिसरी किण्डर गार्टन कॉस्मिक ट्रेनिंग एक एक सत्र की ही उपलब्ध है प्रवेश की पात्रता के लिए ग्यारह वर्षीय विद्यालयीशिक्षा जरूरी है शिक्षाधि स्नातक पाठ्यक्रम भी एक ही सत्र का है। इसक विपरीत संगीत चित्रकला गृह विज्ञान के अध्यापन हेतु बिना प्रशिक्षण क भी काम चला लिया जाता है। अध्यापन को अपनाने वालों के लिए स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर छोटे या सहायक(Subsidiary) विषय के रूप म शिक्षण तकनीक मनोविज्ञान तथा सामाजिक मूल्यों का विकास किया जाय तथा प्राथमिक अध्यापक के लिए भी ऐसी ही किसी व्यवस्था पर विचार किया जा सकता है।

पिछले वर्षों में 5-7 विश्वविद्यालयों मं (उदाहरणार्थ कुरूक्षेत्र गौहाटी अलीगढ कलकत्ता आगरा आदि) शिक्षा अधिस्नातक पाठ्यक्रम दो वर्ष का बनाया गया है पर उसका उद्देश्य दूसरा है। शिक्षा को एक अनुशासन मानकर अन्य विषयों के समान ही स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम का विकास किया गया है। कोई आवश्यक नहीं कि इस पाठ्यक्रम से अध्यापन कौशल एवं चातुर्य का विकास हो।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयो में चार वर्षीय शिक्षा के पाठयक्रम आरंभ किये गये थे-पर इन पाठ्यक्रमों से शिक्षा दीक्षा प्राप्त शिक्षक भी अच्छा प्रभाव बनाने मे असफल रहे वे भी व्यवसाय के प्रति समर्पित शिक्षक तैयार न कर सके। केवल उत्तरप्रदेश सरकार एक सत्र के प्रशिक्षणोपरान्त लाइसस ऑफ टीचिंग की उपाधि देती थी- इसे भी कुछ संस्थाओं म स्थगित कर दिया गया तथा यह उपाधि भी

अन्य मानदण्डों पर व्यवसाय नहीं कहला सकती।

अध्यापन कार्य में लगे व्यक्तियों की प्रबुद्ध वर्ग के सदस्य गिने जाने चाहिए तथा राष्ट्रीय जीवन म उनकी सेवाओं को पर्याप्त महत्व स्थान तथा मान्यता दी जानी चाहिए। यदि अध्यापन को व्यवसाय की ही श्रेणी मे लाना है तो प्रशिक्षण की अवधि बढाई जानी चाहिए। स्नातक पूर्व पाठ्यक्रम का विकास किया जाना भी इस दिशा म महत्वपूर्ण स्थान रखता है। स्नातक पाठ्यक्रम को समृद्ध कर अवधि बढाई जा सकती है एव स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम को भी समृद्ध किये जाने की पर्याप्त सम्भावनाये हैं। अन्य अल्पावधि पाठ्यक्रमों पर भी फिर से विचार किया जाना चाहिए,यदि वे लबी अवधि के न चल सके तो बद कर दिये जाने चाहिए।

अध्यापन कार्य में बालक को अध्यापक द्वारा पढाया जाना है। विद्यार्थी शिक्षक के ज्ञान पर विश्वास कर इसके लिए निम्न बातें जरूरी हैं-
प्रथम- अध्यापक द्वारा बालक को सामान्य शिक्षा देना है या विभिन्न विषयों का अध्यापन कराना है। गणित एक सामान्य विषय है-जिसका जीवन में पग-पग पर व्यावहारिक उपयोग है। सामान्य विषयों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट विषयो के अध्यापन की अपेक्षा की जा सकती है फिर यह विशिष्ट विषय का ज्ञान उसके धधों से जुडा हो सकता है।

द्वितीय- अध्यापक अपना काम दक्षता के साथ कर सके इसके लिये भी कुछ विषयों को शिक्षक शिक्षा में सम्मिलित किये गये हैं- मनोविज्ञान शिक्षण विधि सामाजिक मूल्य आदि। शिक्षक शिक्षा के इस कार्यक्रम मे कक्षाध्यापन का व्यावहारिक अभ्यास भी जोडा जाता है। शिक्षण विधि पर निरन्तर प्रयोग हो रहे हैं तथा आज भी अन्तिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

मनोविज्ञान सामाजिक मूल्य तथा शिक्षण विधि के ज्ञान की मात्रा ही अध्यापक को सामान्य नागरिको के पृथक करता है और इसी आधार पर कहा जा सकता है कि चिकित्सा तथा वकालत के समान ही अध्यापन को भी व्यवसाय माना जाना चाहिए। शैक्षिक उद्देश्यो तथा पाठ्यक्रम का सीधा जनता से कोई सबध नहीं है पर विद्यालय उनके बच्चों को किस प्रकार कैसे शिक्षित कर रहा है- इस रूप में तो वे विद्यालय से सबधित है ही तथा वे विद्यालय से भिन्न राय भी रख सकते हैं। यदि अध्यापन भी चिकित्सा की तरह व्यवसाय हो विशिष्ट तकनीकपूर्ण एव कौशल युक्त हो तो सभव है जनसाधारण विद्यालय के साथ वाद-विवाद नहीं करेंगे।

इतना सब होते हुए भी आज कोई यह स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है कि अध्यापन कार्य चिकित्सा या वकालत की तरह तकनीकी पूर्ण

हैं। कारण कि अध्यापक आज भी अपने को किसी विशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने के लिए उत्तरदायी मानते ही नहीं हैं। अध्यापक कई बार ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि वे कोई भी विषय पढ़ा सकते हैं। वे यह सोच भी नहीं पाते कि ऐसी शिथिल टिप्पणी से अध्यापन को व्यवसाय बनाने के लिये कितना धक्का लगा है?

अध्यापन कार्य के लिए प्रशिक्षण प्राप्ति ही एक प्रकार से अनुमति या लाइसेंस मान्य जाता रहा है। पर यह अनुमति देने वाली संस्था चिकित्सा या वकालत की स्वीकृति देने वाली संस्था से भिन्न है क्योंकि वह स्वायत्तशासी संस्था है सबल है वांछित स्तर प्राप्त न होने पर अनुमति रद्द कर देती है। यह अभिकरण ही प्रमाणीकरण की शर्तें तय करती हैं, परिवर्तन तथा संशोधन करती हैं। पाठकों को स्मरण होगा कि 1955 में जब शिक्षकों की कमी अनुभव की गई तो अल्पकालीन प्रशिक्षण देकर ही उनकी भर्ती की गई। आज भी कई जगह अप्रशिक्षित अध्यापक काम करते हुए मिल जाते हैं। केवल यही नहीं कई उदाहरणों में तो प्रशिक्षण तो दूर अधूरी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की भी भर्ती अध्यापकों के पदों पर कर ली गई। ऐसा गणित विज्ञान गृहविज्ञान चित्रकला तथा संगीत विषयों में होता रहा है। दुर्गम स्थान या पिछड़ी या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्रों में ऐसे ही शिक्षक मिल सकते हैं पर चिकित्सा या वकालत या अभियान्त्रिकी के क्षेत्र में ऐसा नहीं होता। अधूरी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति इन धंधों में कहीं नहीं मिलेंगे। ऐसा सम्भव नहीं है कि बिना चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा पाये व्यक्ति को इस व्यवसाय में प्रवेश की अनुमति मिल जाय या उसे शल्यक्रिया करने को कह दिया जाय-यही बात अभियान्त्रिकी या वकालत के लिये भी कही जा सकती है।

यह अपेक्षा की जाती है कि इससे उपयुक्त प्रत्याशियों का चयन होगा। विश्वविद्यालय या राज्य स्तर पर बनी पात्रता सूचियों के आधार पर प्रत्याशियों को प्रवेश दिया जाने लगा है अतः किसी को असन्तोष भी नहीं होता। हां इन परीक्षाओं का रूप अभी निश्चित नहीं हो पाया है। कहीं एक प्रश्नपत्र होता है तो कहीं दो या तीन भी कहीं सभी प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं तो कहीं संक्षिप्त उत्तर वाले भी। अभी ये परीक्षाएं शैशवास्था ही है तथा समय बीतने पर तथा अनुभवों से सीखते हुए ये परीक्षाएं स्थायी रूप ले लेंगी। इससे अध्यापन को व्यवसाय के रूप में विकसित करने के लिए मदद मिलेगी।

चिकित्सा तथा वकालत में क्रेता तथा विक्रेता या ग्राहक तथा व्यवसायी का सीधा तथा व्यक्तिगत संबंध रहता है। इस पहलू पर शिक्षा के क्षेत्र में भी बहुत लिखा गया है। वैयक्तिक निर्देशन तथा शिक्षण आज के समय की

ज्वलन्त समस्या है। प्राय शिक्षक अधिकाश समय दलों में कार्य करते हैं तथा दल के सदस्य या कक्षा के विद्यार्थी विशिष्ट लक्षण रखते हैं उनकी भिन्न भिन्न आवश्यकतायें होती हैं हर बच्चा दूसरे बच्चे से भिन्न होता है। यहा प्रश्न उठता है कि यदि प्रत्येक बच्चे को उसकी आवश्यकता के अनुसार पढाया जाय तो अध्यापक के लिए अध्यापन दुरूह हो जाता है। यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि शत प्रतिशत वैयक्तिक शिक्षण सीधे तथा व्यक्तिगत सबध नहीं बनाये जा सकते पर इस दिशा में यह प्रयत्न तो किया ही जाना चाहिए कि अध्यापन को व्यवसाय बनाने के लिए कक्षा का आकार छोटा से छोटा हो या कक्षा म पढने वाले छात्रों की सख्या न्यूनातिन्यून हो जिससे आवश्यकता क समय शिक्षक छात्रो के साथ वैयक्ति का सबध बना सके। यहा तर्क दिया जा सकता है कि वकील तथा चिकित्सक की सेवायें प्राप्त करने के लिये काफी ग्राहक होते हैं तथा अधिक ग्राहक ही अधिक सफलता के सूचक हैं। वे हर ग्राहक को व्यक्तिगत आधार पर ही देखते हैं। अपवाद रूप में चिकित्सा मनोविज्ञानी के समान अध्यापक सामूहिक निर्देशन के सिद्धान्त पर भी आग्रह कर सकते हैं।

अध्यापन को व्यवसाय बनाने के लिए इस बात के निश्चय ही प्रयत्न किये जाने चाहिए कि कक्षा कक्ष में अध्यापक द्वारा विद्यार्थी के वैयक्तिक सबधो के लिए अधिकाधिक अवसर दिये जाय प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकता का अनुमान लगाया जाय उसकी निर्योग्यता जानी जाय उसकी कमी का क्षेत्र ज्ञात किया जाय तथा तदनुसार उपचार किया जाय एव बालक को लाभ पहुचाया जाय।

सेवाओ के लिए निश्चित वेतन के रूप मे पारिश्रमिक के इस बिदु पर चिकित्सा या अभियान्त्रिकी या वकालत तथा अध्यापन में समानता लगती हैं पर एक अन्य प्रश्न उठता है कि पारिश्रमिक कौन तय करता है। चिकित्सा तथा वकालत म सबधित पक्षो द्वारा या व्यावसायिक सघों द्वारा यह तय किया जाता हैं जबकि अध्यापन मे राज्य अन्य सेवाओ के समान तय करता है। शिक्षक सघ समय समय पर राज्यों से समझौता करके वेतन बढवाते रहते हैं। कुछ राज्यों म तो विधानसभाओं में से प्रस्ताव पारित करवाकर एक्ट ■ भवा दिये हैं। इनका उल्लघन होने पर दोनों पक्षों में से कोई न्यायालय से सहायता के लिये आवेदन कर सकते हैं।

वेतन के रूप मे पारिश्रमिक निश्चित होने चाहिए। ज्यों-ज्यों शिक्षक की योग्यता तथा कार्य क्षमता बढती है उसे मिलने वाला पारिश्रमिक भी उसी अनुपात में बढता रहना चाहिये। चिकित्सा वकालत या अभियान्त्रिकी के व्यवसाय में यह ग्राहक पर निर्भर करता है कि वह किसकी सेवाओ

का उपयोग करें। क्या अध्यापन में ऐसा सभव हैं। यदि हा तो किसी सस्था के पास सभव हैं ढेर सारे विद्यार्थी इकट्ठे हो जाय तथा दूसरे के पास एक भी न रहे। ऐसी स्थिति में उसे घोर आर्थिक कठिनाइया सहनी पड सकती हैं। पर हा कुछ अशो में ऐसा व्यवहार मे देखा जा सकता है। कई बार अभिभावक किसी विशिष्ट शिक्षा पद्धति से पास तो नहीं पर विद्यालय विशेष में ही अपने बच्चो को भर्ती कराना चाहते हैं। एसा करने के उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षक समृद्ध पुस्तकालय उद्यतन प्रयोगशालाए, सुरम्य क्रीडागण आदि कई कारण हो सकते हैं। कुछ अशों म इस दृष्टि स अध्यापन को व्यवसाय कहा जा सकता है।

अपनी बात को जनता के सामने रखने के लिये एक शक्तिशाली व्यावसायिक सगठन-

कोई भी चिकित्सक आख या दात का डाक्टर होने से पूर्व सामान्य चिकित्सक है तथा चिकित्सक व्यावसायिक सघ का सदस्य हैं। यही बात वकीलो या अभियान्त्रिकों म लगे व्यक्तिया के लिये कही जा सकती हैं। पर अध्यापन के लिये ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्राथमिक, माध्यमिक महाविद्यालय शिक्षक प्रशिक्षक चित्रकला भाषा गृहविज्ञान सगीत व्यायाम उद्योग इतिहास भूगोल अराजपत्रित तथा राजपत्रित अध्यापक सघ में सभी अध्यापन मे लगे अध्यापक बट हुए हैं फलत उनकी आवाज बलहीन एव मद हो जाती हैं। सभी शिक्षकों की राय में मतैक्य नहीं हैं। जब शिक्षक प्राथमिक कक्षाओ से माध्यमिक कक्षाओ के रूप म या निम्न वेतनश्रृखला से उच्च वेतन श्रृखला मे पदोन्नत हो जाता है तो अपने पिछले जीवन में बनी निकटता या लगाव को भूल जाते हैं पदोन्नति के बाद निम्न वेतन श्रृखला मे कार्य कर रह शिक्षकों के हितो का परिलाभों को वे भूल जाते हैं। कुछ विषय कठिन माने जाते हैं उदाहरणर्थ- अग्रेजी तथा गणित। इन विषयो के पढाने वाले शिक्षक भी पृथक अपने सघ बना लेते हैं तथा अपने को अलग थलग एव महत्वपूर्ण समझने लगते हैं अन्य शिक्षको की तुलना मे अपने को समाज से अधिक मान्यता प्राप्त समझने लगते हैं तथा उद्योग कृषि चित्रकला एव सगीत शिक्षकों को अपने से हीन मानने लगते हैं। समग्र अध्यापक जाति के हित उनकी दृष्टि से ओजल हो जाते हैं।

कुछ अध्यापक सघ राजनैतिक दलों से जुड जाते हैं इससे भी कभी कभी सदस्यों को भारी हानि उठानी पडती हैं। यदि सत्तारूढ दल उदाहरण के लिए काग्रेस है तो जनता पार्टी या राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ से जुडा अध्यापक सघ सरकार से वाछित लाभ नहीं उठा सकता न सरकार ही उनकी मागो पर शिष्ट मण्डल के ज्ञापनो पर ध्यान देती हैं।

यदि अध्यापन को चिकित्सा तथा वकालत के समान व्यवसाय बनाना है तो प्रथम स्थान पर इस बात की आवश्यकता है कि सभी शिक्षक अपना स्तर वतन तथा विषयों का महत्व भूल कर एक व्यावसायिक सघ के रूप मे सगठित हो जाय एव आवश्यक लक्षणों का विकास किया जाय स्वय शिक्षक अपने को एक ही सघ का सदस्य बनाए, उससे सम्बद्ध करे। इस प्रकार के साहित्य की व्यापक रचना की जाय तथा शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रमो म परिवतन तथा परिवद्धन किया जाय कि अध्यापन को व्यवसाय के रूप म हय न माना जाय।

मूल्याकन

इस प्रकार कार्य करने तथा सोचने विचारने के दो केन्द्रीय विषय दीखते हैं। प्रथम-अध्यापक तथा गैर अध्यापक के धधे सबधी सस्कृति रीति रिवाज तथा कार्य कलाप मे अन्तर तथा द्वितीय-अध्यापकों के कार्य करने की शर्तें तथा स्थितियों पर सघ के रूप में शिक्षकों का नियन्त्रण जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हो। अभिभावकों का शिक्षा सस्थाओ से निकट सम्पर्क ही इन कार्यों का स्रोत हैं। सामान्य नागरिक जानता है कि विद्यालय म अच्छा कार्य करने वाले शिक्षकों का महत्वपूर्ण स्थान है। सरकार के साथ ही स्वय शिक्षक तथा शिक्षक सघ भी शिक्षा को प्रभावित करने वाले अभिकरणो म से एक हैं। यह सभी स्वीकार करेगे कि आधुनिक समय में विद्यालय के कार्यकलापों में सभी रुचि लेने लगे हैं। यह रुचि शिक्षा के लिये अच्छी तथा बुरी दोनों रूपों मे हो सकती हैं।

एक लम्बे समय से बालक की उपलब्धियों पर बालक तथा विद्यालय के सामाजिक एव अन्यान्योश्रित कार्यकलाप तथा सस्कृति का प्रभाव स्वीकार किया जाता रहा है। महानगरो में इन सबधो का विकास नहीं हो पाता है तथा मधुर सबधों का अभाव कई नई समस्याओ को जन्म दे रहा है। अध्यापक तथा गैर अध्यापक के विचारों का अन्तर अध्यापको के कार्य करने की स्थितियो तथा शर्तों मे अन्तर को कभी सराहनीय नहीं कहा जा सकता चूकि अन्तत ये सामाजिक सबध ही बालक के अधिगम को प्रभावित करते हैं।

जब तक शिक्षा पर सरकार का नियन्त्रण है पाठ्यक्रम शिक्षकों की नियुक्ति उनका वतन नइ सस्था या उसकी क्रमोन्नति आदि पर सरकार का निर्णय ही एक मात्र कारकारी प्रभाव डालता है तथा शिक्षक तथा शिक्षार्थी के क्रेता तथा विक्रेता के रूप में सबधो का विकास करना कठिन ही नहीं असभव लगता है। शिक्षको की नियुक्ति सरकार करती है तथा विद्यालय म प्रवेश के समय शिक्षकों की राय का कोई महत्व नहीं हैं। शिक्षको के वेतन

निधारण में भी बच्चों या उनमे अभिभावकों का कोई हस्तक्षेप नहीं होता हैं। व्यक्तिगत सवधा का जहा तक प्रश्न है बडी बडी कक्षाओं म उनके विकास क अवसर ही नहीं आते हैं। फिर मानकीकरण की समस्या भी महत्वपूर्ण हैं। एक बार शिक्षक का रोजगार प्राप्त करने के बाद, यदि वह शिक्षक निम्न स्तर का हुआ तो भी सरकारी सेवा म पृथक करना अध्यापन काय से वचित करना अत्यन्त कठिन है। इससे भी अधिक मानकीकरण स्वय भी कठिन लगता हैं। कुछ अशों म स्वातशासी सस्थाआ म एसा हो सकता है पर वहा भी मानकीकरण का सिद्धान्त शत प्रतिशत रूप से कार्य करेगा ही सदह से परे नहीं हैं। हा यदि शिक्षक स्वय एक सस्था के रूप म विकसित हो तो मानकीकरण ही नहीं पारिश्रमिक की समस्या भी हल हो सकता है। इस बिंदु पर एक अन्य दृष्टि से भी विचार किया जाना चाहिए कि वकील केवल पारिश्रमिक पाता है चिकित्सक पारिश्रमिक एव वतन दोनो पाता है जबकि अध्यापक केवल वतन पाता है। इस पर सामजस्य कैसे बैठाया जायेगा? व्यवसाय का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण स्तर बनाये रखना है (Quality Maintain) करना हैं। यदि इसे किसी प्रकार लाया जा सके तो अध्यापन व्यवसाय का बहुत बड़ा हित हो सकता हैं।

ऊपर की विवेचन से लेखक का यह आशय कदापि नहीं है कि अध्यापन को व्यवसाय के रूप म मान्यता मिले या व्यवसाय न माना जाय या अध्यापन में व्यावसायिकता अच्छी है या बुरी एसा भी कहीं सकत नहीं किया गया है। इसे समझने का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि अध्यापन को व्यवसाय न मानने से इसमें लगे कार्यरत अध्यापकों की कक्षाध्यापन की दृष्टि से क्या हानि हो रही है अध्यापक क्या खो रहे हैं। विपरीत स्थिति म वे क्या लाभ उठा सकते हैं? फिर चाहे वह आर्थिक शैक्षिक इसक सामाजिक नैतिक या अन्य लाभ ही हो। अध्यापन को व्यवसाय क रूप में मान्यता दिलवाकर विद्यार्थी को क्या लाभ पहुचाया जा सकता हैं। लाभ कैसा ही हो अन्तत उसका उपयोग विद्यार्थी समुदाय के लिये ही होगा।

☐

मूल्यो का सकट

आज चारा ओर अनैतिकता अपनी चरम सीमा पर है। दवा-निर्माता प्राणलेवा घटिया दवाइया बनाता है व्यापारी हल्दी में ईंट पीसवा लेता है चावलो म सफेद छोटे-छोट कक्कर मिला कर बेचता है केसर में लकडी का रगीन बुरादा मिला देता है इन्जीनियर पुल बनाते समय सीमेंट की जगह अधिक बालू मिला कर कमजोर पुल बना देता है सरकारी कार्यालयों में आसानी से कार्य नहीं होता किसी दस्तावज की नकल चाहिए- हथेली गर्म करो रेल या बस मे जगह का आरक्षण करवाना है तो उत्तर मिलता है सीट उपलब्ध नहीं है रिश्वत दो तो अमुक स्थान पर आरक्षण सहित टिकट लाकर दे दगे निर्माणाधीन भवन की ईंटे रातोरात गायब हो जाती हैं महाविद्यालयो में छात्राओं की साईकिलों को कुए म डाल देने के उदाहरण भी सुनने को मिलते हैं चलते वाहनों म कई महिलाओं द्वारा यात्रियो की जेबें काटने की घटनाए भी प्रकाश में आइ हैं सत्ता में पद पर आरूढ मत्री अपने चहेतो की सिफारिश अन्य मत्रियों तक पहुचाते हैं कभी विभागाध्यक्ष वरिष्ठता का हनन कर अत्यन्त कम लम्बी सर्विस तथा कम अनुभव वालों को उपर पहुचा देते हैं फलस्वरूप आघात न सह पाने क कारण ऐसे उदाहरणों मे की गई हत्यायें भी यदा-कदा प्रकाश में आती रही हैं दहेज की बलिवेदी पर चढ़ने वाली महिलाओ के दु खद अत के समाचार सदैव समाचार-पत्रों मे मिल ही जायेंगे। तो ये रह गए हैं आज जीवन के मूल्य।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि आज विश्व को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है उन सब मे एक मौलिक कठिनाई मूल्यों के सकट की है। वास्तविकता यह है कि सभी कठिनाइयों के मूल मे मूल्यो का सकट ही है और आश्चर्य यह है कि इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

ज्ञान का विस्फोट

सभी क्षेत्रों में ज्ञान का विस्फोट हुआ है तथा शोध कार्य जारी हैं पर मूल्यो का क्षेत्र इस दृष्टि से अछूता ही है। इसका कारण यह बताया जाता है कि विज्ञान मूल्यो से मुक्त है या मुक्त रखा जाए। यह विचार कई

वैज्ञानिकों के मस्तिष्क मे जमा हुआ है यद्यपि यह विचार भ्रमपूर्ण है । इस क्षेत्र में दिखावा बहुत किया गया है तथा सही अर्थों म काम बहुत कम हुआ है। कुछ हा प्रयत्न हुए हैं पूरे मन स बहुत काम कम हुआ है रो-धोकर कुछ अधूरा कार्य किया गया है। आखिर ऐसा क्या? इसका मूल कारण यह है कि मानव स्वभाव के स्थिर होने पर एव सदियों से चले आए मूल्य प्रतिमान पर न तो कोई प्रश्न किया जाता है तथा न ही उन मान्यताओ पर कुछ बहस की जाती है। इन मान्यताओं को या मूल्य प्रतिमानों को मनु, बुद्ध जोरोस्टर ईसा मुहम्मद आदि से जोड दिया जाता है। प्रत्यक्ष म चाहे इन मूल्यों के प्रति आदर न हो या इनके प्रति निरन्तर प्रतिकूल व्यवहार किया जा रहा हो फिर भी इन्होंने न्यूनाधिक रूप स समाज की सेवा की है। अत समाज का इन मूल्या का अनुगृहीत होना चाहिए। अब इसी मान्यता पर प्रश्न-चिन्ह लगाया जा रहा है।

मूल्या का यह सकट कई आधारो पर परखा जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त मे नीत्से ने मूल्या के सक्रमण पर प्रकाश डाला। उनका दर्शन पूर्व-प्राथमिकता के विचारों पर आधारित था तथा गभीर अज्ञानता का द्योतक था। उसके द्वारा प्रतिपादित नये मूल्यो की वैधता जिनस उसने पुराने मूल्यो का प्रतिस्थापन किया था पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया।

मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के नए निष्कर्षों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। यह सही है कि उन्हें सार्वभौमिक मान्यता नहीं मिली है उस पर और विचार किया जाना शेष है यद्यपि ये विचार आरभ करने क लिए पर्याप्त सामग्री भी प्रस्तुत करते हैं। वास्तविकता यह है कि अन्य कोई विकल्प ही नहीं है।

प्रथम बिन्दु जो विचारणीय है या होना चाहिए, वह यह है कि हृदय तथा मस्तिष्क के बीच कोई दीवार न हो। ज्ञान तथा उस प्राप्त करने की विधिया अन्तत नैतिक मूल्यो से अविच्छिन्न रूप से जुडी हैं। ये बाह्य मानदण्ड नहीं हैं जिन्हे कि तटस्थ रहते हुए विज्ञान के नैतिक पक्ष पर लागू किया जा सके।

वाईटहैड के अनुसार जहा प्राप्य ज्ञान घटनाओ के क्रम को बदल सकता है वहीं अज्ञानता अभिशाप के दाप स जुडा हुआ है। उसने जोर देकर बताया कि आधुनिक जीवन की स्थितियों म नियम अपरिहार्य है पूर्ण है धर्म /वर्ण धूमिल है जो कि प्रज्ञा को महत्वहीन मानता है। यह विश्व सहित भारत के सामने एक प्रकार की विशिष्ट चेतावनी है।

ज्ञान तथा अभ्यास

इस पर जोर दिया जाना चाहिए कि प्रारम्भ के रूप में प्रज्ञा को

अवहेलना मूल्यों का ही प्रभाव हैं। फिर भी इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि श्रेष्ठ गुणों का ज्ञान तथा उनका अभ्यास दो भिन्न-भिन्न वस्तुए हैं। विकृत मस्तिष्क दुर्योधन दुःख प्रकट करता है कि मैं अच्छाई जानता हू पर उसका अनुगमन नहीं कर पा रहा हू। मैं जानता हू कि बुराई क्या है? फिर भी मैं उसे नहीं छोड पा रहा हू या उससे अपने को बचा नहीं पा रहा हू। इसी तरह सतुलित मस्तिष्क वाले अर्जुन की समस्या भी उससे भिन्न नहीं है। वे गीता म पूछते हैं कि यह कौनसी या क्या वस्तु ह जो मनुष्य को अपनी इच्छा के विपरीत बुराई करने को बाध्य करती है। यही महान् समस्या है रहस्य है।

आधुनिक मनोविज्ञान इसका आशिक उत्तर देता है। फ्रायड से बहुत पहले विलियम जेम्स ने बताया था कि मनुष्य के व्यवहार तथा अभ्यास म अचेतन मन की बहुत बडी भूमिका रहती है। इस विचार का फ्रायड जुग तथा अन्य प्रबुद्ध मनोवैज्ञानिको ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विकास किया यद्यपि अपने अध्ययन के तरीकों तथा निष्कर्षों मे भिन्न रहते हुए भी मानव मन के गतिशील क्रिया-कलापों में अचेतन मन की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते हैं तथा उसकी कार्य-प्रणाली को भी गत्यात्मक मानते है। वास्तविक प्रेरक ऊपरी सतह पर नहीं हैं वरन् नीचे गहरे हैं। गहरा या बारीक या सूक्ष्म मनोविज्ञान व्यवहार के आधारों के बारे मे विस्तृत जानकारी देता है।

यह कैसा सूक्ष्म मनोविज्ञान है जो समस्याओं में और मुख्यत व्यवसाय तथा अभ्यास के अन्तर के बारे म बताता है? यह बताता है कि हमारी कठिनाई उस सघर्ष या विरोध की उपज है जो चेतन तथा अचेतन के बीच पैदा होता है। इन कठिनाइयों का हल मुख्यत सभव सीमा तक सघर्षों एव विरोधो के निवारण पर निर्भर करता है। मानवीय व्यवहार के सचालन का मूल अचेतन मन में है तथा सज्ञात व्यवहार अचेतन मन के विवेकपूर्ण या औचित्यपूर्ण अभिप्रेरकों की उपज है।

आश्चर्य के साथ कहना पडता है कि यह स्थिति वास्तविकता को स्वीकार करने की अपेक्षा स्वप्नो में विचरण करती है जो कि मनुष्य के अन्त स्थल के भावों को बताती है। जागृत अवस्था में अचेतन मन के साथ प्रत्यक्ष सबध बना नहीं रह सकता। उस तक पहुच केवल अप्रत्यक्ष रूप से सकेतो या कल्पनाओं से ही सभव है। सक्षेप मे यह सकेत या कल्पना या विश्वास ही अचेतन मन की भाषा है। इस स्थिति को स्वीकार करना मनुष्य की भूमिका तथा उसके महत्व को नए मानदण्ड पर देखना है। ऐसा होने पर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि असहाय चेतन मन तथा नैतिकता किस प्रकार अचेतन क्षेत्र मे ऊपर की ओर उन्मुखी है। इसका आशय यह नहीं है कि इच्छा शक्तिहीन है या क्षीण है पर ऐसा पर्याप्तता से तो दूर है। आधुनिक मनुष्य के साथ मुख्य समस्या ही उसकी मानवीय इच्छाओं के विस्तार

पर आखें मूंद कर देखना है। व्यवहार म देखा जाता है कि इच्छा शक्ति के सीमा से अधिक विस्तार का अनुमान भयकर प्रतिक्रिया लाता है। यही सही मनोविज्ञान है।

इच्छा शक्ति

जब आदमी अपनी इच्छा शक्ति से यह गतिरोध या ठहराव अनुभव करता है तो यह सहज ही एक ऐसे सहारे की आशा करता है जोकि उसकी इच्छा के अनुरूप नहीं है या उसकी इच्छा शक्ति से किसी प्रकार सबधित नहीं है। यह महत्वहीन नहीं है कि इस सहारे पर भगवान या नियम या अन्य कोई शक्ति के रूप में विचार किया जाए। मनुष्य का सदियो का अनुभव है कि इस प्रकार का आधार तथा पहुच वाली शक्ति सभी दृश्यमान वस्तुओ के पीछे रहती है। यह स्वय अपनी ओर नहीं बढती है पर यदि हम चाहें तो उससे अपने को सम्बद्ध बना सकते हैं। धर्म ग्रन्थो के अनुसार उठो जागो पूछो खोजो तथा प्राप्त होने तक प्रयत्न करते रहो। आप खटखटाइये आप द्वार खुला पायगे। यही शाश्वत मूल्य है जो अन्य सभी मूल्यों का स्रोत है यह एक समन्वयकारी घटक है । इसके न होने पर सभी मूल्य हवा हो जायेंगे वे सारहीन लगगे।

महात्मा गाधी की शक्ति का रहस्य उस लय या भावना मे निहित है जो अदम्य इच्छा -शक्ति के अभ्यास तथा समर्पण की अनन्त भावना के सतुलन से प्राप्त होती है। यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि अदम्य इच्छा-शक्ति तथा समर्पण की उत्कृष्ट भावना एक दूसरे को पुनर्मिलन प्रदान करती है। इच्छा शक्ति या गर्व ही स्वय उसी की बहुत बड़ी भाषा है। जनसाधारण की समझ से परे होते हुए ध्वनि करता है। एक यही विचार अज्ञेय है।

मनोवैज्ञानिक रूप से बात कर तो देखा जाता है कि पाषाण युगान अभावीय तथा स्वर्रहित विचारो ने ही मानव व्यवहार को निर्देशित किया है तथा अनुभव मनोविज्ञान से पृथक नहीं है। पर फिर भी साधारणत मनोविज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में इसे समुचित रूप से स्थान नहीं दिया गया है। इन अविवेकी सघटकों को पृथक कर देने की भी कोई सभावना नहीं है। ऐसा सोचना निर्मूल है कि आदमी अपने उद्देश्य विचार, भावनाए तथा सवेग शीघ्र ही भूल जाएगा। यदि ऐसा हुआ तो मनुष्य के रूप मे हम अपनी श्रेष्ठता खो देंगे।

यह जानना जरूरी है कि हम सब विवेक तथा परिपक्वता के भिन्न-भिन्न स्तरो पर सहज गति से कार्य व्यवहार करते हैं। इसके दूसरी ओर एक महान मनोवैज्ञानिक ने तो यह भी कह दिया कि कुछ विवेकहीनता मानसिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। मानवीय मूल्यों के रूप मे विवेकीकरण क सकुचित विचार पर, सावधानी के साथ समाज मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र दानों ने पुनर्वलन का आग्रह किया है। इन शास्त्रों के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व

का विकास शून्य में या समाज से पृथक या जगल में नहीं होता है बल्कि वह निश्चित् रूप से समाज में ही विकसित होता है। इस अवसर पर विश्वास किया जाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी कल्पना के अनुसार भूमिका निर्वहन करता है तथा समाज के सम्बद्ध उसी से निर्देशित है। एक प्रबुद्ध समाजशास्त्री के अनुसार "यदि व्यक्ति पूछता है कि वह वैयक्तिक रूप से भूमिका तथा अभियान या पहचान के रूप में क्या है? वह कितना महत्वपूर्ण है?तो इसका एक ही उत्तर हो सकता है कि अमुक स्थितियो में उसका यह रूप है? वह कितना महत्वपूर्ण है? तो इसका एक ही उत्तर हो सकता है कि अमुक स्थितियों म उसका यह रूप है तथा इससे भिन्न स्थितियों में उसका यह रूप है। इस सब का हमारे मूल्यों के परीक्षण तथा नीतिशास्त्र के लिए क्षणिक उपयोग है।

भारतीय मूल्य

एक उदाहरण से मूल्यों का सम्प्रत्यय स्पष्ट हो जायगा। सामान्यतया इमानदारी गुण का मूल्यो के क्रम म बहुत ऊंचे स्थान पर अकन किया जाता है फिर भी आज के ज्ञान क प्रकाश में इस गुण का स्थान लोक विरद्ध या शकाकुल हो गया है। इस प्रकार आज कोई भी अपनी भूमिका का (गभीरता से) निर्वहन करने के साथ ही अपने को भूमिका से दूर तथा असबध भी रख सकता है। यहीं भारतीय तथा पश्चिमी मूल्यों में एक मौलिक अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन समय स पास्कल तथा उसक समकालीन अस्तित्ववादियो अनुसार प्रतिबद्धता नैतिक मूल्यों म गूढ विषयक शीर्षस्थ स्थान पर गिना जाता था। इसके दूसरी और भारत म आध्यात्मिकता से अलगाव या असम्बद्धता सभी मूल्यो के योग के बराबर जाना जाता है। इस प्रकार ईश्वर को नियता तथा दर्शन के रूप में चित्रित किया जाता है तथा ससार की सभी वस्तुए उसका बनाई हुई मानी जाती हैं। उसकी भाषा मे अनेकार्थ वाले गूढ सूत्र समाविष्ट हैं जा वास्तविकता या कृत्रिमता के रूप में उसके वर्णन को असभव बना देते हैं या वर्णनातीत होता है। यह कुछ ऐसी वस्तु है जिसे गभीरता से नहीं लिया जाता पर अलगाव से अनुभव की जा सकती है।

इस सत्य को महात्मा गाधी के उदार स्पष्ट तथा अटल नीति के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। वे 26 वर्ष के लम्बे अन्तराल तक बाहर रहे तथा टॉलस्टॉयरस्किन तथा थोरो आदि पश्चिमी विचारको से प्रभावित हुए। उनके जीवन का तरीका भारतीय था लेकिन उनकी नैतिकता महात्मा

इसा से प्रभावित थी और यही कारण है कि य पश्चिमी देश क लोगा को प्रभावित कर सक। इसी भाति मीडलटन मरे ने गाधी जी की प्रसिद्ध पुस्तक "हिन्द स्वराज" के विषय में आह्लाद क साथ लिखा- "हिन्द स्वराज"पुस्तक आज के समय की महत्वपूण एव पवित्रतम पुस्तक है। यह प्रश्न आसानी स पूछा जा सकता है कि गाधी जी भारत क थे उनकी पुस्तक 'हिन्द स्वराज" कितने भारतीयों ने पढी है तथा इस पुस्तक के लिए मीडलटन मरे के समान महत्वपूर्ण राय बनाई है?

प्रकृति एव दर्शन

मूलत हिन्दूत्व का अलगाव क्षमा कीजियेगा गाधी जी द्वारा प्रतिपादित मूल्या क पद सोपान मे समाविष्ट नहीं है। य पूरे हृदय स पौराणिक तथा शास्त्रोक्त पर स्वप्रवत दुनिया में कभी प्रवेश न कर सक जिस पर सम्पूर्ण हिन्दू प्रकृति एव दशन निर्भर है। यदि कोई व्यक्ति यह साच कर आश्चर्य करे कि गाधी जी का दर्शन व नीतिशास्त्र भारत में अस्थायी तथा वाह्य मूल्या पर आधारित हाते हुए भी सार्वभौम प्रदर्शन पूर्ण रहा तथा भारत में जन समुदाय को आकपित करने में असफल रहा तो इसका केवल एक ही उत्तर है कि नीति तथा दर्शन पृथक् नहीं किये जा सक्ते वे एक दूसरे को छाड नहीं सकते उनका सबध दूध और उसकी सफदी जैसा है। गाधी जी से भिन्न आगे चल कर पण्डित नेहरू ने हिन्दू प्रकृति तथा उससे जुड गूढ दर्शन को आशिक ही समझा। सामान्य आदमी की उनके प्रति गहरी प्रतिक्रिया जो भी हो फ्रायड के अर्थ में दो विरोधी गुणों से सन्निहित रही- चेतन श्रद्धा तथा अचेतन विरोधी सिद्धान्त या प्रतिकूल मत। इस अज्ञात विरोध या सघर्ष ने सोचने क लिए रास्ता बताया है। इस मूल्याकन में आधुनिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र का समर्थन मिला है।

मूल्या के सकट पर विचार करते समय मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्प्रत्य विस्तृत अर्थों में लिया गया है जब कि आज व्यक्तित्व पर बहुत सकुचित तथा आज के सदर्भ से परे विचार किया गया है इस सबध म आधुनिक ज्ञान ने इस प्रकार से विस्तार में (मनोविज्ञान ने गहन रूप म तथा समाज शास्त्र न विस्तृत रूप में) सहायता की है फलस्वरूप हमारी नैतिकता का क्षेत्र भी विस्तृत हुआ है होना चाहिए।

न्यूटन के सिद्धान्त के अनुसार पदार्थ का अणु अन्य अणु को प्रभावित करता है खींचता है तथा समान रूप से प्रतिक्रिया करता है। यही सिद्धान्त नैतिकता क क्षेत्र में प्रभाव डालता है। अभी समय है कि आइन्सटान तथा

आइन्सटीन के बाद के वैज्ञानिकों ने कई क्षेत्रों मे जो प्रभाव डाला है उदाहरणार्थ सादृश्यता सिद्धान्त आदि पर विचार किया जाय।

आधुनिक मौलिक चिंतक मार्शल ने समस्याओं के हल के लिए पुराने एक समान तरीके की जगह क्षेत्रीय या बहुविध तरीकों का स्थान दिया। यही बात मूल्यों के क्षेत्र में भी समान रूप में लागू होती है। मूल्यो का केवल उनकी समन्वयवादी प्रकृति के साथ लाभप्रद अध्ययन किया जा सकता है। "माध्यम ही सदेश है" मार्शल का महत्वपूर्ण वाक्यांश है।

इस पत्र मे मूल्यों के महान् एव विस्तृत क्षेत्र के मात्र किनारे को स्पर्श किया गया है। मूल्यों की सहायता के पृथक-पृथक् पहलू पर स्वतंत्र रूप से विचार करने की अपेक्षा समग्र रूप से विचार करना उपयोगी लगता है। ऐसा विचार करते समय सम्पूर्ण मनुष्य जीवन पर-
विवेकी या अविवेकी वैयक्तिक या सामूहिक-दृष्टि रखनी चाहिए। जब तक हम कोई विचार न बनायें न कोई छोटा है न कोई बड़ा न कोई सम्बद्ध है न कोई अप्रासगिक। यद्यपि हर तथ्य पर समय तथा काल के सदर्भ में विचार करना चाहिए। उन पर समयानुसार विचार करना ही समस्या के समग्र रूप पर हल हेतु सम्मिश्र ढग से प्रहार करना है अन्यथा हम असमजस में ही पडे रहेंगे जैसा कि विलियम जैम्स कहता है- " यह सम-रसता ही गत्यात्मक सतुलन है जिसमें स्वतत्रता के साथ ही मर्यादाए, गतिशीलता के साथ विश्राम देना समाविष्ट है। इसे ही हिन्दू दर्शन में सत्य कहा गया है जो धर्म का हृदय है। यही समरसता मनुष्य तथा समाज एव समान प्रकृति के बीच स्वस्थ सतुलित परस्पर सहजीविका प्रदान करती है तब मनुष्य नहीं ब्रह्माण्ड का मात्र घर बन जाता है।

❒

वैचारिक प्रदूषण

आज चारों ओर दो बातों पर चर्चा की जा रही है। प्रथम है नैतिक शिक्षा या मानव मूल्यों की प्रतिस्थापना तथा दूसरी है पर्यावरण शुद्धि। दोनो ही समस्याओं की अपनी अपनी गम्भीरता एव अपना-अपना महत्व है। देखने में दोना समस्यायें पृथक-पृथक लगती है पर जरा गम्भीर होकर, शान्त चित्त से सोचें तो समस्या एक ही लगती है। मानव मूल्यों की स्थापना पर्यावरण शुद्धि समस्या तो है पर इस पर मानव मूल्यों की स्थापना के साधन के रूप मे भी विचार किया जा सकता है। पर्यावरण शुद्धि या सरक्षण स्वय अपने आप में कोई साध्य नहीं है। साध्य तो मानव कल्याण या मानव मूल्यों की स्थापना ही है तथा पर्यावरण शुद्धि या पर्यावरण सरक्षण तो उसका इस साध्य की प्राप्ति का साधन मात्र है।

आज का मानव जीवन सदियों के प्रयत्नों से सुधरा हुआ रूप है। मनुष्य जैसे-जैसे समझदार तथा सुसस्कृत होता गया वैसे-वैसे उसने अपने जीवन को कृत्रिमता, हेय बधनों मे जकड लिया। जब वह असभ्य या जगली था धोखा देना या झूठ बोलना नहीं सीखा था तब तक वह अपने साथियों का हित सोचा करता था तथा प्रकृति के साथ ताल-मेल या तारतम्य बनाये रखता था मनुष्य ने अपनी सुख सुविधा के लिए रेल मोटर, वायुयान रेडियो टेलीविजन अणुशक्ति चिकित्सा आदि का विकास किया परन्तु इन सभी के उपयोग का सूत्र असतुलित कर प्रकृति के सुन्दर वातावरण को प्रदूषित कर दिया तथा मानव को तरह-तरह के रोगों के जाल में फसा लिया- एक प्रकार से वह अपने द्वारा बनाये जाले में स्वय ही फस गया।

कारखाने में फालतू बची वस्तुओं को नदी या सागर में गिराया जाता है इससे जल प्रदूषित हो जाता है इससे मछलियों का जीवन खतरे में पड जाता है। कल-कारखानें व फैक्ट्रियों के विषाक्त एव कीटाणु युक्त जल से नदी सागर तथा तालाबो में मछलिया आदि मर जाती हैं। न केवल इतना ही बल्कि नदियों का पानी मानव के लिए जहर बन जाता है। अनेक वैज्ञानिकों ने यह आशका व्यक्त की है कि मथुरा की रिफाइनरी से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों से जमुना नदी का पानी तो निश्चित रूप से दूषित

होगा और साथ ही विश्व प्रसिद्ध स्मारक ताजमहल की सुन्दरता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की पूरी-पूरी सम्भावना है जिससे उसका सौन्दर्य नष्ट हो सकता है।

यह मानना चाहिए कि जितना खतरा बाह्य जगत को है उतना ही खतरा अन्तर जगत या वैचारिक धरातल या मनोजगत को भी है। अतः मानव मात्र को सजग रहना चाहिए कि प्रदूषण के बाह्य प्रभावों से अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि को कैसे बचाया जाये यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि साक्षरता का स्तर जितना ऊँचा और उसका प्रतिशत जितना अधिक बढ़ा है उतना ही अधिक मानव मूल्यों का ह्रास हुआ है। ह्रास इस अर्थ में कि अधिक पढ़ा-लिखा व्यक्ति उतने ही अधिक सुधरे हुए तरीकों से तथा बारीकी से धोखा देना सीख गया है झूँठ बोलना सीख गया है नैतिक अनैतिक तरीके से धन बटोरने के तरीके सीख गया है। प्राण लेवा दवाइयां घटिया खाद्यान्न तथा धनिकों के औद्योगिक सम्स्थानों पर रोज के मारे जाने वाले छापे इसका प्रमाण हैं। इन कामों के लिये मानव अपना व्यवहार इस तरह बना रहा है कि दूसरों को बुरा न लगे या दूसरों को बुरा लगने पर आत्मकेन्द्रित होने का बहाना बना कर बच जाये।

वैचारिक प्रदूषण के प्रसार में या स्पष्ट कहें तो मानव मूल्यों के ह्रास में हिंसात्मक एवं घृणावर्द्धक चलचित्र तथा श्रव्य दृश्य सामग्री का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा है। एक बार चण्डीगढ़ का एक समाचार पढ़ा था कि उच्च अधिकारियों के बच्चों ने मात्र आनन्द लेने के लिए सिविल लाइन्स में शौचालयों के मार्ग से घरों में प्रवेश कर विभिन्न वस्तुओं को नुकसान पहुँचाया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि बच्चों ने ये कार्य सिनेमा देखकर सीखे थे। इन फिल्मों में हिंसा, मार धाड़, बलात्कार, खून, चोरी-डकैती, हत्या आदि के कुकृत्य प्रचुरता से दिखाये जाते हैं। इस प्रकार के कुकृत्यों की हिंसात्मक फिल्मों से आज भी यदा कदा तांगे वाले या इसी प्रकार के अन्य लोग यात्रियों को या तो एकान्त में ले जाकर चाकू छुरे की नोक पर लूटते हैं या उनके साथ कुकृत्य करते हैं। यह सब घटिया फिल्मों का ही प्रभाव है।

पिछले दिनों जयपुर में विद्यालयों तथा धार्मिक स्थानों के बाहर महिलाओं के अर्द्धनग्न चित्रों को देखकर उनके विरोध में जनसाधारण ने प्रचार किया था। ये विज्ञापन के साधन के रूप में काम में लिये जा रहे थे। इनसे विज्ञापन दाताओं को लाभ हो रहा है या नहीं यह दूसरी बात है। पर इससे सामान्य जनता के मन में पाशविक या कुत्सित प्रवृत्तियों का विकास सहज है। आँखों के सामने एक ही चित्र की बार-बार आवृत्ति होने से देर सबेर प्रभाव तो पड़ता ही है।

यह उपचारहीन काय हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। सरकार की कानून व्यवस्था को जरा कठोरता से व्यवहार कर इसका निवारण किया जा सकता है। ऐसा करने से जनता का एक छोटा लाभान्वित होने वाला वर्ग अप्रसन्न हो सकता है पर समाज के बडे हित के सामने छोटे हित के त्याग के लिए तत्पर रहना चाहिए।

यह वैचारिक प्रदूषण का ही फल है कि आज चारों ओर अवांछनीय गतिविधियां ही दृष्टिगोचर हो रही हैं। चिकित्सालयों में रोगियों की समय पर देख-भाल नहीं की जाती है प्राणलेवा घटिया दवाइयां बनाई जाती है स्वस्थ रहन के लिये मच्छरों का ही नाश किया जा रहा है छात्रावासों में नींद लेने की गोलियां लेकर छात्र-छात्रायें तनाव से मुक्ति पाते हैं खाद्यान्न की उपज बढाने के लिए जंगल काट कर खेती की जा रही है। फिर उन्हें भले ही मवेशियों के लिए चरागाह या जंगली हिंसक जानवरों के चरने विचरने के लिए जगह न मिले सब्जियों के पौधों पर चिडिया न बैठे इसके लिए उन पौधों पर जहरीली दवाइयां छिडकी जाती हैं फिर भले ही उन दवाओं से चिडियां मर जाये बनिया पीसी मिर्च में लकडी का बुरादा या हल्दी में ईंट पिसवा कर बेचता है उन्हें इन चीजों के खाने वालों के स्वास्थ्य की कोई चिन्ता नहीं है। आये दिन शोध ग्रन्थों में पूर्व के शोध ग्रन्थों की नकलों के समाचार पढे जाते हैं। शोध छात्रों को एक या अन्य कारणों से परेशान किया जाता है या छात्राओं का अपहरण किया जाता है। अनुत्तीर्ण छात्राओं को स्वर्ण पदक दिलवाये जाते हैं। किसी-किसी विशिष्ट पाठ्यक्रम में प्रवेश पाने के लिये अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य करार करवाये जाते हैं। शोध छात्रों से मिठाइयां साडियां फर्नीचर तथा अन्य कीमती उपहार लेना या अपने बच्चों को उनके साथ सिनेमा भेजना क्या विकृत मस्तिष्क के द्योतक नहीं हैं? किराया तय कर तांगे से चलने पर गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर तांगे वाला लड-झगडकर अधिक पैसे ले लेता है यह सब आखिर क्या हो रहा है। क्या इस वैचारिक या सामाजिक प्रदूषण नहीं कहा जाये? वस्तुतः आज मानव मूल्यों की खोज गुलर का फूल सिद्ध हो रही है।

इस प्रकार प्रदूषण भक्तों में तथाकथित पढे-लिखे सम्पन्न ठेकेदार विज्ञानवेत्ता प्रकाशक राजनयिक उद्योगपति तथा बुद्धिजीवी लोग पाये जाते हैं। वे तन मन धन से समर्पित होकर सश्रद्धा उपासना करते हैं और इच्छा करते हैं कि चंद दिनों में ही श्री सम्पन्न होकर दानवीर, समाज सेवी तथा अति विशिष्ट लोक हितैषी बन जाये। यह बात अलग है कि उनकी सम्पन्नता

आस-पास के सम्पर्क में आने वाले हजारा लोगों को किसी न किसी रूप म रोगी पगु, पागल एव मृत समान बना देती है। वहा के जलवायु में वायु मण्डल में अन्तर आ जाता है प्रकृति विकृत हो जाती है वनस्पति वर्ण-सकर हो जाती है। कई बार पयावरण रक्षा की बात की जाती है प्रदूषण राकने क प्रयास भी सुनते हैं। पर लगता है यह सब दीखावा है और प्रदूषण दैत्य का भाई है जो विश्व में फैल जायेगा।

व्यवहार में दखने पर स्पष्ट होता है कि आज राष्ट्र के सामाजिक सास्कृतिक आर्थिक नैतिक मनोवैज्ञानिक पर्यावरण तथा सर्व शक्तिमान द्वारा प्रदत्त उपहारों में अर्थात प्राकृतिक दत्तों मे सामञ्जस्य नहीं है। एक तरफ खाद्यान्न वृद्धि के लिए, जैसा कि ऊपर बताया गया है चरागाह जोती जा रही है। दूसरी तरफ मवेशियाा क लिए घास कम हो रही है सिचाई के लिए नदियों का बाध कर जगह-जगह पानी राका जा रहा है तथा दूसरी आर लागा को पाने का पानी ही उपलब्ध नहीं हो रहा है प्रकृति का अपना सौन्दर्य है। इस प्रकार जीवन में समरसता (हारमनी) समाप्त हाती जा रही है। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति का विचार लुप्त होता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि आज की सभ्यता या जीवन प्राकृतिक सम्पदा के उपयोग पर ही निर्भर हो गया है। आज प्रकृति का उपयोग न कर उसका शोषण किया जा रहा है। यही कारण है कि प्राकृतिक शक्तिया मात्रा में कम होती जा रही हैं- उनकी गम्भीरता भी कम होती जा रही है तथा यह स्वीकार करने मे तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए कि प्राकृतिक शक्तिया प्रदूषित हो रही हैं।

एक उदाहरण देखिए-बम्बई क पास समुद्री जल क निरन्तर प्रदूषित होने के कारण मछलिया आदि जल के जीवा मे मोनोमोटिया एक विशेष प्रकार का रोग फैल रहा है। बम्बई से आगे पुणे के रास्ते पर एक स्थान निरन्तर प्रयास करके मच्छर समाप्त कर दिये इससे आदमियो का मच्छरों के आतक से छुटकारा पाना तो समझ में आता है पर इससे छिपकली दुबली-पतली होने लगी तथा डाक्टरो ने पाया कि आदमियो की मच्छरो से प्रतिरोध करने की शक्ति (रेजिस्टेन्स पावर) क्षीण हो गई -अब वे छोटी-छोटी बीमारियो से पीडित रहने लगे। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति के नियमों के विपरीत नहीं चलना चाहिए। मच्छर-मच्छर की जगह रहेगे तथा अपना काम करेगे। आखिर मच्छर भी तो किसी के लिए उपयोगी होगे ही। कई बार कहा जाता है कि रासायनिक खाद प्रयोग करके गोभी या मटर की अधिक मात्रा में फसल प्राप्त की जाने लगी है। पर यह गोभी या मटर स्वादहीन भी है ऐसी भी

कइ बार उपभोक्ता शिकायत करते हैं। लगता है प्रकृति के उपहारों का उपयोग करने का सूत्र गडबडा गया है।

प्रकृति की विपुल सम्पदा के आगे मनुष्य रक के समान है पर स्थिति यह है कि वह मालिक बन कर इसके दोहन में बिना विश्राम किये लगा हुआ है और यह दोहन भी प्रार्थना के साथ विनम्रतापूर्वक न होकर बलात्कार के रूप में हो रहा है। मनुष्य की प्रकृति का रक बना देने की इस इच्छा के फलस्वरूप उसकी भौतिक सम्पत्ति तो बढ रही है मनुष्य का उस पर अधिकार भी हो रहा है। दूसरे शब्दों में मनुष्य की वैचारिक दरिद्रता या आन्तरिक धरातल दुराग्रह की सीमा छूने लगी है। सम्भवतया मनुष्य को यह ज्ञान नहीं है कि वह प्रकृति के साथ अत्याचार करके स्वय ही दण्डित हो रहा है। मनुष्य एक ओर तो बाह्य पर्यावरण को जिसमें जीव-जन्तु, जल वायु, पेड पौधे पृथ्वी नदी तालाब कुएँ, वन पर्वत और आकाश आदि सम्मिलित हैं प्रदूषित कर रहा है अपने चारो ओर के ससार को विषाक्त कर रहा है तथा इसके विपरीत दूसरी ओर अपने मनोजगत रूपी आन्तरिक पर्यावरण के पूर्ण सर्वनाश के बीज बो रहा है। प्रकृति तथा पशु-पक्षी का बिना मनुष्य की सहायता के भी अस्तित्व रहता आया है। पर यदि मनुष्य उनकी सुरक्षा करता है तो ऐसा करके मनुष्य स्वय अपनी सुरक्षा के प्रति आश्वस्त हो रहा है तथा वह प्रकृति या पशु-पक्षी पर कृपा नहीं कर रहा है।

आतरिक पर्यावरण या मनोजगत या वैचारिक पृष्ठभूमि आज जितनी प्रदूषित हो गई है, सम्भवतया मानव जाति के विकास के इतिहास में ऐसा पूर्व मे कभी नहीं हुआ। मनुष्य-मनुष्य का शत्रु बन गया है आज की जैसी मूल्यहीन सस्कृति पूर्व में शायद कभी नहीं रही आज की जैसी व्यापक सवेदन हीनता का भूतकाल में कभी सकेत नहीं मिलता है। यदि आज का पर्यावरण विषैला है मूल्यहीन है मानव कल्याण से परे है तो सस्कृति भी उससे कैसे बची रह सकती है? वह भी उससे प्रभावित तो होगी हो। आन्तरिक विचारधारा मनोजगत या वैचारिक पृष्ठभूमि हमारे जीवन मूल्यों नैतिक मानदण्ड तथा हमारे मानव धर्म के स्तम्भों पर टिकी हुई है। पर आज की स्थिति मे ये स्तम्भ चरमरा गये हैं ढहने लगे हैं। "जीओ और जीने दो" की जगह ऐसा लगता है कि उसने दूसरों को मार कर, मैदान से हटा कर स्वय अकेले ही जीने का निश्चय कर लिया है। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि मानव सभ्यता के विनाश का असली खतरा अन्त जगत या वैचारिक प्रदूषण है। आज के प्रदूषण के लिए कुछ उत्तरदायी पक्ष हैं- जगलो का अनियन्त्रित कटाव कारखानों एव फैक्टरियों के अनुपयोगी कचरे का मुक्त उत्सर्जन मिलावट

रोकने में शिथिलता, कीटनाशकों एवं रासायनिक खादों का खेतों में अंधाधुंध प्रयोग, कारखानों-मशीनों की अनवरत वृद्धि, जलवायु-पृथ्वी आकाश को विषाक्त करने वाले वातावरण की सृष्टि, सभ्यता-संस्कृति के नाम पर कर्णकटु चीत्कार करने वाले साधन, कला तथा विनोद की आड़ में रुचि तथा चेतना को विकृत करने वाले श्रृंगार एवं प्रसाधनयुक्त नाच गान के उपक्रम आदि-आदि। प्रदूषण का फल है-समाज में विघटन, असुरक्षा तथा नरक के समान यातना भोगना और एक ही शब्द में कहें तो अपराध।

''डॉ. विवेकी राय ने कितनी पीड़ा के साथ सही लिखा है कि वनों को काट कर, आकाश को विषैली गैसों से भर कर, नदियों को सत्यनाशी कचरों से परिपूर्ण कर और उर्वर धरती में रासायनिक खाद व दवाओं का ज़हर मिला कर क्या मनुष्य अभूतपूर्व क्रूर, हिंसक, आस्थाहीन, स्वार्थी, अहमकेन्द्रित, असामाजिक और फिर इनके प्रभावों से तनावग्रस्त, खण्डित, भग्नाशय, उखड़ा, डावाडोल तथा पागल नहीं होता जा रहा है?''

क्या इस मनोजगत को शुद्ध बनाये रखने का कोई तरीका है? क्या इस बढ़ते वैचारिक प्रदूषण को रोकने का कोई तरीका है? क्या मनुष्य को प्रकृति की गोद में लौटना होगा? इसका उत्तर हाँ में देना होगा, कारण कि अन्य कोई रास्ता नहीं दीख रहा है। विज्ञान मनुष्य के बाह्य पर्यावरण को प्रभावित करता है, काबू में करता है। विज्ञान ने ही उसे प्रदूषित करने में पहल की है तो क्या वह उसे शुद्ध करने में पीछे रहेगा? नहीं, नहीं, उसे शुद्ध भी करेगा पर उसकी पहुँच बाह्य पर्यावरण तक ही है, वैचारिक पर्यावरण उसका क्षेत्र नहीं है। मनोजगत को, वैचारिक क्षेत्र को शुद्ध करने का कार्य धर्म का है, कर्तव्य का है। धर्म सुनकर आप आश्चर्य न कीजिये-यहाँ धर्म का सम्बन्ध शाश्वत कर्तव्यों से है, मानव कल्याण कार्य धर्म ही वह तत्व है जो वैचारिक जगत को जीवन देने वाली ऊर्जा प्रदान करता है। धर्म के सार्वभौमिक शाश्वत लक्षण धृति, क्षमा, दया, दान, स्नेह, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध ही ऊर्जा प्रदान करते हैं। यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त आधार है कि मनोजगत की वैचारिक पृष्ठभूमि को, आन्तरिक पर्यावरण को शुद्ध करने वाली ऊर्जाओं को पुष्ट करने से आदमी बाह्य पर्यावरण को अशुद्ध करने, प्रदूषित करने से अपना हाथ पीछे खींच लेगा उसे प्रोत्साहन नहीं मिलेगा तथा पर्यावरण को अशुद्ध करने का, प्रदूषित करने का साहस नहीं करेगा।

ऊपर के इस विवेचन से स्पष्ट है कि हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं, एक को फलने-फूलने के लिए दूसरे की सहायता चाहिए। वन बने रहेंगे

तो जगली जानवर सुरक्षित रहगे और वर्षा हागी वर्षा होगा तो नदिया भरी रहगी नदियाँ भरी रहेगी ता मगर-कछुआ और मछलियाँ जीवित रहेंगी और मनुष्य को अतिरिक्त भाजन मिलगा और अतिरिक्त पानी से खता में सिचाई हागी सिचाइ हाने स खेतों म खाद्यान्न की मात्रा बढगी खाद्यान्नों की मात्रा बढन पर मानव को आवश्यकतानुसार पौष्टिक आहार मिलेगा तथा आहार ही मानव का पहाडो की सैर करने की शक्ति दगा। माटे रूप में जीवित रहने के लिए, फलन-फूलन क लिए-हम सब को एक दूसर की सहायता चाहिए। पहाड नदी खलिहान खत मैदान पशु, पक्षी आदि सभी प्रकृति के उपहार मानव जीवन का अधिक खुशहाल बनात हैं। इसी को कहते हैं अन्तर्निर्भरता। इस अन्तर्निर्भरता का सूत्र बिगडत ही प्रकृति क विपरीत एक का दूसर द्वारा अधिक उपयाग-शोषण करने पर तालमल बिगड जाता है और मानव तथा प्रकृति में उत्पन्न विसगतियाँ उनक लिए प्राण लवा सिद्ध हाती हैं। यही कारण ह कि आज मानव का समरसतापूर्ण जावन समाप्त हा गया सा लगता है। इन्हीं आधारों पर मानव को सजगतापूवक सही दिशा में प्रयास करने हागें।

प्रदूषण की समस्या क निवारणार्थ युद्ध-स्तर पर सजगतापूवक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न हाने चाहिए। सयुक्त राष्ट्र सघ क एक प्रतिवेदन क अनुसार राग आरम्भ हाने के पूर्व राग के कारणों का उपचार करना कहीं अधिक अच्छा है ये प्रयत्न कम खर्चीले भी होंगे इससे धन बचेगा तथा मानव स्वास्थ्य की भी रक्षा हा सकगी। इस अध्याय को एक नवादित कवि की रचना से समाप्त करना समीचीन लगता है-

'आओ! मन की पावनता क साथ-साथ तन को भी पुनीत बनाय।
जल वायु, मृदा को स्वच्छ बनाकर जीवन का सच्चा सगीत सुनाये।

❑

शिक्षा मे नैतिक एव आचरण मूल्य

पिछले एक अध्याय म भावनीय जीवन में आई अनैतिकताओं क कई उदाहरण गिनाये गये हैं जो भारतवासियों के नैतिक पतन की महागाथा बताते हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब बच्चों को आदर्श नागरिकता का पाठ पढाने वाला नागरिक शास्त्र का अध्यापक स्वय ही अपने निवास स्थान की ऊपरी मजिल से बिना अपने पडोसियों की सुख सुविधा का ध्यान रखे कचरा कूडा करकट नीचे फेंकता है। एक समय था जब भारतवासी घरो में ताले नहीं लगाते थे घी दूध की नदिया बहती थी। पर पिछली तीन चार शताब्दियो से हमारी नैतिकता का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। कुछ अशों में इसका एक महत्वपूर्ण कारण हमारी प्रचलित शिक्षा प्रणाली को बताया जा सकता है। पर नैतिक पतन का यही एक मात्र कारण हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। तो फिर   । आखिर इसका कारण क्या है? भारत धर्मप्राण देश रहा है अधिकाश भारतवासियो के जीवन में धर्म एक प्रेरक शक्ति क रूप में विद्यमान है। कोई भी धर्म यह नहीं कहता कि पडोसी को दु ख दर्द म सहायता न करो या किसी का कष्ट पहुचाओं या किसी का सामान चुराओ। सभी धर्म ईमानदारी और सच्चाई दूसरों का ख्याल रखना वृद्धजनो के प्रति आदर, पशुओं पर दया दीन दु खियों क प्रति सहानुभूति जैसे चरित्र के आधारभूत गुणों पर बल देते हैं। गीता के माध्यम से भगवान श्रीकृष्ण ने धर्म का कैसा स्वाभाविक स्वरूप सामन रखा है? धारयति इति धर्म अर्थात धर्म वही है जो धारण किया जाता है। पानी का धर्म बहना है सूर्य का धर्म गर्मी देना है। इसप्रकार सभी को अपने अपने नैसर्गिक धर्म की जानकारी मिलती है। भगवान् कृष्ण आग चलकर कहते हैं कि अपने धर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी श्रेयस्कर है पर दूसरों के धर्म को स्वीकार करने की कल्पना भी भयावह है– स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह ।

इसी की व्याख्या पूज्य बापू ने और भी अधिक स्पष्ट की है। उनका कहना है कि कुम्हार यदि पढ लिखकर वकील बन जाता है तो उसे वकालत का धधा सेवा की भावना से अपनाना चाहिए तथा जीविकोपार्जन के लिए तो उसे कुम्हार के व्यवहार पर ही निर्भर रहना चाहिए। कितना ऊचा त्याग वाला दर्शन है इस व्याख्या मे।

मूल्य शब्द से तात्पर्य-

ऊपर क विवचन से यह समीचीन लगता ह कि मूल्य शब्द का अर्थ स्पष्ट किया जाय। मूल्य शब्द अग्रेजी क वल्यू [Value]शब्द का हिन्दी रूपान्तर हैं तथा वल्यू [Value] शब्द अग्रजी में क्रिया रूप म भी प्रयोग किया जाता रहा है जिससे आशय है महत्व किया जाना विचार किया जाना या वरीयता देना आदि। अग्रेजी के वल्यू [Value] शब्द का यही अर्थ वतमान सन्दर्भ म समीचीन लगता है। इस प्रकार मूल्य शब्द का आशय है उच्च स्थान दना प्राथमिकता दना क्रमानुसार महत्वपूण मानना विचार करना आकाक्षा करना वरीयता बताना दृष्टिकोण स्पष्ट करना चाहना इच्छा करना आदि। सभी इच्छाए या विचार या वृत्तिया समान नहीं होती है अत इन विचारों इच्छाओं तथा आकाक्षाओं म महत्व के क्रमानुसार वरीयता निश्चित की जाती है। यही कारण है कि मूल्य शब्द से भिन्न-भिन्न विचारक भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं तथा अपने तरीके से परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। मूल्य वे आदर्श सम्प्रत्यय वृति धारणाए या विचार है जिनकी मनुष्य इच्छा करता है तथा प्राप्ति के लिए सब प्रकार का त्याग करने को तत्पर रहता है। मूल्यो क सुस्थापित होने में अथक मानवीय प्रयासों क साथ ही लम्बा समय कीमत के रूप में चुकाना पडा है। इस प्रकार मूल्य जीवन में स्थायी विश्वास या धरोहर है।

मूल्य मार्गदशक निर्देशक तत्व है दीप स्तम्भ है। ये ही मानव जीवन के क्रम को निर्धारित करते हैं जीवन का सार बताते है ये कार्य प्रयास तथा वरीयता क्रम का चयन एव निधारण करते है ये मानव के विचार, उनकी आकाक्षा या अभिवृति तय करत हैं मूल्य ही जीवन को अथपूर्ण तथा गुणवत्ता प्रदान करते हैं।

नैतिक शिक्षा

इसी दर्शन पर आधारित नैतिक शिक्षा का विकास किया जाना चाहिए। नैतिक शिक्षा को विस्तृत एव सही अर्थो में धम से पृथक नहीं किया जा सकता दोनों पर पृथक-पृथक रूप से विचार नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार की सफदी को दूध से पृथक नहीं किया जा सकता। ऐसी शिक्षा जो केवल तातात्कालिक उद्देश्यों की ही पूति करती हा उस समग्र शिक्षा व्यवस्था नहीं कही जा सकती। शिक्षा का शाश्वत मूल्यों-सत्य शिव सुन्दरम् के विकास का आग्रह करना चाहिए।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष एव विख्यात शिक्षा शास्त्री डॉ डी एस कोठारी का यह कथन कितना सत्य है कि "हम नैतिकता

विहीन शिक्षा की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसी भांति विख्यात शिक्षा शास्त्री स्वर्गीय प्रो पी एस नायडू ने कहा था कि ' ईश्वर विहीन शिक्षा एसी बुराइ है जिस पर विचार भी नहीं करना चाहिए

एक भयकर मूल

यह देश का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि नैतिक शिक्षा पर उचित ध्यान नहीं किया गया है। विभिन्न शिक्षा आयोगो ने नैतिक शिक्षा के लिए समय समय संस्तुतिया की है पर उन पर सही क्रियान्वयन की दृष्टि से कोई प्रयत्न नहीं दिया गया। कई बार यह भी डर था कि नैतिक शिक्षा को विद्यालय के अन्य पाठ्य विषयों की तरह यदि एक विषय बना दिया गया तो इसका अध्यापन भी यात्रिक मनउबाऊ एव नीरस बन जायगा विद्यार्थियो को सूचना मात्र दी जायेगी। अन्य विषयों के समान ही विद्यार्थी नैतिक शिक्षा के सिद्धान्तो एव विषयवस्तु को रट कर उत्तीर्ण हो जायग और यहा तक कि प्रथम श्रेणी म भी। रात्रि मे देर तक याद करके परीक्षा म उगल देना तो नैतिक शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य नहीं है। नैतिक शिक्षा की परीक्षा म प्रथम श्रेणी क अक प्राप्त कर या सम्मान सहित परीक्षा पास कर परीक्षा भवन से लौटते समय परीक्षा देकर लौटती हुई सहपाठी छात्रा का दुपट्टा खींच लेना या साइकिल स्टैण्ड पर खडी साइकिल की हवा निकाल देना या सार्वजनिक खुले नल मे पानी बहने देना तो नैतिक शिक्षा का प्रतिफल नहीं है। यह तो नैतिक शिक्षा का उपहास है मखोल है।

कथनी और करनी

यह याद रखा जाना महत्वपूर्ण है कि नैतिक शिक्षा कक्षा के कमरे म ही नहीं दी जा सकती उसका अध्यापन गिनती के कालाशो या घटो म नहीं कराया जा सकता। यदि ऐसा किया गया तो नैतिक शिक्षा न होकर सूचना मात्र रह जायेगी। नतिक शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि विद्यालय के हर कार्यक्रम से विद्यालय की हर गतिविधि से विद्यालय के कण-कण स बालको को नैतिक शिक्षा मिले स्कूल के जीवन एव वातावरण म नैतिक शिक्षा प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। विद्यालय का कोना कोना नैतिक वातावरण प्रस्तुत करे यही प्रयत्न होना चाहिए।

नैतिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य किसी एक उच्च शिक्षक का ही उत्तरदायित्व नहीं होना चाहिए बल्कि इस कार्य की जिम्मेदारी सभी शिक्षकों को समान रूप स अपने कधो पर लेनी चाहिए। शिक्षको का यह निश्चय कर लेना चाहिए कि अपना विशिष्ट विषय पढाते हुए और छात्रा के सम्पर्क

म आते समय सहज रूप में बिना अतिरिक्त प्रयत्न या तैयारी के ईमानदारी और सामाजिक जिम्मेदारी जैसे आधारभूत गुणों का विकास करेंगे। नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु साहसी क्रियाओं के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि इन मूल्यों को चरित्र का अभिन्न अंग बनाना अभीष्ट हो तो नैतिक जीवन को सब और से सवारने का प्रयत्न करना चाहिए।

कथनी तथा करनी के अन्तर को एक अन्य रूप में देखिए। लोगों मे सही बात का कहने का साहस ही नहीं रह गया है व उत्तरदायित्व से बचते है। इसी आधार पर एक दूसरे पर विश्वास समाप्त होता जा रहा है। इस सन्दर्भ में भारतीय तथा पाश्चात्य मूल्यों में कितना भारी अन्तर है। उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। मान लीजिये- कोई विद्यार्थी बिना टिकिट रेल में यात्रा करते पकड़ा गया तथा परिचय पत्र के आधार पर उसके प्रधानाध्यापक को उपयुक्त जानकारी दी गई या अन्य कोई विद्यार्थी परीक्षा भवन में नकल करते पकड़ा गया। अब प्रश्न यह है कि कितने संस्था प्रधान उनके विद्यार्थियों के इन कार्यों का उनके चरित्र प्रमाणपत्र में उल्लेख करने का साहस जुटा पायेंगे या उनके इन आपत्तिजनक कार्यों के आधार पर उन्हें जिम्मेदारी के कार्य न सौंपने का चरित्र प्रमाण-पत्र में उल्लेख कर सकेंगे।

भारत में मूल्यों का बड़ा ह्रास हुआ है। अब यह भी मान लीजिए कि शायद कोई प्रधानाध्यापक साहस करके अपने विद्यार्थियों की इन नाजायज हरकतों का उनके चरित्र प्रमाण-पत्र में उल्लेख कर दे। यदि किसी ने साहस करके विद्यार्थी की नाराजगी मोल लेकर उल्लेख कर भी दिया तो नौकरी या धंधा प्राप्त करने के समय वह उस प्रमाण-पत्र को बताये ही नहीं वह यह भी कह सकता है कि प्रधानाध्यापक ने प्रमाण-पत्र दिया ही नहीं। यहां प्रश्न प्रमाण-पत्र दिखाने या न दिखाने का नहीं है। ध्यान देने की बात तो यह है कि नियोक्ता भी मैट्रिक या हायर सैकण्डरी स्कूल या स्नातक के प्रमाण-पत्र या उपाधि पत्र पर ही आग्रह करेंगे श्रेणी-अंकों का प्रतिशत या विषय आदि पर ही। नियोक्ता इस पर कोई ध्यान नहीं देंगे कि उस विद्यार्थी का प्रधानाध्यापक उसके लिए क्या राय रखता है? जबकि पाश्चात्य देशों में इसके विपरीत स्थिति है। वहां वे प्रधानाध्यापक की राय जानना चाहते हैं आवश्यक शैक्षिक योग्यता तो वे धारण करते ही होंगे तभी आवेदन किया है। पर यहां महत्वपूर्ण यह है कि वे उसके प्रधानाध्यापक की राय जाने पर भारत में ऐसा नहीं है। प्रत्याशी भी अपने प्रधानाध्यापक के प्रतिकूल सूचना वाले प्रमाण-पत्र को बताना जरूरी नहीं समझते वे भी बाह्य परीक्षा का बोर्ड या विश्वविद्यालय का प्रमाण-पत्र ही बताना पसंद करते हैं। इससे दोनों प्रधानाध्यापकों के

विश्वास की स्थिति स्पष्ट होती है।

इसी तरह का एक और उदाहरण देखिए। भारत म एक अधीनस्थ कर्मचारी सर्विस छोडकर चला जाता है तो वह अपने नियोक्ता से अपने कार्य व्यवहार के बारे म एक प्रमाण पत्र लेता है तथा अगले नियोक्ता को बताकर अपना पक्ष सबल करता है। पाश्चात्य देशो में स्थिति उल्टी है। वहा नियोक्ता को अपने अधीनस्थ कर्मचारी से अपने अच्छे व्यवहार का प्रमाण-पत्र लेना होता है। अमरीका से लौटे एक अधिकारी ने बताया कि उनको अपने कुक से उसके साथ मधुर व्यवहार करने एव भेदभाव न बरतने का प्रमाण-पत्र लेना पडा। इस प्रमाण-पत्र को उन्हें अपने नये कुक को बताना भी पड़ा। आप अपने अधीनस्थ कर्मचारी के साथ अच्छा व्यवहार करेंगे खाने-पीने मे भेदभाव नहीं बरतेंगे इस बात का विश्वास आपको अपने अधीनस्थ कार्य करने वाले कुक या अन्य कर्मचारी को देना होगा तभी वह आपका कार्य करना स्वीकार करेगा। इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य देशों म मूल्यों के विकास तथा उनके स्थापित होने म कितना अन्तर है?

नैतिक शिक्षा के साधन

नैतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए निम्नांकित विधिया या तकनीक काम म लाई जा सकती है

सदैव विद्यालय का कार्यक्रम आरम्भ होने के पूर्व शान्त एव सुरभित वातावरण में प्रार्थना-ईश वन्दना करवाय। विभिन्न धर्मों पर आधारित प्रतिदिन प्रार्थना का कार्यक्रम आयोजित हो। इससे बालकों को विभिन्न धर्मों के बारे मे जानकारी मिलेगी। प्रार्थना के बाद एक-दो मिनिट का मौन रखिए- बच्चो से आग्रह कीजिये कि वे इस समय अपने अपने ईश्वर का एकाग्रचित होकर ध्यान करें स्मरण करें तथा प्रयत्न करें कि वे सर्वोच्च सत्ता एव प्रकृति में लीन हो जाये एकाकार हो जाय और इस दुनिया के रोज के धधों से अपने को दूर ले जाकर परमात्मा के अस्तित्व से तादात्म्य स्थापित करे। प्रार्थना के साथ ही नैतिक शिक्षा से सम्बन्धित कोई वार्ता या महान धार्मिक ग्रन्थ पर आधारित सारभूत उपदेशो पर वार्ता बच्चो को सुनाय वार्ता म छिपा मन्तव्य गम्भीर हो पर बच्चों को स्वीकार्य रूप में हो अर्थात भाषा एव विधा सरल हो कहानी या वार्तालाप के माध्यम से बच्चों के सामने प्रस्तुत की जाये।

कहानी का बच्चों पर अनोखा और स्थायी प्रभाव पडता है। ''सदा सच बोलो। कहने का बच्चों पर वह प्रभाव नहीं पडेगा जो प्रभाव सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कहानी सुनने या नाटक देखने से पडता है। इस प्रकार नैतिक मूल्या और जीवन की समस्या पर चर्चा करते समय विश्व के बडे-बडे धर्मों

से ली गई कहानियों की चर्चा करना अत्यन्त सार्थक एव उपयुक्त होगा। इन वार्ताओं के लिए सस्था प्रधान का या वयोवृद्ध शिक्षक या सही अर्थो में समाज के कर्मठ कार्यकर्ताओं का उपयोग किया जाये। राष्ट्रगान का जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थी सिर्फ राष्ट्रगान लय के साथ गाने से ही परिचित न हों वरन् वे राष्ट्रगान में निहित अर्थ एव सही भावना से भी परिचित हो।

विनम्र प्रयास

जब भी विद्यार्थी पानी पीने के लिए जलगृह जाये या स्कूल बस में बैठने का प्रयत्न करे तो उन्हें बताया जाना चाहिए कि पक्ति बनाकर जाय या बस में बैठे। कहीं एसा न हो कि स्वस्थ छात्र कमजोर या दुबले पतले छात्र का धक्का देकर पीछे धकेल दें। इससे उनमें -''प्रथम आओ स्थान पाओ'' सुनहले नियम के पालन की भावना का विकास होगा। वे अपनी बारी आने तक प्रतीक्षा करना सीखगे। इससे वे डाकघर से पोस्टेज आदि खरीदने का कार्य भी पक्तिबद होकर करने के अभ्यासी बनेंगे।

विद्यार्थी जब भी कोई वाद-विवाद प्रतियोगिता हो या नाट्य अभिनय हो या वन भ्रमण के लिये विद्यालय की चार दीवारी से बाहर गये हों तो उन्हे धैर्य रखने को कहा जाए। उन्ह समझाया जाय कि कोई सवाद पसद न आने पर भी धैर्य से बैठिये। आपको विरोध करने का मौलिक अधिकार है पर आपके ही साथी को भी अभिनय प्रस्तुत करने का आपकी तरह ही समान रूप से अधिकार प्राप्त है। यदि आप अपने साथी के अभिनय की प्रशसा करके उसका साहस नहीं बढा सकते तो कम से कम शाति से बैठिये इतनी सहिष्णुता सहन-शीलता तो आपम आनी ही चाहिये। विद्यार्थिया को यह बताया जाना चाहिए कि जो वार्ता या वस्तु उन्हें दु खदायी है या पसद नहीं है या रुचिकर नहीं है जरूरी नहीं कि वह दूसरों के लिए भी वैसी ही हो या दु खदायी हो। सक्षेप में शालीनतापूर्ण व्यवहार सीखना ही नैतिक शिक्षा की प्रथम सीढी है।

''नैतिक शिक्षा दी नहीं जाती यह तो पकडी जाती है।'' सिद्धान्त के अनुसार स्वय सभी सदैव अपने दैनिक व्यवहार मे आदर्श एव अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करें। सभी अध्यापकों का व्यवहार निष्कपट सरल एव निश्छल हो। कृत्रिमता पूर्ण न हो अनुकरणीय हो। विद्यार्थियो को कहने की जरूरत नहीं होती कि यह कार्य करो या वह कार्य मत करो। विद्यार्थी तो अपने अध्यापकों का अनुकरण करते हैं अत अध्यापकों को स्वय आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये। नैतिक शिक्षा तो हृदय को शुद्ध करती है अत शिक्षा तो पाशविक सवेगो पर नियन्त्रण करना सिखाती है और अनुशासित जीवन क्रम का विकास

करती है। उन्हे सदैव सजग रहना चाहिये कि वे ऐसा कोई कार्य या व्यवहार न करे जो बच्चो के लिये अनुपयुक्त हो। ऐसा होने पर शिक्षका के मना करने पर भी बालक उसे करना सीख लेगे।

जीवनियो द्वारा नैतिक शिक्षा

महापुरुषो की जयन्तियो को सास्कृतिक पर्वों राष्ट्रीय उत्सवों या त्यौहारों को प्रभावी ढग से बिना किसी प्रकार का भेदभाव किये विद्यालय मे मनाया जाये सभी विद्यार्थियों को समान रूप से भाग लेने का प्रेरित किया जाये। महापुरुषो की जीवनियो के महत्वपूर्ण अश प्रभावी ढग से विद्यार्थियो के सामने प्रस्तुत किये जाये। इन जीवनियों म महात्मा बुद्ध महावीर कन्फ्यूशियस सुकरात ईसामसीह रामानुज माधव मीरा तुलसी सूर मोहम्मद कबीर जोरोस्टर नानक गाधी विनोबा आदि के नाम सम्मिलित किये जा सकते हैं। इसी भाति गीता रामायण वेद पुराण कुरान ग्रथ-साहब बाईबिल धम्मपद ओल्ड या न्यू टैस्टामेण्ट के अशो का भी प्रयोग किया जा सकता है। मूल बात यह है कि सभी धर्मों की अच्छाइया प्रस्तुत की जाये तथा सभी धर्मों की मौलिक एकता पर आग्रह किया जाये। एक उदाहरण से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

एक बार स्वामी विवेकानन्द प्रवचन कर रहे थे उनकी तेजस्विता विद्वत्ता भारतीय सस्कृति से प्रभावित होकर एक अधेड महिला ने उनसे वचन चाहा कि वे उसका कहना मानेगे। विवेकानन्द उसका मन्तव्य जानने का आग्रह करते रहे। अत म महिला ने विवश होकर कहा कि मैं आपसे विवाह करना चाहती हू। ऐसा सुनना था कि विवेकानन्द भौचक्क रहे गये। तत्काल ही स्थिर पर गम्भीर होते हुए बोले- 'मै तो दुनिया से निर्लिप्त साधु हू। मेरे साथ विवाह करने से आपको क्या मिलेगा?

उस महिला ने बिना एक क्षण खोये तत्काल उत्तर दिया- मै आप जैसा ही एक तेजस्वी पुत्ररत्न चाहती हूँ।

ऐसा सुनना था कि विवेकानन्द ने तत्क्षण ही कहा- 'ठीक है। आप मुझे ही और अभी से अपना बेटा मानिये। मुझे आदेश दीजिये कि मैं क्या करूँ?

व्यावहारिक नैतिकता का कैसा अनुपम उदाहरण है। विरले ही ऐसे उदाहरण व्यवहार मे दैनिक जीवन में देखने को मिलते हैं। क्या इस उदाहरण से हमारे बच्चो के मस्तिष्क गौरव से ऊपर नहीं उठेंगे? इसी भाति 25 दिसम्बर या जन्माष्टमी मनाने मे कोई भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये। ईदुलफित्तर मनाते समय भी सभी विद्यार्थियो को समान रूप से अवसर दिया जाना चाहिये।

प्रस्तुत किये जाने वाले कार्यक्रमों में सभी को भाग लेने को प्रेरित करना चाहिये। यदि शिक्षण संस्थाओं से आध्यात्मिक या नैतिक शिक्षा पृथक कर दें तो यह शिक्षा व्यवस्था भारतीयता रहित हो जायगी। इसमें सन्देह की कहीं कोई तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

देश भक्ति की प्रेरणा –

अन्तर्राष्ट्रीय धर्मों के नैतिक मूल्यों पर अधिकारी-विद्वानों के भाषण करवाने चाहिये। इ धर्मों की महान बातों को कहानियों के माध्यम से विद्यार्थियों के सम्मुख रख सकते हैं। उच्च स्तर पर धर्म का सार्वभौमिक रूप तथा उच्चतर स्तर पर धर्म के दर्शन का अध्ययन कराया जा सकता है। जिन नैतिक मूल्यों को शिक्षा देने का प्रयत्न किया जाता है वे बड़े-बड़े धर्मों के उपदेशों में निहित हैं। विद्वानों का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि विद्वानों की कथनी तथा करनी में न्यूनातिन्यून अन्तर हो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विद्यार्थी उनको पाखण्डी समझेंगे क्योंकि विद्वान धर्माचार्यजी जो कह रहे है वे स्वयं वैसा नहीं कर रहे हैं। विद्यार्थी तो अबोध एवं कोमल मति वाले होते हैं। ऐसी स्थिति में कथनी एवं करनी में अन्तर रखने वाले विद्वानों के भाषण विद्यार्थियों को लाभ की जगह हानि पहुंचा सकते हैं। यह बड़ा भावुक तथ्य है जिसे दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता।

अन्तर्राष्ट्रीयता से ओतप्रोत देश भक्ति की बातें छात्रों के सम्मुख रखी जाये। यहां यह ध्यान रखना होगा कि यह अन्तर्राष्ट्रीयता अंधदेशभक्ति मात्र बन कर न रह जाये। इसके लिए इतिहास के विभिन्न पात्रों को चुना जा सकता है विश्व इतिहास की मदद ली जा सकती है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुरुचिपूर्ण कविताओं का लय के साथ पाठ कराया जा सकता है। भाषा की पाठ्य पुस्तकों में संत-महात्माओं समाज सुधारकों धर्म के उन्नायकों के उपदेशों को सम्मिलित किया जाना चाहिये। इससे बच्चों में अपनत्व की भावना का विकास होगा सार्वजनिक सम्पत्ति के प्रति लगाव-प्रेम पैदा होगा। कितना आश्चर्य है कि आज देश प्रेम की किसी भी स्तर पर शिक्षा नहीं दी जाती?

देश भक्ति ही आगे चलकर विशुद्ध अन्तर्राष्ट्रीयता में बदली जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव अविश्वास घृणा एवं शीतयुद्ध की समाप्ति के लिए इसका कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है? इस पर ठण्डे दिमाग से विस्तृत अर्थों में गहरा समग्र मानवता के कल्याण की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिये। आशय यह है कि बालकों में देश भक्ति श्रद्धा साहस अनुशासन मानवता के लिए प्रेम त्याग विश्व नागरिकता तथा सहिष्णुता जैसे गुणों का विकास किया जाए।

उद्देश्य यह हो कि विद्यार्थियों में देश के लिए हर सम्भव त्याग करने की भावना का तीव्रतम विकास हो जो आज की राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से प्रथम आवश्यकता है।

शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिये कि देश की सामाजिक एव आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही विद्यार्थियो की योग्यताओं एव अभिवृत्तियो की प्रकृति प्रदत्त सीमाओ तक विकास में योग दें। अवकाश के समय में अन्तर्राज्यीय कार्य गोष्ठिया आयोजित की जाये जहा राष्ट्रीय महत्व की रचनात्मक प्रायोजनाओ पर बिना किसी रग वर्ण लिग, जन्म स्थान जाति एव धर्म के आधार पर भेद किये सभी विद्यार्थियो को विचार विमर्श के लिय अवसर मिले। देश मे वृहद छात्रावास सचालित किये जाये तथा उनमे मेधावी छात्रो को बिना किसी भेदभाव के प्रवेश दिया जाये। वे एक दूसरे के सम्पर्क मे आयगे उनके दृष्टिकोण को समझेंगे उनके दु ख दर्द के समय मदद करग एक दूसरे के लिये त्याग करना सीखेंगे जो समरसतापूर्ण जीवन जीने के लिए आधार का कार्य करेंगे। विद्यार्थियों को ऐसी स्थितिया प्रस्तुत करनी चाहिये कि वे मानसिक शान्ति के साथ ससूत जीवन प्राप्ति के उद्देश्यो के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकें।

गैर विद्यार्थी नवयुवको के लिये उपयुक्त मनोविनाद की सुविधाए जुटाई जाये। शिक्षण सस्थाओं से निकले ऐसे विद्यार्थियों के लिए सप्ताह मे एक दिवस स्थानीय महाविद्यालयो मे अध्ययन की व्यवस्था पर विचार किया जा सकता है।

नैतिक मूल्यो के विकास का भी सकेत तो नई शिक्षा नीति के दस्तावेज में किया गया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद् ने 84 मूल्यों की एक तालिका भी तैयार की है। राज्यों ने इसका अपनी आवश्यकतानुसार अनुवाद भी किया है। मोटे रूप से इन मूल्यो म प्रजातान्त्रिक मूल्य व्यक्तित्व का आदर, सहिष्णुता धर्मनिरेक्षता राष्ट्रीयता सहयोग सहानुभूति सामाजिक न्यास सबन्धी मूल्यो को जोड़ा गया है।

भारतीय पृष्ठभूमि में एक महत्वपूर्ण मूल्य बताया जा सकता है और वह है बडों या वृद्धो का आदर। वृद्धो को सम्मान केवल दिल्ली की बसो मे ही देखने को मिलता है अन्यत्र तो उसके दर्शन कठिनाई से ही होते हैं। बसो में भी वह अकित है। भारतीय नागरिक अपनी विधवा बहिन या विधवा बुआ या भाभी या माता का पालन पोषण करना अपना परम एव सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य मानते हैं केवल इतना ही नहीं बल्कि वे ऐसा करके प्रसन्नता- गर्व अनुभव करते हैं। यहा पाश्चात्य सस्कृति की एक घटना का वर्णन करने का लोभ सवरण नहीं किया जा सकता। आज से 20-22

वर्ष पूर्व भी अमरीका में उम्रशुदा लोग वृद्धजन आश्रम में रहा करते थे। एक पिता को उनका एक पुत्र रविवार को घटी लगाकर आश्रम से बुलाता है तथा प्रार्थना के लिए अपनी गाडी से गिरजाघर ले जाता है। प्रार्थना पूरी होने पर उन्हे पुन वृद्धजन आश्रम मे छोड देता है। रास्ते म न कोई बात न कोई कुशल क्षेम पूछना न पिता के पडोसियों क कोई समाचार पूछना किसी प्रकार की कोई बातचीत नहीं यह है पाश्चात्य देशों में वृद्धो के सम्मान हेतु मूल्य। इस शिक्षा नीति में वृद्धो के प्रति बडे बूढों के प्रति सम्मान के लिये स्पष्टत कुछ नहीं कहा गया है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार साधु-सन्तों महात्माओ त्यागी पुरुषों तथा उपदेशकों को सम्मान दिया जाता है। कहा है वह भावना [मनोवृति] आज? जब महात्मा लोग बाजार से निकलते थे तो श्रद्धा के साथ सभी लोग खडे हो जाते थे राजा लोग अपना सिंहासन छोडकर दूर खडे होकर उन्हें सम्मान देते थे। आज न तो साधु सन्त दिखते हैं तथा न ही सम्मान करने वाले नागरिक।

भारत में प्राचीन समय से ही पुत्रों का बडा महत्व रहा है। उस समय की अर्थ व्यवस्था में कृषि ही मुख्य व्यवसाय था कृषि में बलिष्ठ पुरुषों की ही भूमिका महत्वपूर्ण होती थी वे शिकार भी करते थे। स्पष्ट है कि इस कार्य के लिये पुत्र ही अधिक उपयुक्त होते थे पुत्रियाँ उनकी तुलना में कमजोर मानी जाती हैं पुत्र का समाज में महत्व आज भी है पर महत्व का आधार बदल गया है तथा पुत्रियो को हीन या तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाने लगा जिसका कोई औचित्य नहीं है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसा वर्णन आता है कि प्राचीन भारत में ग्राम आत्मनिर्भर इकाई होते थे हो सकता है यह स्थिति आज से 200 वर्ष पूर्व भी रही हो। किसान खाद्यान्न तथा दाले पैदा करता था सुथार उनके खेती के औजार बना देता या मरम्मत कर देता था चमार जूते बना देता था दर्जी कपडे सी देता था, सुनार जेवर बना देता था धोबी कपडे धो देता था लोहार आवश्यकता के समय उनके औजारों को ठीक कर देता था या नये बना देता था। संक्षेप में गाव के निवासियों की हर आवश्यकता वहीं पूरी हो जाती थी आवश्यकताए भी सीमित थीं। आज इस प्रकार के आत्मनिर्भर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज आवश्यकताए अनगिनत हो गई है। अर्थशास्त्र के एक सिद्धान्त के अनुसार तो विकास के लिए आवश्यकताओं में वृद्धि आवश्यक है। पर ये अनन्त तथा असख्य आवश्यकताए मनुष्य को कहा ले जायेगी? क्या इस दृष्टि से कुछ भी सोचे जाने की आवश्यकता नहीं है?

प्राचीन भारत में गावों में किसी बेटी की शादी हो जाने पर पूरा गाव उसकी सुरक्षा को अपनी जिम्मेदारी मानता था उसको पूरे गाव की बेटी माना जाता था। उसके प्रत्येक सुख दु ख म वे समान भागीदार होते थे ऐसे समय व जाति वर्ण धर्म आदि पर कोई विचार नहीं करते थे। इतिहास एसे उदाहरण प्रस्तुत करता है कि कभी किसी बेटी पर आपत्ति के समय पडौसी या गाव के अन्य नागरिक जान की बाजी लगा देते थे कहा है वह विचारधारा- कहा है ऐसी मनोवृत्ति? आश्चर्य तब होता है जब गाव तो दूर पडोस के लोग ही दरिन्दे बन जाते हैं।

सामाजिक सगुथन

जब भी कोई व्यक्ति गाव से निकलता तथा सध्या या रात का समय होता तो ग्रामीण उसे वहीं ठहर जाने का आग्रह करते थे। उन्हें कष्ट न होने तथा हैसियत के अनुसार भोजन प्रस्तुत करने का भी निवेदन करते थे। आज स्थिति यह है कि आप कभी किसी से किसी जगह जाने के लिए रास्ता पूछे तो आप तो वहीं खडे रह जायेगे तथा उत्तर देने वाला बिना उत्तर दिये 10-12 कदम आगे बढ चुका होगा। वास्तविकता यह है कि आज जीवन बडा व्यस्त हो गया है तथा आदमी अपने आप मे केन्द्रित होता जा रहा है उसे दूसरो से कोई मतलब ही नहीं है। आप किसी के यहा रात्रि बिताने की बात करे तो आपको धर्मशाला या विश्रामगृह का रास्ता बतायेंगे। इसके दूसरी ओर पुरातन समाज के सुगथन का एक उदाहरण देखिए। चालीस पचास वर्ष पूर्व तक समाज में जब कभी मृत्यु या शादी-विवाह का अवसर आता तो आटा दाल बेसण की पडौसी या मुहल्ले के सभी बडे-बूढे लोग मिल-बैठकर व्यवस्था कर लेते। सन्ध्या में सभी वस्तुए बाट लेते तथा प्रात पीसकर वापस ठीक स्थान पर पहुचा देते। चूकि उस वक्त आटा पीसने की चक्की हर गाव में नहीं पहुची थी । सब काम हो गया और किसी को कोई शिकायत नहीं। इसी भाति गावों में शादी के समय पडौसी कपडे सिल देते- यह कार्य किसी एक परिवार का नहीं बल्कि पूरे गाव का माना जाता। कितना जुडाव कितनी निकटता थी उन दिनो गावों में?

जीवन मे सहयोग का स्थान

सहयोग-सहकार सामूहिक जीवन का महत्वपूर्ण अग था। इसका जीता-जागता उदाहरण यों बताया जा सकता है- जब किसी परिवार मे कोई मृत्यु हो जाती तथा परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर होती तो सम्बन्धी-रिश्तदार एव आसपास के मिलने वाले सभी लोग केवल शोक बताने ही नहीं आते वरन् अपने साथ आटा दाल घी बेसण गुड तथा दलिया भी

आवश्यकतानुसार लेकर आते दु ख म हाथ बटाते। सामूहिक भोजन तैयार होता तथा मिल-बैठकर प्रसाद पाते। आगन्तुक बिखरने के पूर्व मुखिया से आग्रह करते कि दु ख भूलिए, ईश्वर को एमा ही मजूर था तथा अपने दैनिक कार्य को जीविका को सम्भालिये। ऐसी परम्पराए आज भी देश के विभिन्न भागों या पवतो के चरणों में बसे आदिवासिया म पाई जाती हैं। जिन्ह हम जगली अनपढ तथा पिछड लोगा की सज्ञाआ से पुकारते हैं। पर क्या ये लोग मानवता की कसौटी पर हम पढ-लिख या साक्षर [शिक्षित नहीं] सभ्य कहलाने वाले लोगों से ज्यादा अच्छे नहीं ह? निश्चय ही व सही अर्थो म शिक्षित हैं इन ग्रामीणा के जीवन म कोई बनावटीपन नहीं छल या कृत्रिमता नहीं न झूठ का सहारा एक समान व्यवहार। क्या उन लोगों का सहयोगी जीवन हम तथाकथित सभ्य तथा शिक्षित लोगा की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च एव अनुकरणीय श्रेणी का नहीं है।

वैयक्तिक विचारधारा का विकास

हमारे पडोस म कौन रहता है? आज हमें यह मालूम नहीं है। कोई किसी के दु ख दर्द म काम नहीं आता उसे अपने कार्यों से ही फुर्सत नहीं है। एक समय था जब पडोस में कोई शादी है या मागलिक उत्सव है तथा किसी के यहा कोई मृत्यु हो गई ह तो एक निश्चित अवधि तक गाना बजाना नहीं होता था। यदि पदयात्री पूज कर आ रहे हैं तो एक निश्चित सीमा तक आनन्द या विनोद का कार्य नहीं होता अर्थात ढोल नगारे या बैण्ड नहीं बजायेगें। कितनी निकटता थी उस वक्त कितना लगाव था लोगों म और आज उन्ह बात करने की भी फुर्सत नहीं है।

पड़ौसी के साथ कैसा व्यवहार करना है? रोगी के साथ कैसा व्यवहार करना है? यह मोटे रूप स यही सामाजिक धर्म माना जाता था। यह सामाजिक दायित्व ही मानव धर्म था। आज स्थिति यह है कि मानव धर्म का निर्वाह तो दूर आतक फैलाया जाता है अपहरण किया जाता है विमान रोक जाते हैं बस लूटी जाती हैं घटिया जानलेवा दवाइया बनाई जाती हैं। स्पष्ट है कि मानव धर्म या सामाजिक धर्म आकाश कुसुम जैसा हो गया है।

भारत म मानव ने प्रकृति को सदैव ही सहचरी माना है उस अपने अधीनस्थ कभी नहीं माना। पर आज मानव विज्ञान के विभिन्न साधनों स प्रकृति पर विजय पा लेना चाहता है। क्या यह भारतीय सस्कृति के प्रतिकूल नहीं है? आज यदि कोई आदमी पेडो की रक्षा करता है पौधों को पानी देता है काटता नहीं है तो आदमी ऐसा करके पेडो पर कृपा नहीं कर रहे हैं। महत्वपूर्ण यह है कि ऐसा करके आदमी प्रकृति क साथ अपने ही

सहअस्तित्व की सुरक्षा कर रहा है यह अपने जीवन की सुरक्षा कर रहा है। मनुष्य को यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि मनुष्य की बिना सहायता के भी पेड़-पौधे पशु, पक्षी प्रकृति जीवित रह सकते है पर यदि मानव इनकी सुरक्षा करता है तो ऐसा करके वह अपनी स्वयं की सुरक्षा की गारंटी कर रहा है अपने सुख सुविधायुक्त जीवन की व्यवस्था कर रहा है।

ब्रह्माण्ड पर भी हस्तक्षेप

आज मनुष्य ब्रह्माण्ड तक पहुच गया है वह वहा भी छेड़खानी कर रहा है या शाश्वत नियमों मे दखल दे रहा है। कई सार्वभौमिक या सर्वव्यापी नियम व्यवस्थाय मनुष्य को अपने सकुचित स्वार्थ के कारण रास नहीं आ रही है या मनुष्य उन्हे उपयुक्त नहीं पा रहा है वह उनमें परिवर्तन चाहता हैं। उनमे परिवर्तन होगा या नहीं इसके लिए तो निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता पर वह अपने प्रयत्नों मे कोई कसर नहीं छोड रहा है। वह हर सम्भव प्रयत्न कर ब्रह्माण्ड को भी अपने वश में करना चाहता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि नैतिक शिक्षा के उद्देश्यों में कोई अन्तर स्पष्ट नहीं होगा पर नैतिक शिक्षा अध्यापन की व्यवस्था के क्रियान्वयन मे महत्वपूर्ण अन्तर दिखाना ही इसकी सफलता है। कक्षाध्यापन के समय यदि इन कतिपय सुझावो पर ध्यान दिया गया तो नैतिक शिक्षा के फलितार्थ स्पष्ट दृष्टिगोचर होंगे। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन अधिकारियो को चाहिए कि क्रियान्विति के समय भारतीय सास्कृतिक मूल्य उनकी आखों से ओझल न हो जाय। तभी बालक का सही मानव के रूप में विकास हो सकेगा। इस प्रकार यदि देश के भावी नागरिको को सही रूप में नैतिक शिक्षा दी गई तो देश में प्रसन्नता उज्ज्वल भविष्य चरित्र व्यवहार सम्पन्नता विश्वबन्धुत्व की भावना श्री वृद्धि एव एकता अग्रसर होगी।

❏

मूल्यो का मापन ओर मूल्याकन

बालकों में मूल्य या वृत्ति विकास की मात्र पपर पेन्सिल से परीक्षा नहीं ला जा सकता। यदि ऐसा किया गया तो वह कपरा सूचना प्राप्ति की परीक्षा हागी। अत परीक्षा की अन्य विधियाँ यथा-अनुसूची आत्मकथा समाजमिति घटनावृत मान निधारण सामाजिक दूरी मापन तथा क्रियात्मक परीक्षा आदि का भी सहारा लेना होगा। अध्यापका के निर्णय उनकी सम्मति उनका वस्तुनिष्ठ एव पक्षपात रहित अवलोकन भी महत्त्वपूर्ण है तभी मूल्याकन को अधिक विश्वास क साथ स्वीकारा जा सकता है। मूल्य विकास के क्षेत्र मे विद्यार्थिया की निर्योग्यताओ का पता लगा कर उन पर व्यक्तिगत रूप से से अधिक ध्यान दिया जा सकता है। अस्तु, हम स्पष्टत जान सकेंगे कि किसी एक विशिष्ट मूल्य के मूल्याकन म एक या एक से अधिक तकनीक या विधियों को काम मे लिया जा सकता है। इसी भाति एक तकनीक या साधन एक से अधिक मूल्यों के मूल्याकन हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।

मूल्याकन के उद्देश्य

मूल्याकन किसी भी क्षेत्र म किया जाये उसक कुछ स्पष्ट उद्देश्य हाते हैं। अध्यापक कुछ उद्दश्य निश्चित करके मूल्य शिक्षण करता है। मूल्याकन के द्वारा वह यह जानने का प्रयास करता है कि अपनी उद्देश्य-प्राप्ति में उसे किस सीमा तक सफलता मिली है। यह भी कि उसे अपने शिक्षण के मूल्याकन-कार्यक्रम में कहा सशोधन करना वाछनीय है? छात्र की कहाँ एव किस स्थल पर विवशता रही है। इसकी कठिनाइ क्या है? अस्तु, अध्यापक अपने विद्यार्थिया के सबध म अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर उनका उपयुक्त मार्गदर्शन कर सकता है एव स्वय द्वारा निर्धारित कार्यक्रम में सशोधन एव परिवतन ला सकता है।

इस अनुच्छेद को पढकर आप

- मूल्या के मूल्याकन की विधियो प्रविधियों तथा साधनों को जान सकेंगे।
- किसी विशिष्ट मूल्य के मूल्याकन हेतु अधिक सक्षम बन सकेंगे।
- विभिन्न मूल्या के मूल्याकन हेतु सर्वाधिक उपयुक्त विधि साधन या तकनीक

का चयन कर सकगे।
निष्कपत निम्नांकित दा क्षेत्रा में कार्य किया जा सकगा-
- मूल्याकन म सुधार-सशाधन की नई तकनीकों का प्रयाग पाठ्यक्रम म सुधार हतु सुझाव।
- विद्यार्थिया क आचरण म आई त्रुटिया का आक्लन एव उनका समुचित मार्गदर्शन।

क्रिया कलाप- प्रेमचन्द की कहानी पर आधारित नीचे लिखा अंश पढ़-

रियासत दवगढ के लिए नय दावान का चयन करना था। राजा साहिब ने यह कार्य दीवान को ही सौंपा। रिक्त पद के विज्ञापन क उत्तर मे प्राप्त आवेदन पत्रों में से कइया को साक्षात्कार के लिये बुलाया गया। साक्षात्कार कई दिन चलना था। अत उनक रहने की व्यवस्था की गइ। उनका आचरण दृष्टिकोण विचारधारा खलते खाते सोते उठते-बैठत-यात करत समय दख कर उपयुक्त प्रत्याशी का चयन करना था। प्रत्याशी खल-खेलकर लौट रहे थे। सध्या म नाले में एक गाडी धस गई- एक ता गाडी म अनाज अधिक भरा था दूसर बैल कमजोर थे। अत बैल गाडी को नाले के ऊपर ले जा नहीं पा रह थे। इसलिए गाडी वाला यह आशा कर रहा था कि गाडी को नाला पार कराने मे कोई उसकी मन्द कर दे। खिलाडी एक-एक करके नाला पार कर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुच रह थे। इसी बीच उसमें से एक खिलाडी रुका तथा गाडी वाल से बैलों को साधने को कहा तथा स्वय नाले म कीचड में उतर कर पहिए को जोर से घुमाकर ऊपर चढाने का प्रयत्न किया तो गाडी नाले के ऊपर थी।

गाडी वाले का चेहरा प्रसन्नता से चमक रहा था कि "आपने सहायता न की होती तो सभव है रात यहीं रहना पडता। भगवान ने चाहा तो आप ही दीवान बनगे।'

यहा कुछ बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अनाज से भरी गाडी नाले म गाडी का फसना एक-एक कर खिलाडियो का नाला पार कर लेना गाडी निकलवाने का आग्रह करना कीचड में उतर कर गाडी को नाले पर चढवाना। ये सभी घटनाए बहुत छोटी हैं पर मूल्यो के मूल्याकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस छाटी सी घटना में दूसरों के लिए विचार, सहिष्णुता सहायता सहानुभूति आदि मूल्य स्वत स्पष्ट हो जाते हैं। थोडा और बारीकी से विचार करने पर श्रम की महत्ता का मूल्य भी उजागर होता है।

क्रिया कलाप

- मूल्याकन करते समय आधार सामग्री को लेकर विचार कीजिए।

आचार्य द्रोणाचाय की परीक्षा- व्यवस्था सबधी उदाहरण पढ़ें -

आचार्य द्राणाचाय एक बार पाण्डवा की परीक्षा लेने क लिए उन्हें जगल में ले गय। वहा एक पड की ऊँची डाला पर एक चिडिया रख दी। परीक्षा में छात्रों को चिडिया की आँख की पुतली छेदनी थी। आचार्य द्रोणाचार्य क पूछन पर छात्र बताते रह कि उन्ह चिडिया दीख रही है पेड की डालिया दाख रही हैं पड से परे आकाश भी दीख रहा है पड मे दूर आग खत में चरती हुई गाय भी दीख रही है घर पर थाली में परोसा हुआ खाना दीख रहा है आचार्य दीख रहे हैं। अर्जुन के सिवाय चारा भाइयों से एसे उत्तर पाकर द्राणाचार्य ने उन्हें परीक्षा में अनुतार्ण घोपित कर दिया। अब अर्जुन की बारी थी। द्राण ने इसी प्रकार के प्रश्न अर्जुन स भी किये। अजुन ने बताया- कि उस केवल आँख की पुतली दीख रही है। चिडिया तो दूर उसे चिडिया की आँख भी नहीं दीख रही ह। इस प्रकार अर्जुन परीक्षा म

निम्नाकित बिन्दु ध्यान खींचत हैं- परीक्षा की व्यवस्था सामूहिक परीक्षा जगल म ले जाना एक-एक को बुलाना परीक्षा म अनुतीर्ण होना बताना आचार्य का अप्रसन्न न हाना छात्रो को स्वीकार करना अर्जुन की परीक्षा लेना वही प्रश्न अजुन की एकाग्रता प्रयत्न का केन्द्रित होना और अर्जुन को परीक्षा में सफल घोषित करना

यह घटनावृत छाटा हो सकता है पर मूल्याकन के क्षेत्र में मुख्यत मूल्य विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बार-बार वाछित उत्तर न पाने पर भी आचार्य जी द्वारा क्रोध न करना हताश न होना छात्रा को प्रात्साहित करना तथा अर्जुन की एकाग्रता जीवन मूल्या क विकास की अभूतपूर्व परख है। यहा आचार्य जी का धैर्य गुण सवेदनशीलता अथवा विद्यार्थिया के प्रति ममत्व भी स्पष्ट दृष्टिगाचर हाता है। साथ ही अर्जुन क व्यक्तित्व म निहित एकाग्रता गुण को भी नहीं भुलाया जा सकता।

क्रिया कलाप

उदाहरण को पढ कर उससे विकसित होने वाले मूल्या को पहचानिए।

अध्यापक महात्मा गाधी की आत्म कथा- 'सत्य क प्रयाग' से सबधित अश कक्षा में पढ़ें-(सार नीचे दिया गया है)

एक बार विद्यालय निरीक्षक विद्यालय का निरीक्षण करने आये। निरीक्षण के समय उन्होंने विद्यार्थियों को श्रुतलख लिखवाया। एक छात्र ने श्रुतलेख म अग्रजी के एक शब्द 'कटल' की वर्तनी गलत लिख दी। यह बात विद्यालय के प्रधानाचाय का अनुचित लगा तथा उन्ह निराक्षक की डाट फटकार की भी आशका हुइ और वे इसस बचना चाहते थ। अत कक्षा

म घूमकर पर्यवेक्षण करते समय उन्होन उस छात्र को पाँव के अगूठे से सकेत किया कि वे आगे सामने बैठे छात्र की उत्तर पुस्तिका देखकर गलत वर्तनी को सही कर ले। पर छात्र ने ऐसा नहीं किया। आप जानते हैं वह बालक कौन था?

विद्यालय का निरीक्षण श्रुतलेख लिखवाना वर्तनी गलत लिखना प्रधानाचार्य द्वारा नकल करने का सकेत छात्र द्वारा उस सकेत पर ध्यान न देना।

यह घटना सामान्य होते हुए भी परीक्षा की पवित्रता बनाये रखने का सकेत करती है। परीक्षा में अनुचित साधन नहीं अपनाना चाहिए- छात्र से स्वय को धोखा न देने का आग्रह करता है।

उदाहरण को पढकर उससे विकसित होने वाले मूल्यों को पहचानिए।

'नियमितता ' गुण के मूल्याकन हेतु अध्यापक द्वारा मापन (रेटिंग) इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

अन्य कार्य कलाप-

सस्थिति विद्यालय जाते समय आप रास्ते म ही चेतावनी की घन्टी सुन लेते हैं-आप जो व्यवहार करना पसद कर उसे चिह्नित कीजिए -

- दौड कर विद्यालय पहुचने का प्रयास करना।
- साईकिल पर जाने वाले मित्र से स्वय को ले जाने का आग्रह करना।
- रास्ते म किसी मित्र की सहायता करने का बहाना बनाना।
- कारण पूछने पर घर से ही देर से चलना बताना।
- पूछने पर यह कहना कि सभी कौन से समय पर आते हैं।
- पूछने पर देरी से आना ही स्वीकार नहीं करना।
- घटी की बिना परवाह किये विद्यालय देर से पहुचना।
- घर लौट जाना।

ये सम्भावित उत्तर गम्भीरता की दृष्टि से न्यूनाधिक रूप मे दिये जा सकते हैं। नियमित बनने के लिए प्रथम उत्तर अति महत्त्वपूर्ण है जबकि अतिम उत्तर निकृष्ट। अन्य सम्भावित उत्तर इन दोनो के मध्य में है।

सेवा भावना सहायता सवेदनशीलता के मूल्याकन के लिये स्थितिजन्य परीक्षण द्रष्टव्य हैं-

सस्थिति-स्कूल जाते समय एक रोगी सडक पर पडा कराह रहा है- अपनी पसन्द के कार्य- व्यवहार को चिह्नित कीजिए -

- बडबडायेंगे कि बीमार होकर सडक पर आ जाते हैं।
- बिना ध्यान दिये आगे बढ जायेंगे।

- विद्यालय से लौट कर उसके बारे म पूछताछ करेगे।
- अन्य राहगीर से उसको चिकित्सालय पहुचाने के लिए कहगे।
- सर्वप्रथम उसे चिकित्सालय पहुचायेगे।

यहा यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यह परीक्षण-पद एक से अधिक मूल्यो का मूल्याकन करता है। यहा यह भी ध्यान देने योग्य है कि ऊपर के दोनों परीक्षण पदो म सम्भावित व्यवहार एक दूसरे के विपरीत क्रम से ह। प्रथम परीक्षण पद में प्रथम उत्तर सर्वोत्कृष्ट स्तर पर जाचा जा रहा है। दूसरे परीक्षण पद में अतिम सभावित उत्तर सर्वाधिक अपेक्षित हैं। यहा यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि सभावित उत्तरो को 1 2 3 की भाति सख्या से अभिहित नहीं किया है- इससे भी विधार्थियो को पद सोपान का सकेत मिल सकता है- अत इसस भी बचने का प्रयास किया गया है।

क्रिया-कलाप

धैर्य- सहिष्णुता मूल्य के मूल्याकन हेतु निम्नाकित पद पर भी दृष्टि डालिए -

कल परीक्षा है तथा आप आज पुस्तकालय जाकर पुस्तकें मागते हैं तो पुस्तकालयाध्यक्ष कहता है कि पुस्तके तो अन्य छात्रो के नाम चढी हैं। आप द्वारा किये जाने वाले कार्य-व्यवहार को चिह्नित कीजिए-
- पुस्तकालयाध्यक्ष पर क्रोध करगे।
- रिजर्व-प्रति से वहीं बैठ कर पढ़ेंगे।
- पुस्तक लेने वाले का नाम तथा पता जानना चाहेगे।
- बिना तैयारी के परीक्षा देने का मानस बनायेंगे।
- पुस्तक की प्राप्ति का स्थल जानकर पुस्तक खरीद लगे।

क्रिया-कलाप

श्रम की महत्ता या निष्ठा के मूल्याकन का पद देखिये-

वृक्षारोपण के लिए खड्डा खोदना है। नीचे लिखे सभावित उत्तरो पर क्रमश बाये हाथ की ओर दिये कोष्ठक में क्रम सख्या लिखिये-

( ) तत्काल स्वय खड्डा खोदेंग।
( ) अपने स छोटी कक्षा के छात्र को बुलाकर उससे खड्डा खुदवायेंगे।
( ) खड्डा खोदन का काम चपरासी को सौंपने क लिए उसे बुलायेंगे।
( ) पानी की कमी बताकर वृक्ष लगाना बेकार बतायेंग।
( ) लापरवाही स वृक्षारोपण का कार्य टाल देंगे।

ऊपर क उत्तर सकारात्मक रूप स क्रमानुसार दिये गय हैं।

क्रिया-कलाप

उद्देश्याधारित कार्य-सपादन का मूल्याकन इस प्रकार भी किया जा सकता है-

गृह कार्य हर दशा म समय पर जाचना ही चाहिए। जो कथन सवाधिक रूप से आप पर लागू हो उसे चिह्नित कीजिए।

1 सदैव 2 अधिकाश अवसरा पर 3 यदाकदा 4 सभव हाने पर
5 कभी-कभी 6 कभी नहीं

क्रिया-कलाप

बडों के प्रति आदर क मूल्याँकन हेतु एक परीक्षण पद द्रष्टव्य है-

पिकनिक के लिए जाते समय बस में आप जिन्हे जगह दग उस उत्तर का चिह्नित कीजिए-

- शिक्षक को
- अपनी ही कक्षा की छात्रा को
- भोजनालय क सेवक को
- वरिष्ठ कक्षा क छात्र को
- अपनी बारी से बस में प्रवेश करने वाल प्रथम व्यक्ति को।

मूल्याकन क पक्ष-विपक्ष देखकर पता लगाइये कि उसमे किन मूल्यों की उपेक्षा हुई है। नीचे एक अनुसूची प्रस्तुत का जा रही है। इसके जो कथन आप पर लागू हों उन्हें बायी आर ( ) चिह्नित कीजिए-

- समय पर गृह कार्य जाँचना
- भ्रमित बालक का मार्ग दर्शन करना
- समय पर कक्षा म पहुँचना
- जरूरतमद छात्र की मदद करना
- प्रार्थना सभा में दिनभर के कार्यक्रम की जानकारी देना
- कक्षाकक्ष मे छात्रों से फर्नीचर न तोडने का आग्रह करना
- बस क समय पर विद्यालय म पहुँचने की आशा करना
- निर्धन छात्रा का अवकाश के समय बगीचे म कार्य करवा कर सहायता देना
- छात्रा का जल-गृह से पंक्ति बनाकर पानी पीने का आग्रह करना
- मीरा के पद्य को लय के साथ गाने का आग्रह करना
- बीमार छात्र को चिकित्सालय पहुँचाना
- सहभाज के समय पहले छात्रा का भाजन करवाना
- नल से व्यर्थ बहते पानी पर ध्यान न देना
- सर्दी म भी पखे चलाना
- छात्रा से खिडकियो के शीशे साफ करवाना

इस प्रकार के और भी कथन जोड़ जा सकते हैं।

मूल्यांकन एव पुर्नमूल्यांकन द्वारा पुष्टि कीजिए।

अन्य क्रिया कलाप

कभी कक्षा में श्रुतलेख लिखवाइये। उसका बिना किसी प्रकार का चिह्न लगाये मूल्यांकन कीजिए। छात्रों की अशुद्धियाँ सूचीबद्ध कर रखिए। अब इन्हीं श्रुतलेखों को उन्ही छात्रों से जचवाइये। देखिये मूल्यांकन में कोई अन्तर आया है अथवा नहीं।

इसी कार्य को कभी स्वय जाचन के बाद छात्रों द्वारा अदल-बदल कर जचवाया जा सकता है। देखिये क्या इस प्रकार के मूल्यांकन मे कोई अन्तर आया या नहीं। इसस छात्रो की ईमानदारी या धोखा देने की प्रवृति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

मुक्त अभिव्यक्ति

कुछ विवादास्पद विषयो पर बालकों को बोलने-लिखने का अवसर देना चाहिए। ऐसे विषयों पर भाषण या वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित की जा सकता है-उनसे लेख लिखवाये जा सकते हैं। भाषण सुनकर या लेख पढकर उनका मूल्यांकन किया जा सकता है-एस विषयों में उनका तर्क-शक्ति स्पष्ट दीखती है। भूमिका निर्वहन (रोल प्लेइंग) विधि मे वे खुलकर बोलना पसद करते हैं। एसे विषय हो सकते हैं-आरक्षण छुआछूत पजाब समस्या जाति-प्रथा दहेज आदि। इन्हीं विषयों पर लेख के रूप में मुक्त विचार भी लिखवाये जा सकते हैं। लिखित अभिव्यक्ति को पढकर उनके मनोभावों का पता लगाया जा सकता है और विकसित मूल्यों को ज्ञात किया जा सकता है।

उपर्युक्त सामग्री को पढने के बाद हम मूल्यांकन के उपकरण साधन तकनीक या विधिया की सूची भी बनाएँ।

अनुसूची मान निर्धारण मापनी निरीक्षण अवलोकन निष्पादित कार्य की जाच आत्मकथा डायरी घटनावृत्त अभिलेख सचयीवृत चैकलिस्ट समाजमिति तथा सामाजिक दूरी मापन मूल्यांकन सबधी उपकरण हैं।

व्यावहारिकता-

मूल्यांकन के इन उपकरणों का कक्षा में सामूहिक रूप से प्रयुक्त किया जा सकता ह। इसके अलावा वैयक्तिक रूप से भी इनकी प्रतिक्रिया इन उपकरणों द्वारा जानी जा सकती हैं। यह कार्य निर्धारित उद्देश्यों पर निर्भर करेगा। यदि किसी विद्यार्थी के किसी व्यवहार का गहनता से निरीक्षण कर उसके बारे म निर्णय लेना है तो यह भी सभव है कि निरीक्षण को दोहराना

पड़े अथवा परीक्षण का दूसरी बार भी आयोजन हो।

भूमिका निर्वहन प्रक्षेपणीय विधियों में से एक है। भूमिका निभाते समय छात्र की क्या स्थिति रही है-इस पर विवेक से वस्तुनिष्ठ निर्णय कर छात्र के कार्य-व्यवहार का मूल्यांकन या वर्गीकरण किया जा सकता है।

अब यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कौनसी विधि या तकनीक किस मूल्य के मूल्यांकन में प्रयोग की जा सकती है-

पक्ष/अंग	मूल्यांकन के लिए प्रस्तावित साधन या उपकरण या तकनीक
- ज्ञान या सूचना की जांच	निबंधात्मक तथा वस्तुगत परीक्षण-इन परीक्षणों के पूरक रूप में मौखिक परीक्षा
- विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर की वैयक्तिक एवं सामूहिक गतिविधियां।	कार्यकलापों का निरीक्षण अवलोकन (सह-भागित्व युक्त तथा सहभागित्व रहित)
- प्रवृत्ति विचारधारा दृष्टि-कोण वृत्ति धारणा रुचि अवधान आदि निर्धारण	निर्धारण समाजमिति छात्र द्वारा लिखे गये वृत्त अभिलेख आत्मकथा डायरी आदि का अध्यापक द्वारा निरीक्षण-अवलोकन
- शारीरिक विकास स्वास्थ्य	बालकों द्वारा सम्पादित कार्य की क्रियात्मक परीक्षा

मूल्यांकन-

1 'मूल्यांकन' के मुख्य कार्य बताइये।

2 मूल्यों का मूल्यांकन अन्य पाठ्य विषयों के मूल्यांकन से किस प्रकार भिन्न है? स्पष्ट कीजिये।

3 श्रम के प्रति निष्ठा के मूल्यांकन हेतु श्रेष्ठ विधि (कारण सहित) बताइये।

4 सहिष्णुता गुण के मूल्यांकन हेतु दो पदों की रचना कीजिए।

5 बालकों में विकसित सामाजिकता के मूल्यांकन का कार्यक्रम सुझाएँ।

6 प्रेमचन्द की आप द्वारा पढी अन्य किसी कहानी मे उजागर हुए मूल्यो की सूची बनाइये।

7 अवलोकन कीजिए तथा बताइये कि निम्नांकित स्थितियो में किन मूल्या का विकास बालकों में नहीं हुआ है-

- शुल्क जमा कराते समय पंक्ति न बनाना।
- पर्वतारोहण के समय टाफी के रेपर वहीं फेंक देना।
- ऐतिहासिक महत्व के स्थानो पर अपना नाम लिखना।
- जन्माष्टमी मनाते समय कुछ छात्रों का पलायन कर जाना।
- पुस्तकालय की पुस्तकों से पसंद आए चित्रों को फाड लेना।

मूल्याकन सबधी अतिरिक्त क्रिया कलाप

अध्यापक ने किसी छात्र का परीक्षण या अवलोकन किया तथा इसके बाद उस छात्र का क्या व्यवहार रहता है तथा उसके व्यवहार में क्या परिवर्तन आता है-अध्यापक अवलोकन कर इस संदर्भ मे टिप्पणी तैयार करे।

मूल्यो के मापन सबधी यदि कोई विशिष्ट परीक्षण या तकनीक विकसित हुई तो आप उसका प्रयोग करते हुए भिन्न न्यादर्श/विषय पर काम कर सकते हैं। उसे प्रमापीकृत करने की योजना भी बना सकते हैं।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि मूल्या का मूल्याकन एक जटिल कार्य है। इसका महत्व इससे समझा जा सकता है कि जब डॉ राधाकृष्णन् से पूछा गया कि शिक्षा क क्षेत्र मे सुधार के लिए किया जाने वाला एक महत्वपूर्ण सुझाव दीजिये तो उन्होंने मूल्याकन प्रक्रिया में सुधार को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया। इस दृष्टि से वस्तुनिष्ठ मूल्याकन ही सर्वाधिक उपयोगी हो सकता है। सक्षेप में बालक का अपेक्षित मूल्या से सस्कार युक्त होना मूल्याँकन पर ही निर्भर करता है।

❑

मित्रता के लिए शिक्षा

मित्र वही है जो आपत्ति के समय काम आये।

— एक अंग्रेजी कहावत

जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥

— रामचरित मानस

मित्र को प्रकृति की उत्कृष्ट कृति माना जा सकता है।

— इमर्सन

जो काम पड़ने पर सहायक बनता है वही मित्र है।

— दीर्घ निकाय 6/8/2

सर्वाधिक दुःखी व्यक्ति कौन है? किसी ने पूछा। भिन्न भिन्न उत्तर मिले- धनहीन व्यक्ति, मकान रहित व्यक्ति, शिक्षाहीन व्यक्ति, विवेक रहित व्यक्ति, खेत रहित व्यक्ति, रिश्तेदार रहित व्यक्ति और भी कई .... किसी ने नहीं बताया कि मित्रहीन व्यक्ति सर्वाधिक दुःखी है, निर्धन है। धन से मित्रता नहीं खरीदी जा सकती। मित्रहीन व्यक्ति संसार का सर्वाधिक दयनीय एवं असहाय व्यक्ति है, यह कठोर सत्य है।

हममें अधिकांश व्यक्ति मित्रता की बातें करते हैं तथा वे इसे भावना से जुड़ी वृत्ति मानते हैं। प्रायः यह आन्त सी बन गई है कि दो मित्रों के बीच पाई जाने वाली मित्रता पर विचारों के प्रवाह तथा गंभीरता की अपेक्षा चंचल वृत्ति, सतही, रोमान्टिक या भावुकता के स्तर पर ही विचार करते हैं।

जब कोई कहता है कि अमुक उसका मित्र है तो इसका अर्थ उससे परिचित होने या सहकर्मी होने से अधिक नहीं है। यह असावधानी से बोली गई भाषा या भावचेत हुए बिना बोले गये शब्दों का फल है। वे वास्तव में प्रगाढ़ मित्रता, पारिवारिक सम्बन्ध, कल्याणकारी पारस्परिक दृष्टिकोण, रक्त सम्बन्धों पर नहीं सोच रहे हैं। शब्दकोष के अनुसार भी सच्चा मित्रता का यही आशय है।

कुछ लोगों का मानना है कि व्यक्ति यदि परिवार के सिवाय घर की मित्रता की बात ही न करे तो समाज का रूप ही बदल सकता है। उनका यह भी विचार है कि मित्रता का यही आदर्श रूप है। आज का

व्यक्ति मित्रता पर अशा तथा वर्गों या श्रेणियां म विचार करने लगा है जसे काम की या स्वार्थ का मित्रता सामाजिक सम्बन्धो की मित्रता अच्छी मित्रता पक्की मित्रता अविच्छिन्न मित्रता कामचलाऊ मित्रता। अन्य विचारक इसका भिन्न रूप भी तैयार कर सकते हैं। यदि शोधकत्ता अकन करना चाहे तो इन वर्गों को अको में भी बदल सकते हैं। प्राचीनकाल में लेखको तथा विचारको ने इस प्रकार का कोई वर्गीकरण तैयार नहीं किया था। वे केवल अविच्छिन्न या कभी न बिगडने वाली मित्रता पर विश्वास करते थे। गोस्वामी तुलसीदास ने तो मित्र के गुणो को बताते हुए उसकी अनिवार्यता पर पर्याप्त जोर दिया है। वे और आगे कहते हैं कि जो मित्र अपने मित्र के दु ख मे दु खी नहीं होता एसे मित्र को देखने मात्र से भी पाप लगता है। इतना ही नहीं वे आगे बढकर और कहते हैं कि जो मित्र अपने मित्र के गुणों का प्रचार करता है तथा अवगुणो को छिपाता है वह उसे कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर ले जाता है। अरस्तु तो मित्रता को दो शरीरो में एक आत्मा के समान मानता था। फ्रासिस बेकन का कहना था कि मित्रता वहा देखी जा सकती है जहा आप अपने दु ख दर्द प्रसन्नता आशा निराशा सन्देह की बात कर सके दु ख के समय में उससे सलाह मशविरा कर सके। स्पष्ट है कि इस प्रकार की उच्च श्रेणी की मित्रता के बिरले ही उदाहरण मिलते हैं। इसीलिए दार्शनिक हेनरी एडम ने ठीक ही कहा है कि मित्र तो जीवन म एक ही मिलता है यदि दो मित्र मिल गये तो भगवान को धन्यवाद है तथा तीन मित्रो के मिलने की सम्भावना तो बहुत ही क्षीण होती है। डॉ सेमुएल जॉनसन तो इससे भी एक कदम आगे बढकर कहते है कि मित्रता के लिए कई गुणो की आवश्यकता होती है तथा कठिन क्षणों में ही मित्रता परखी जा सकती है। जब उसकी श्रेणी ऊपर उठती है तभी वह अधिकाधिक नागरिको के लिए कल्याणकारी हो सकती है तथा महत्वहीन बातों पर ध्यान नहीं देती है। मित्रता करना या मित्र बनाना असभव नहीं है यदि आप सम्पर्क म आने वाला की पर्याप्त चिन्ता करे तथा उनकी आवश्यकतानुसार सार-सम्भाल करे उन पर ध्यान दे। इस सम्बन्ध मे वेद व्यास ने कितना सटीक लिखा है

"मित्र तो वही है जिस पर पिता की भाति विश्वास किया जा सके दूसरे तो साथी मात्र हैं।"

—महाभारत उद्योग पर्व, 36/37

"मित्र को कृतज्ञ धर्मनिष्ठ सत्यवादी क्षुद्रता रहित दृढ निष्ठा वाला जितेन्द्रिय मर्यादा में स्थित और मित्र को न त्यागने वाला होना चाहिए।"

मित्रता के लिए शिक्षा

मित्र वही है जो आपत्ति के समय काम आये।

— एक अंग्रेजी कहावत

जे न मित्र होहि दुखारी तिन्हि बिलोकत पातक भारी॥

— रामचरित मानस

मित्र को प्रकृति की उत्कृष्ट कृति माना जा सकता है।

— इमर्सन

जो काम पड़ने पर सहायक बनता है वही मित्र है।

— दीर्घ निकाय 6/8/2

सर्वाधिक दु खी व्यक्ति कौन है? किसी ने पूछा। भिन्न भिन्न उत्तर मिले- धनहीन व्यक्ति मकान रहित व्यक्ति शिक्षाहीन व्यक्ति विवेक रहित व्यक्ति खेत रहित व्यक्ति रिश्तेदार रहित व्यक्ति और भी कई किसी ने नहीं बताया कि मित्रहीन व्यक्ति सर्वाधिक दु खी है निर्धन है। धन से मित्रता नहीं खरीदी जा सकती मित्रहीन व्यक्ति ससार का सर्वाधिक दयनीय एव असहाय व्यक्ति है यह कठोर सत्य है।

हमसे अधिकाश व्यक्ति मित्रता की बातें करते हैं तथा वे इसे भावनाओ से जुडी वृत्ति पाते हैं। प्राय यह आदत सी बन गई है कि दो मित्रों के बीच पाई जाने वाली मित्रता पर विचारो के प्रवाह तथा गभीरता की अपेक्षा चचल वृत्ति सतही रोमान्टिक या भावुकता के स्तर पर ही विचार करते हैं।

जब कोई कहता है कि अमुक उसका मित्र है तो इसका आशय उससे परिचित होने या सहकर्मी होने से अधिक नहीं है। यह असावधानी से बोली गई भाषा या सावचेत हुए बिना बोले गये शब्दों का फल है। ये वास्तव में प्रगाढ मित्रता पारिवारिक सम्बन्ध कल्याणकारी पारस्परिक दृष्टिकोण रक्त सम्बन्धो पर नहीं सोच रहे हैं। शब्दकोष के अनुसार भी सच्ची मित्रता का यही आशय है।

कुछ लोगो का मानना है कि व्यक्ति यदि परिवार के सिवाय प्यार की मित्रता की बात ही न करे तो समाज का रूप ही बदल सकता है। उनका यह भी विचार ह कि मित्रता का यही आदर्श रूप है। आज का

व्यक्ति मित्रता पर अशों तथा वर्गों या श्रेणियो म विचार करने लगा है जसे काम की या स्वार्थ की मित्रता सामाजिक सम्बन्धो की मित्रता अच्छी मित्रता पक्की मित्रता अविच्छिन्न मित्रता कामचलाऊ मित्रता। अन्य विचारक इसका भिन रूप भी तैयार कर सक्ते हैं। यदि शोधकत्ता अकन करना चाहे तो इन वर्गों को अको मे भी बदल सकते हैं। प्राचीनकाल में लेखका तथा विचारका ने इस प्रकार का कोई वर्गीकरण तैयार नहीं किया था। वे क्वल अविच्छिन्न या कभी न बिगडने वाली मित्रता पर विश्वास करते थे। गास्वामी तुलसीदास ने तो मित्र के गुणा को बताते हुए उसकी अनिवार्यता पर पर्याप्त जोर दिया है। वे और आगे कहते हैं कि जो मित्र अपने मित्र के दु ख म दु खी नहीं हाता ऐसे मित्र को दखने मात्र से भी पाप लगता है। इतना ही नहीं वे आगे बढकर और कहते हैं कि जो मित्र अपन मित्र के गुणों का प्रचार करता है तथा अवगुणा को छिपाता है वह उसे कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर ले जाता है। अरस्तु तो मित्रता को दो शरीरों में एक आत्मा के समान मानता था। फ्रासिस बेकन का कहना था कि मित्रता वहा देखी जा सकती है जहा आप अपन दु ख डर प्रसन्नता आशा निराशा सन्देह की बात कर सके दु ख के समय में उससे सलाह मशविरा कर सके। स्पष्ट ह कि इस प्रकार की उच्च श्रेणी की मित्रता के बिरले ही उदाहरण मिलते हैं। इसालिए दार्शनिक हेनरी एडम ने ठीक ही कहा है कि मित्र तो जीवन म एक ही मिलता है यदि दो मित्र मिल गये ता भगवान को धन्यवाद है तथा तीन मित्रा के मिलने की सम्भावना तो बहुत ही क्षीण होती है। डॉ सेमुएल जॉनसन तो इससे भी एक कदम आगे बढकर कहते है कि मित्रता क लिए कई गुणो की आवश्यकता होती है तथा कठिन क्षणों में ही मित्रता परखी जा सकती है। जब उसकी श्रेणी ऊपर उठती है तभी वह अधिकाधिक नागरिको क लिए कल्याणकारी हो सकती है तथा महत्वहीन बातों पर ध्यान नहीं देती है। मित्रता करना या मित्र बनाना असभव नहीं है यदि आप सम्पर्क मे आने वाला की पर्याप्त चिन्ता कर तथा उनकी आवश्यकतानुसार सार-सम्भाल करे उन पर ध्यान दे। इस सम्बन्ध म वेद व्यास ने कितना सटीक लिखा है

> "मित्र तो वही है जिस पर पिता की भाति विश्वास किया जा सके दूसरे तो साथी मात्र हैं।"
>
> —महाभारत उद्योग पर्व, 36/37

> "मित्र को कृतज्ञ धर्मनिष्ठ सत्यवादी क्षुद्रता रहित दृढ निष्ठा वाला जितेन्द्रिय मर्यादा में स्थित आर मित्र को न त्यागने वाला होना चाहिए।

—महाभारत उद्योग पर्व 39/50

'विद्या शूरवीरता दक्षता बल तथा धैर्य ये पांच तत्व मित्रता के आधार स्तम्भ बताये जाते हैं। विद्वान पुरुष इनके द्वारा ही जगत के काम करते हैं।"

—महाभारत शांति पर्व 139/85

इस सम्बन्ध में भास ने सम्मति निम्न शब्दों में बताई है

जो वरणीय विषयों में डूबते हुए पुरुष का उबारता है वही मित्र है अन्यथा वह शत्रु है।'

—अभिषेक नाटक 6/22

और भी

अहित से रोकना हित में लगाना तथा विपत्ति में न छोड़ना ही मित्रता के तीन लक्षण हैं।

—अश्वघोष उद्धारित 4/64

सच्ची मित्रता की कसौटी

साधारणतया इसका पहला ही उत्तर श्रद्धा दिया जा सकता है। जब दो व्यक्तियों की स्थिति समान हो उनको अपना भविष्य उज्ज्वल दीखता हो वे एक दूसरे के लिए आवश्यकता के समय त्याग करने को तत्पर हों एक दूसरे को एक ताम्बे के पैसे की भी हानि न पहुचाना चाहे वे एक दूसरे के लिए प्रयत्नशील रहें सार्वे विचार आपत्ति में होने पर मित्र के लिए सहानुभूति रखें यह सहानुभूति एक दूसरे के लिए त्याग विचार या दृष्टिकोण ही मित्रता का सूचक बन जाता है कई बार आपके हाव भाव व्यवहार से ही मित्रता स्पष्ट हो जाती है। पर इसके दूसरी ओर, कई बार व्यक्ति मित्र के विपत्ति में होने पर भी बहुत दिखावा करते हैं व्यवहार में कृत्रिमता लाते हैं। जब भी किसी ने प्रयत्न किया कि मैं साथी को एक पैसे की हानि पहुचाता हूँ, या मित्र का एक पैसा अधिक खर्च हो जाये तो वहीं मित्रता समाप्त हो जाती है। इस दृष्टि से जातक का यह विचार कितना सही है?

'यदि दुर्बल व्यक्ति भी कर्त्तव्य पूरा करता है तो वह मित्र रिश्तेदार बधु, सखा सभी कुछ है।'

—सुहृतु जातक

कई बार प्रश्न पूछा जाता है कि मित्र आपस में उधार दे या ले या नहीं। बहुत छोटी राशि उधार ली तथा दी जा सकती है पर ऐसा करते समय क्रमश बड़ी राशि की भी माग हो सकती है। इसलिए अच्छा तो यही रहेगा कि आप मित्रो को उतनी ही बड़ी राशि उधार दे कि वह (आपका

मित्र) न लौटाये तो भी आप किसी प्रकार की कठिनाइ अनुभव न करें। इसलिए कइ विचारकों का तो यह कहना है कि मित्रता लम्बे समय तक बनी रहे- इसके लिए आप रुपये पैसे उधार स दें ही नहीं। उनके अनुसार रुपया उधार दने स न कवल मित्रता ही टूटता है वरन् दुश्मन तैयार कर लेते हैं। पर साथ ही कई लाग आपत्ति के समय हैसियत क अनुसार उधार देने तथा दी हुई राशि पुन प्राप्त न करने की अपेक्षा को ही सच्ची मित्रता कहते हैं। अन्य कई लाग कष्ट पाकर भी प्राप्त ऋण हर सम्भव प्रयत्न कर लौटाना ही सच्ची मित्रता मानते हैं।

मित्रता की गभीरता का आधार मित्र की ख्याति पर भी निर्भर हो सकता ह। आपके लिए अपने मित्रों क साथ व्यावसायिक या सामाजिक क्षेत्रो मे उपयुक्त दूरी बनाये रखना व्यावहारिक हो सकता है। ऐसा उस वक्त और आवश्यक लगता है जबकि मित्र लोग आर्थिक सकटो में हो। सभव है आगे स्थितिया और खराब बन जाये। ऐसी स्थिति में सच्चे मित्र को अपराधी बताया जा सकता है। क्या आप अपनी प्रतिष्ठा या ख्याति क नाम पर अपने मित्र की स्थिति का उपहास या मजाक नहीं कर रहे हैं? मान लीजिये वह अपराधी है गलती पर है और लोग भी ऐसा ही कुछ कहें तब भी क्या आप उससे मित्रतापूर्ण व्यवहार ही करेंगे?

अपने विचारों को बाटिए

किसी को अपने विचारों में भागीदार बनाना भी मित्रता का ही सूचक माना जाता है। साथियों म वस्तुओं तथा भेंट के समान ही प्रयत्नों इच्छाओ अनुभवा विचारों आदि का भी आदान-प्रदान होता है। बहुत ही अच्छे निकट के मित्र को आप अपन मन की बात बता सकते हैं उसे दु ख दर्द में भागीदार बनाते हैं तथा उसे हृदय विदारक बात भी बता देते हैं। जितनी अधिक भयावह या एकान्त या गम्भीर बीमारी या प्रियजन की मृत्यु की दारुण स्थिति हो मित्र का उतना ही अधिक पास होना आप आवश्यक समझते हैं। यह मान करके कि वही आपको सन्ताप दे सकता है आपका दु ख बाट सकता है आप उससे बतियाते हैं तथा ऐसा करके हल्कापन अनुभव करते हैं। ऑस्कर वाइल्ड सच्ची मित्रता पर विचार करते हुए लिखते हैं कि सच्ची मित्रता वहा है जब कोई व्यक्ति अपने सच्चे मित्र को अपने यहा होने वाल भोज में आमत्रित न करे- कोई व्यक्ति दु खो मे डूबा हुआ है तथा मित्र को उन्हें बाटने से उनमें मदद करने से मना करता है तो बडी असहनीय दयनाय या करुणाजनक स्थिति होती है। मित्र उससे बार बार सहायता स्वीकार करने का आग्रह करता है, यदि वह द्वार बद कर ले तो भी बार बार वहा जाये तथा मदद स्वीकार

करने के लिए निवदन करें आग्रह कर तथा विनम्रता के साथ कह कि कृपा कर मुझे उन सब बातों म कार्यों में भाग लने दीजिए जिनम मैं एसा कर सकता हूँ। सच्ची मित्रता की ऑस्कर वाइल्ड महोदय की अपनी कसौटा है।

मित्रता की सकट की घड़ी में परीक्षा नहीं ली जानी चाहिए। जो व्यक्ति आपके हर समय क दुःख सकट क साथी रहे हैं मभव है आप पर आये दु:ख के समय वह हर प्रकार से समर्थ तथा योग्य होते हुए भी किसी अप्रत्याशित सकट में फसा हो या उसे और किसी क लिए युछ करना पड रहा हा या दूसरों क दबाव से वह समय न निकाल पा रहा हो। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक रॉबर्टसन इसी विचार क समर्थक हैं। कई बार यह भी कहा जाता है कि जो मित्रता आपसी सकटो क समय ही विकसित होती है वही मित्रता गाढ़ी चलती है।

कहावत है कि मित्र पुराना ही अच्छा होता है। इसीलिए सच्चाई यह है कि समय ही मित्रता की कसौटी है। यह भी सही है कि आदमी ज्यों ज्यों वृद्ध होता ह- मित्रता का आनन्द उठाना चाहता है व्यक्ति अपना अधिकाधिक समय अपने उन मित्रों के साथ बिताना चाहता है जिनके साथ उसने अच्छे तथा बुरे दोनो प्रकार के दिन बिताये हैं।

प्रसन्नता का स्रोत मित्रता

जीवन का वास्तविक लक्ष्य सुख या प्रसन्नता है तथा इसकी प्राप्ति मे मित्रता महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसलिए मित्रता क लाभो या उपयोगिता को कम नहीं आका जा सकता। आदमी मित्रता पर भविष्य में आपत्ति के समय बीमा क रूप म विचार करते हैं। वे ऐसा इसलिए सोचते है कि मनोवैज्ञानिक रूप से सामान्य होते हुए वे अपने ही जैसे लोगा से सम्पर्क रखना पसद करते हैं। प्रतिदिन का मित्रतापूर्ण व्यवहार ही मानव की इस मूल प्रवृत्ति को सतुष्ट करता है कारण कि मनुष्य अपने ही जैसे साथियो के बीच रहकर उनम अपनी पहचान बनाता है सुरक्षा अनुभव करता है। इसी सदर्भ में हितोपदेश म कहा गया है— ' स्वाभाविक मित्र भाग्य से ही मिलता है और ऐसी मित्रता विपत्ति में भी नहीं छूटती। ' (हितोपदेश 1/205) नूर मोहम्मद के अनुसार

जो मुख पर ऐगुन कह महामित्र है सोई।
ताको मित्र न जानिए ऐगुण राखे गोई॥
(ऐगुन=अवगुण गोई-गुप्त) —इन्द्रावती से।

विलियम जेम्स के अनुसार मित्रता' का बुनियादी आधार आनन्द लेना है। हमारी प्रसन्नता जब अपने ही समान रुचि वाले, विचारधारा वाले तथा आदतों वालो मे बाटी जाती है तो उसका महत्व और भी बढ जाता है।

मित्रों के साथ बांटी जाने वाली वस्तुओं में एक महत्वपूर्ण वस्तु हास्य है। न्यूनाधिक रूप से जीवनक्रम समान होने से मित्र भी इसी प्रकार की घटनाएं तथा स्थितियां पाते हैं। मित्रता हमें समान लक्ष्यों की दिशा में आगे बढ़ाती है। जोसफ एडीसन तो यहां तक कहते हैं कि ऐसा करने में प्रसन्नता दूनी हो जाती है। इस तथ्य का ज्ञान हम विवाहों तथा जन्मदिवस समारोहों के अवसरों पर होता है जब दो मित्र आपस में मिलते हैं तथा कुशलक्षेम पूछते हैं। पर हम में से कई लोग प्रतिदिन के इन आनन्दों का उचित उपयोग करना तो दूर वे इनकी प्रशंसा भी नहीं कर पाते।

आज के इस गत्यात्मक तथा व्यस्तता भरे समाज में सतत मित्रता निभा पाना कठिन है भौगोलिक दूरी भी इसमें एक और अन्य बाधा है। कई बार हम प्रमादवश भेंट तो नहीं कर पाते पर मित्रता पत्र बधाई कार्ड तथा दूरभाष पर बातें कर प्रकट करते हो हैं। इस प्रकार भूले बिसरे मित्रों से भी फिर से मित्रता जुड़ जाती है। रल्फ वाल्डो इमर्सन कहते हैं कि दूसरों के लिए विचार करो या उनसे बात करो मैं कभी ऐसी आवश्यकता अनुभव नहीं करता न मुझे स्मृति चिह्न भेजने की जरूरत पड़ती है न मुझे किसी को याद दिलाना पड़ता है। जहां हृदय से निकटता होती है वहां ऐसी औपचारिकता की जरूरत नहीं पड़ती है।

जहां गहरी मित्रता होती है तो मित्र की अनुपस्थिति खटकती है। जब दो व्यक्ति काफी समय से मित्रता में बंधे हुए हैं तो वे एक दूसरे के मनोभाव वृत्ति विचार, अनुभव अच्छाइयों तथा बुराइयों से भी परिचित होते हैं पर मित्रता में आदान-प्रदान का अधिक महत्व है तथा कई बातों को अर्थहीन मानकर या महत्व की न मानकर अनदेखी भी की जाती है। सम्बन्धों की निकटता के आधार पर मित्रता पर विचार किया जाता है तथा स्वीकार की जाती है। उनकी कमियों तथा सकारात्मक बिन्दुओं पर भी विचार किया जाता है। यह कोई बुरी बात भी नहीं है क्योंकि इससे मित्रता में सुधार करने का अवसर मिलता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि-

> "जो मित्रता समाप्त हो सकती है वह वस्तुतः कभी आरम्भ ही नहीं हुई थी।'
>
> —पब्लिलिस साइरस नीतिवचन

यह मानने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है या दोष रहित नहीं है। यदि ऐसा हो जाय तो आदमी आदमी नहीं रहेगा तब तो वह देवता बन जायेगा। एक मित्र जो मेरे ही जैसे कई गुण रखता है वह भी अन्य कई दोषों का पुतला हो सकता है।

फिर भी उसके साथ कई विचारो तथा वस्तुओं में आदान प्रदान चलता रहता है और इनमे से भी कुछ अपने ही जैसे हो सकते हैं।

बिना दूसरा की सुख सुविधाआ का ध्यान रखे उनके भावों पर विचार किय कोई भी मित्रता लम्बे समय तक नहीं चल सकती। यदि इस पर दृढता से विचार किया जाय तो स्वकेन्द्रित व्यक्ति तो कोइ मित्र ही नहीं बना सकेगा। इसी आधार पर मित्र की निकटता बताने स बचा जा सकता ह। जब य उदासीनता बढ़ाकर भावनाओं को आहत करते है तो अन्य व्यक्ति भी शान्त रहकर उसी भाति व्यवहार करते हैं। सफल ववाहिक सम्बन्धो के विकास के लिए भूलना तथा माफ करना सुनहला नियम है इसी भाति गाढी मित्रता के विकास के लिए भी इसी सूत्र का उपयाग किया जाना चाहिए। इसक विपरीत टेकपूर्ण या चातुरीयुक्त या चालाकीपूर्ण कृत्रिम व्यवहार मित्रता की खाई और बढा दता है। एक समय ऐसा भी आता है जब आप मित्र के साथ कृत्रिम व्यवहार होते हुए भी मित्रता निभान का ही प्रयत्न कर। आखिरकार एक लम्बे समय तक किसी को घोर कष्टों में पाकर आप निष्क्रिय नहीं रह सकते। ये घार कष्ट शारारिक मानसिक आर्थिक सामाजिक सभी प्रकार के हो सकते हैं।

एक पाश्चात्य कहावत के अनुसार मित्रता का अर्थ है सजग बनाना चतावनी देना। यहा यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक लगता है कि यह चेतावनी दना आलोचना करने से सर्वथा भिन्न है तथा मित्र को लाभ पहुँचाने का दृष्टिकोण ही सर्वोपरि है। यह मानव का स्वभाव है कि वह दूसरो की अपेक्षा अपनी असफलताआ से अधिक चिन्तित रहता है। इस स्थिति में मित्र का कार्य अच्छे बुरे का निर्णय करने का नहीं है। यहा मित्र को बताया जाना चाहिए कि दूसरे भी इन्हीं कमजारिया से पीडित है वे मित्रों को तग करते हैं तथा मित्रो के भले उनके कल्याण के लिए वे सजग नहीं है।

किसी के गलत कार्य या त्रुटिपूर्ण निर्णय लिय जाने पर एक मित्र को उसे बताया ही जाना चाहिए, उसे ध्यान रखना चाहिए कि मित्र की आलोचना न हो। "एकान्त में मित्र को डाटिये फटकारिये पर प्रकट म मित्र मण्डली म उसकी प्रशसा कीजिए।" यह एक पुरानी नेक सलाह है। यदि आदमी को यह पता लग जाय कि उसके लिए कौन क्या कह रहा है तो कोई भी किसी का भी मित्र नहीं बन सकेगा। यदि अपने मित्र की प्रशसा या अच्छाई के लिए प्रकट म कहने के लिए आपके पास कुछ भी नहीं है तो आप कुछ कहने की अपेक्षा खामोश ही रहिए।

पवित्र बाईबिल के अनुसार कोई किसी का दोस्त नहीं है और कहने क नाम पर सभी मित्र हैं। उनके अमित्रतापूर्ण कार्यों को कौन नहीं जानता

कई आदमी अपने कार्य स्वार्थवश जारी रखते हैं जो आगे चलकर मित्र के साथ विश्वासघात के रूप में सामने आते हैं। इस प्रकार के कपटपूर्ण व्यवहार के उदाहरणों से कई कहानी संग्रह उपन्यास तथा नाटक भरे पड़े हैं। ऐसे व्यक्ति प्रकट में प्रशंसा करते हैं या जोरदार शब्दों में पक्ष लेते हैं। ऐसे लोगों को कई मूर्खतापूर्ण तथा अशिष्ट शब्दों से सम्बोधित किया जाता है ये प्रकट में अपने नियोक्ता या अधिकारी की चापलूसी करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ये सहायक हो सकते हैं उनको अपनी जीविका में लाभ पहुंचा सकते हैं पदोन्नति की सम्भावनाएँ बढ़ा सकते हैं। वे अपने आक्रामक छद्म प्रशंसकों से उनकी सुरक्षा तथा प्यार का स्वांग रचते हैं तथा सभी चापलूस अपने अधिकारी की कीमत पर जीते हैं। अधिकारियों को यह तथ्य समय रहते समझ लेना चाहिए। क्या कौआ तथा लोमड़ी की कहानी इस सिद्धान्त की पुष्टि नहीं करती है?

राजनीति तथा व्यापार में लगे लोग यह विश्वास कठिनाई से ही करते हैं कि उनके मित्र हो सकते हैं। ईसाई धर्म के अनुसार कम या घटिया किस्म का खाना खाओ तथा मित्रता निभाओ। कुछ लोग इससे भी एक कदम और आगे बढ़कर कहते हैं कि यदि ऐसा नहीं किया तो वे भविष्य में पूर्ण विश्वास किया जाने वाला कोई मित्र नहीं बना सकते। दुनियादारी के दैनन्दिन व्यवहार में पुराने मित्रों के साथ छोड़ देने पर मित्रहीनता की विशाल गंभीर स्थिति आनी स्वाभाविक है।

मित्रता व्यक्ति का महत्वपूर्ण निजी कार्य है। शायद ही कोई अभागा व्यक्ति इसका महत्व न जानता हो? यद्यपि यह आंशिक रूप में ही सही है क्योंकि महत्वपूर्ण व्यक्ति के सम्पर्क में आने वाले उनसे नीचे के स्तर के लोगों से उनके सम्बन्ध समान धरातल पर विकसित नहीं होते हैं। यह सर्वमान्य तथ्य है कि मित्रता समान स्तर के लोगों में ही निभाई जा सकती है।

जहां एक मित्र सदैव ही दूसरे मित्र से अधिक पाने की आशा करता हो वहां सदैव ही मित्रता निभ जाती हो ऐसा कोई विश्वास नहीं किया जा सकता और न ही ऐसा विश्वास कर लेना बुद्धिमानी है। व्यवहार में कई बार विश्वास किया जा सकता है कि एक मित्र दूसरे मित्र की आशा से अधिक सहायता करता है पर ऐसा तब ही होता है जबकि उनके सम्बन्ध गाढे हों किसी भी स्थिति में न टूटने वाले हों। दूसरे शब्दों में सहायता की मात्रा या विस्तार सम्बन्धों की प्रकृति पर निर्भर होगी। व्यवहार में कई बार दोनों मित्रों की स्थितियों में परिवर्तन भी आ जाता है।

गुणी चिकित्सक के समान चातुर्य तथा निरीक्षण सजग परिचारिका के समान महनती तथा सावधानी रखना माता के समान धैर्य तथा कोमलता के लक्षण जरूरी है।'' इसी भांति भृतहरि कहते है कि ''दुष्टों की मित्रता दोपहर से पहले की छाया के समान होती है-पहले छोटी तथा बाद मे क्रमश बढने वाली।'' (नीतिशतक-60) अमृतवर्द्दन तो इससे भी एक कदम आगे बढकर कहते ह कि ''विद्धज्जनो के साथ की मित्रता आरम्भ में मद मद मध्य म समरस तथा अन्त म अत्यत स्नेहपूर्ण हो जाती है।'' (वल्लभ देव कृत सुभाषितावली 254) साराश रूप म बुद्धिमान धीर पुरुष तथा महिलाओं मे उच्च श्रेणी का प्यार सर्वाधिक मुक्त व्यवहार महान उपयोगिता विशाल त्याग घोर पीडा कडवा सत्य हृदय के अन्त स्थल से कल्याणकारी परामर्श तथा मन की वास्तविक एकता ही मित्रता की कसौटी है। इसी सन्दर्भ म भवभूति ने कहा है कि ''प्राण देकर भलाई करना द्रोह तथा छल का कभी नाम न लेना ही मैत्री धर्म है। ' महावीर चरित 5 59

मित्रता के सभावित विकास के लिए त्याग के रूप में समय समय पर किये गय प्रयास प्रकाश म आये हैं पर ऐसे बहुत कम उदाहरण ज्ञान म आये हैं जिनमे मित्रता बनाये रखने के लिए, आनन्दानुभूति के लिए त्याग किया गया है। परम आनन्द की प्राप्ति क लिए त्याग ही एक रास्ता है जिससे मित्रता में जुड सभी स्त्री पुरुष आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त कर सकते हैं। हमारे धर्मशास्त्र बताते है कि मित्रों के आनन्द म दूसरा की भलाई म उनकी *प्रगति देखकर प्रसन्न होइये उनके उत्थान को ही अपना उत्थान मानिए।* ठीक इसी प्रकार के विचार पाश्चात्य विचारक लीडिया वाइल्ड ने भी व्यक्त किये हैं। मित्रता के विकास के लिए चरित्र क वे ही गुण या लक्षण आवश्यक हैं जो एक मानव के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ-नि स्वार्थ भाव उदारता विशाल दृष्टिकोण मानवकल्याण दूमरो के व्यक्तित्व का आदर क्षमा दया शील अहिंसा दु ख निवृति सहिष्णुता विश्वासपात्रता श्रद्धा ईमानदारी कष्टा में मदद करना आदि। यदि क्षण भगुर जीवन प्राप्त मनुष्य इन सब गुणा के अनुसार सब समय तथा सभी स्थितियों में व्यवहार करना चाह तो यह अति कठिन कार्य होगा क्योंकि मानव स्वभाव के अनुसार वह उनक प्रतिफल की भी आशा करेगा वह अपने द्वारा किये गये कार्यों के अनुसार ही मित्र से त्याग या स्नेह का प्रतिदान भी चाहगा। पर इन सबसे दूर हटकर सर्वाधिक अच्छी स्थिति ह-आप दूसरा से प्यार करें इसक लिए आवश्यक है कि आप दूसरो के भी प्रिय बने अर्थात् साथी मित्र आपसे भी प्यार कर। अत यह सुनहला नियम याद रखा जाना चाहिए कि मित्र पाने के लिए आप भी दूसरों क मित्र बने। □

अनुपस्थित पर स्थायी मित्र

बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो मित्रता के लिए मित्रता करते हैं। पर ऐसा कहने का भी पर्याप्त आधार है कि आदमी किसी कार्यवश या स्वार्थ के वशीभूत होकर ही मित्रता विकसित करते हैं। कई बार बताया जाता है एवं सलाह दी जाती है कि अपने सुधार के लिए अधिक सम्पन्न लोगों से मित्रता की जाय या पुराने मित्रों की जगह नये मित्र बनाये जायें क्योंकि सम्भव है पुराने मित्र सही भूमिका न निभा रहे हों नौकरी करने वाले लोग स्थानान्तरण पर एक जगह छोड़कर दूसरी जगह जाने पर वहां नये मित्र बनाते ही हैं।

एक पिता ने अपने पुत्र को स्वेट मॉर्डन की ' मित्रों को कैसे जीतें तथा आदमियों को कैसे प्रभावित करें? ' पुस्तक की प्रति दी तो पुत्र ने लौटाते हुए कहा-''यह पुस्तक तो बहुत कृत्रिमता लिये हुए है। सही प्रेमियों की तरह ही सही मित्र ढूंढना तथा प्राप्त करना सम्भव है पर रोमांटिक प्रेम के समान सहज विकसित मित्रता ही अच्छे फल देती है। पर डॉ. जॉन्सन इसके विपरीत विचार रखते हैं। वे कहते हैं कि आयु बढ़ने के साथ-साथ यदि मानव का परिचय नहीं बढ़ता है मित्र नहीं बनाता है तो वह शीघ्र ही अलग-थलग पड़ जाता है एकाकी हो जाता है। साथ ही यह भी सही है कि हम कई मित्रों को मृत्यु के पश्चात ही छोड़ते हैं और इस भांति वे भी क्षणिक नहीं हैं। इस प्रकार जिन्होंने भौतिक रूप में अपना जीवन बिता दिया है शरीर छोड़ दिया है वे भी हमारे हृदय में स्थायी छाप छोड़ जाते हैं। यह तथ्य ठीक ऐसा ही है जैसे कि युद्ध में सैनिकों के आखें उठाते ही उनके सामने मित्रों को अनुपस्थित मानते हैं।

जब तक मित्र जीवित हैं उन पर प्रकृति के बहुत बड़े कीमती उपहार के रूप में विचार किया जाना चाहिए। इमरसन ने अपने एक लेख में लिखा है-हम अपने स्वास्थ्य की परवाह करते हैं अपने मकान की व्यवस्था करते हैं कपड़ों का प्रबन्ध करते हैं पर यह सब चीजें हमको कौन सर्वाधिक उपयोगी एवं अच्छी सुझा सकता है इन सबके लिए कौन सर्वाधिक अच्छी राय दे सकता है? इसका उत्तर है मित्र-एकमात्र मित्र। 'इसीलिए चार्ल्स कैल्ब कॉल्टन ने कितना ठीक कहा है कि सच्ची मित्रता उत्तम स्वास्थ्य के समान है उसका महत्त्व तभी ज्ञात होता है जब हम उसे खो बैठते हैं।

मित्र पाने के लिए स्वयं भी मित्र बनिये

इमरसन ने अपने एक अन्य लेख में लिखा है कि मित्र पाने के लिए आपको भी किसी का मित्र बनना चाहिए-इस सिद्धान्त या तथ्य को आप हल्का फुल्का न समझिए। इसी सन्दर्भ में मित्र की भूमिका की कसौटी के लिए अर्ल आफ क्लेरण्डन के विचार देखिए-''मित्रता के विकास के लिए

गुणी चिकित्सक के समान चातुर्य तथा निरीक्षण सजग परिचारिका के समान मेहनती तथा सावधानी रखना माता के समान धैर्य तथा कोमलता के लक्षण जरूरी हैं।" इसी भांति भृतहरि कहते हैं कि "दुष्टों की मित्रता दोपहर से पहले की छाया के समान होती है-पहले छोटी तथा बाद में क्रमशः बढ़ने वाली।' (नीतिशतक-60) अमृतवर्द्धन तो इससे भी एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं कि "विद्वज्जनों के साथ की मित्रता आरम्भ में मंद मंद, मध्य में समरस तथा अन्त में अत्यंत स्नेहपूर्ण हो जाती है।' (वल्लभ देव कृत सुभाषितावली 254) सारांश रूप में बुद्धिमान वीर पुरुष तथा महिलाओं में उच्च श्रेणी का प्यार, सर्वाधिक मुक्त व्यवहार, महान उपयोगिता विशाल त्याग घोर पीड़ा कड़वा सत्य हृदय के अन्तःस्थल से कल्याणकारी परामर्श तथा मन की वास्तविक एकता ही मित्रता की कसौटी है। इसी सन्दर्भ में भवभूति ने कहा है कि "प्राण देकर भलाई करना द्रोह तथा छल का कभी नाम न लेना ही मैत्री धर्म है। "महावीर चरित 5.59

मित्रता के संभावित विकास के लिए त्याग के रूप में समय समय पर किये गये प्रयास प्रकाश में आये हैं पर ऐसे बहुत कम उदाहरण ज्ञान में आये हैं जिनमें मित्रता बनाये रखने के लिए, आनन्दानुभूति के लिए त्याग किया गया है। परम आनन्द की प्राप्ति के लिए त्याग ही एक रास्ता है जिससे मित्रता में जुड़े सभी स्त्री पुरुष आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त कर सकते हैं। हमारे धर्मशास्त्र बताते हैं कि मित्रों के आनन्द में, दूसरों की भलाई में उनकी प्रगति देखकर प्रसन्न होइये उनके उत्थान को ही अपना उत्थान मानिए। ठीक इसी प्रकार के विचार पाश्चात्य विचारक लीडिया वाइरड ने भी व्यक्त किये हैं। मित्रता के विकास के लिए चरित्र के ये ही गुण या लक्षण आवश्यक है जो एक मानव के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ-निःस्वार्थ भाव उदारता विशाल दृष्टिकोण मानवकल्याण दूसरों के व्यक्तित्व का आदर क्षमा दयाशील अहिंसा दुःख निवृत्ति सहिष्णुता विश्वासपात्रता श्रद्धा ईमानदारी कष्टों में मदद करना आदि। यदि क्षण भंगुर जीवन प्राप्त मनुष्य इन सब गुणों के अनुसार सब समय तथा सभी स्थितियों में व्यवहार करना चाहे तो यह अति कठिन कार्य होगा क्योंकि मानव स्वभाव के अनुसार वह उनके प्रतिफल की भी आशा करेगा वह अपने द्वारा किये गये कार्यों के अनुसार ही मित्र से त्याग या स्नेह का प्रतिदान भी चाहेगा। पर इन सबसे दूर हटकर सर्वाधिक अच्छी स्थिति है-आप दूसरों से प्यार करें इसके लिए आवश्यक है कि आप दूसरों के भी प्रिय बनें अर्थात् साथी मित्र आपसे भी प्यार करें। अतः यह सुनहला नियम याद रखा जाना चाहिए कि मित्र पाने के लिए आप भी दूसरों के मित्र बनें। □

सवेदनशीलता के लिए शिक्षा

मानवीय सवेदनशीलता का अर्थ सीधे सादे शब्दों में या बताया जा सकता है कि मात्र अपनी दह की अपने स्वार्थों की चिन्ता न कर दूसरा के सुख दु ख में विपत्ति म विषम परिस्थितियो में हाथ बटाना। इसी बात को ऐतरेय ब्राह्मण में या कहा गया है कि दूसरा के हित म त्याग करना ही प्रत्यक मनुष्य का धर्म है। इसका आशय मात्र यही है कि मानव केवल अपने लिये ही न जीय उमे दूसरो के सुख दु ख में सहभागी बनना चाहिए, वह दूसरो के लिये भी जीना सीखे उसे दूसरों की सुख सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिए, उनकी इच्छाओ का विचारा का भी सम्मान करना चाहिए। एक बार हुआ था कि रोबदार वाले प्रधानाचार्य श्री शर्मा ने जब देखा कि चार दिन स उनक सहायक कर्मचारी गणेशराम के अवकाश का प्रार्थना पत्र आ रहा हैं चार दिन समाप्त होने पर दा दिन का अवकाश और बढा लिया। रविवार को भी उसे उपस्थित हाना था पर अन्य सहायक से मिलकर रविवार को भी न आने की व्यवस्था करली। जब मि शर्मा को पता लगा कि गणेशराम नहीं आ रहा है ता उन्हें चिन्ता हुई। गणेश बिना पूछे कभी गैर हाजिर नहीं रहता है अवकाश नहीं लेता है पूछ कर ही छुट्टी पर जाता है। हो न हो उस पर कोई विपदा आ गई है। प्रधानाचार्य मि शर्मा स रहा नहीं गया वे गणेश के घर चले गय। प्रधानाचार्य को देखते ही गणेश शर्मिन्दा हो गया बोला-सा 55 व आप यहा! बच्चा जरा बीमार हो गया था अब सुधार हो रहा है मैं शीघ्र ही काम पर लौट आऊगा। प्रधानाचार्य बोले-अरे गणेश बच्चा इतना बीमार हो गया कि खाट ही पकडली और तुमने बताया भी नहीं।

तुम स्कूल की चिन्ता न करो ... करो। बोलो-मैं सकता हू? बाजार से कोई ... हो तो बताओ। न करे-गणेश ने नम्रतापूर्वक ... ने गणेश रुपये का नोट दे दिया और ... हो सकती के समय कम से ... आप हैं विवश न ... तो चुके थे।

सारे ग्रन्थो नीतिशास्त्रा का ही सार इसम आ जाता है कि हम दूसरो के लिए काम आ सके तभी इस शरीर की सार्थकता है। मानव जीवन का उद्देश्य ही यह बनता है कि आप दूसरा के लिए जीना सीखे सामूहिक उन्नति का प्रयास करे मित्रा को सुखी बना सके दूसरों को प्रगति क पथ पर आगे बढते दख कर प्रसन्न हा उनकी उन्नति म ही अपना उन्नति माने। यदि आप दूसरों को सुखी बनान ■ तनिक भी यागदान कर सके ता आपका जीवन स्वत ही उन्नत एव ससृत बन जायेगा। मित्र आपके दृष्टिकाण का आदर करेंग दूसरा क हित में अपना हित सोचग आर आपको कभी किसी का अभाव ही अनुभव नही हागा। एसा विचार ही आपको किसी का शायण न करने को उद्यत बनायगा सबके साथ आपका व्यवहार उदारतापूर्ण हागा अपन लाभ की बात पीछे तथा मित्रा-दूसरा के हित की लाभ की बात आप आगे रखेंग आप किसी पर नाराज नही हागे सबक साथ सहिष्णु बन जायेंगे दूसरा का काम निपटाना उनकी सेवा करना ही आपका जीवन दर्शन बन जायगा। परिणाम स्वरूप आपको सबका स्नेह मिलगा आपको सभी मोर्चों पर सफलता मिलगी सेवा का मूल है प्रेम अहिंसा और परापकार। इस भाति सेवा से जा सुख मिलता है सही अर्थों म वही एक मात्र सच्चा सुख है। व्यवहार में आप देखत है कि कई बार धनी शिक्षित व्यक्ति मानवीय व्यवहार से नीचे गिर जाते है। राजस्थानी में एक कहावत है जिसके अनुसार एसे व्यक्ति पढ ता बहुत है पर गुण नहीं अर्थात् ज्ञान को उन्हाने जीवन में नहीं उतारा है।

सभी साचते हैं कि मानव का स्वभाव सुखी जीवन जीने का है। यह मिल जाये ता अच्छा है यह सुविधा मिल जाय तो जीवन थोडा आरामदायक हो सकता है। मनुष्य यह नही सोचता कि जितनी सुविधाए वह चाहता है जितने सुखो की वह चाहना कर रहा है उतने ही सुख सुविधाए मित्र या सगी साथी भी तो चाहते होंगे चाह सकते है। यदि ये सब आपको मिल जायें तथा साथिया को न मिले तो व दु खी हागे। क्या य सब आप उनके हिस्से में से प्राप्त नही कर रह है? यदि ऐसा है तो कल्पना कीजिये कि समग्र समाज सुखी कैसे रह सकता है? एक अच्छे इन्सान क रूप में यह तो आपको सोचना ही होगा।

अरुण को फेक्टरी पहुचना है-देर हो रही है। यदि उनकी पत्नी कोट पहनने मे या ढूढ कर उपलब्ध करवाने म मदद करती है तो अरुण प्रसन्नचित फक्टरी पहुचत है। माना कि उनकी पत्नी उर्वशी को भी कई काम निपटाने ह। पर अरुण के रवाना हाने के बाद सभी समय जैसा चाहे जो

सवेदनशीलता के लिए शिक्षा

मानवीय सवेदनशालता का अर्थ सीधे सादे शब्दों में या बताया जा सकता है कि मात्र अपनी दद की अपने स्वार्थों का चिन्ता न कर दूसरों के सुख दु ख में विपत्ति म विपम परिस्थितिया में हाथ यटाना। इसी बात को एतरेय ब्राह्मण में या कहा गया है कि दूसरा के हित मे त्याग करना ही प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। इसका आशय मात्र यही है कि मानव केवल अपने लिये ही न जीय उसे दूसरों के सुख दु ख में सहभागी यनना चाहिए, वह दूसरो के लिये भी जीना सीखे उसे दूसरों की सुख सुविधा का भी ध्यान रखना चाहिए, उनकी इच्छाओ का विचारा का भी सम्मान करना चाहिए। एक बार हुआ यो कि रावतसर वाले प्रधानाचार्य श्री शर्मा ने जय देखा कि चार दिन से उनके सहायक कर्मचारी गणेशराम के अवकाश का प्रार्थना पत्र आ रहा हैं चार दिन समाप्त होने पर दो दिन का अवकाश और बढा लिया। रविवार को भी उसे उपस्थित होना था पर अन्य सहायक से मिलकर रविवार को भी न आने की व्यवस्था करली। जय मि शर्मा को पता लगा कि गणेशराम नहीं आ रहा है ता उन्हें चिन्ता हुई। गणेश बिना पूछे कभी गैर हाजिर नहीं रहता है अवकाश नहीं लेता है पूछ कर ही छुट्टी पर जाता है। हो न हो उस पर कोई विपदा आ गई है। प्रधानाचार्य मि शर्मा से रहा नहीं गया वे गणेश के घर चले गये। प्रधानाचार्य को देखते ही गणेश शर्मिन्दा हो गया बोला-सा ऽऽ ब आप यहा! बच्चा जरा बीमार हो गया था अव सुधार हो रहा है मैं शीघ्र ही काम पर लौट आऊगा। प्रधानाचार्य बोले-अरे गणश बच्चा इतना बीमार हो गया कि खाट ही पकडली और तुमने बताया भी नहीं। तुम स्कूल की चिन्ता न करो बच्चे की देखभाल करा। बोलो-मैं क्या कर सकता हू? बाजार से कोई दवाई आदि मगानी हो ता बताओ। साहब शर्मिंदा न करे-गणेश ने नम्रतापूर्वक कहा। चलते चलते प्रधानाचार्य ने गणेश को 100 रुपये का नोट दे दिया और बोले इसे रखलो जरूरत हो सकती है वेतन के समय कम ले लेना। ठीक काम । गणेश -साहब आप बडे लोग हैं विवश न करे। सब ठीक चल रहा है। पर प्रधानाचार्य तो रवाना हो चुके थे।

सारे ग्रन्था नीतिशास्त्रा का ही सार इसम आ जाता है कि हम दूसरा क लिए काम आ सके तभी इस शरीर की सार्थकता है। मानव जीवन का उद्देश्य ही यह बनता है कि आप दूसरों क लिए जीना सीख सामूहिक उन्नति का प्रयास करे मित्रा को सुखी बना सके दूसरों को प्रगति के पथ पर आगे बढते देख कर प्रसन्न हो उनकी उन्नति म ही अपनी उन्नति माने। यदि आप दूसरों को सुखी बनान म तनिक भी योगदान कर सके तो आपका जीवन स्वत ही उन्नत एव ससृत बन जायगा। मित्र आपके दृष्टिकोण का आदर करेंग दूसरा क हित म अपना हित सोचग और आपको कभी किसी का अभाव ही अनुभव नही होगा। ऐसा विचार ही आपको किसी का शोषण न करन का उद्यत बनायेगा सबक साथ आपका व्यवहार उदारतापूण होगा अपने लाभ की बात पीछे तथा मित्रों-दूसरा क हित की लाभ की बात आप आगे रखेंगे आप किसी पर नाराज नही होगे सबक साथ सहिष्णु बन जायेंगे दूसरा का काम निपटाना उनकी सेवा करना ही आपका जीवन दर्शन बन जायगा। परिणाम स्वरूप आपको सबका स्नेह मिलगा आपको सभी मोर्चों पर सफलता मिलगी सेवा का मूल है प्रेम अहिंसा और परोपकार। इस भांति सेवा से जो सुख मिलता है, सही अर्थों म वही एक मात्र सच्चा सुख है। व्यवहार म आप देखते है कि कई बार धनी शिक्षित व्यक्ति मानवीय व्यवहार से नीचे गिर जाते है। राजस्थानी में एक कहावत है जिसके अनुसार ऐसे व्यक्ति पढे तो बहुत है पर गुणे नहीं अर्थात् ज्ञान को उन्होंने जीवन में नहीं उतारा है।

सभी सोचते हैं कि मानव का स्वभाव सुखी जीवन जीने का है। यह मिल जाये तो अच्छा है यह सुविधा मिल जाये तो जीवन थोडा आरामदायक हो सकता है। मनुष्य यह नही सोचता कि जितनी सुविधाए वह चाहता है, जितने सुखो की वह चाहना कर रहा है उतने ही सुख सुविधाए मित्र या सगी साथी भी तो चाहते होंगे चाह सकते है। यदि वे सब आपको मिल जायें तथा साथियो को न मिले तो वे दु खी होगे। क्या ये सब आप उनके हिस्से में से प्राप्त नही कर रह है? यदि ऐसा है तो कल्पना कीजिये कि समग्र समाज सुखी कैसे रह सकता है? एक अच्छे इन्सान के रूप में यह तो आपको सोचना ही होगा।

अरुण को फेक्ट्री पहुचना है-देर हो रही है। यदि उनको पत्नी कोट पहनने मे या ढूढ कर उपलब्ध करवाने म मदद करती है तो अरुण प्रसन्नचित फेक्ट्री पहुचते है। माना कि उनकी पत्नी उर्वशी को भी कई काम निपटाने ह। पर अरुण के रवाना होने के बाद सभी समय जैसा चाहे जो

चाह काम वे कर सकती है। जरा कोट उपलब्ध करा देने से अरुण को कितना सुख मिलेगा वह प्रसन्नचित फैक्टरी पहुचेगा दिनभर कर्मचारियों के साथ स्वस्थ दिमाग से चहकते हुए चेहरे के साथ काम निपटायेगा। अब कल्पना कीजिये कि इस असमजस की स्थिति में यदि वह घर पर आलमारी की चाबी भूल जाता है या चश्मा छूट जाता है तो उसे दिन भर कितनी असुविधा हो सकती है? यदि वह अप्रसन्न हुआ उदासीन हुआ तो दिन भर चिडचिडा रहेगा वह सहकर्मियो से झगड भी सकता है इससे उसे मानसिक शान्ति तो नहीं मिल सकती काम का वाछित मात्रा म निष्पादन नहीं होगा अपनी स्वय की हानि होगी और मोटे रूप से राष्ट्रीय अपव्यय होगा।

उर्वशी जिस भाति पति को प्रसन्नतापूर्वक हसमुख मुद्रा में रवाना कर रही है उसी भाति उस सन्ध्या में पति का लौटने पर स्वागत भी करना चाहिए। दिन भर का थका काम के प्रति उदासीन कर्मचारियो को राह पर लाने में उसे कितने प्रयत्न करने पडे है इन सबसे दूर घर पर उसे बनावटीपन नही लगना चाहिए मा पत्नी तथा बच्चों का स्नेह प्यार वात्सल्य उस मिले वह पूरी तरह से स्वतन्त्रता अनुभव कर सके खुल कर अट्टहास के साथ वह हस सके। यदि यह सब हो जाता है तो वह एक उपयोगी नागरिक के रूप म राष्ट्र की सेवामें प्रस्तुत होता है।

दूसरो की सुरक्षा कीजिये आपकी सुरक्षा अपने आप हो जायेगी दूसरो को सुख पहुचाइये कई कठिनाइया स्वत ही हल हो जायेगी। एक बार विद्यालय निरीक्षक निरीक्षण क लिए पधारे विद्यालय सुव्यवस्थित चल रहा था-कोई गम्भीर अव्यवस्था देखने को नही मिली तो सहसा निरीक्षक जी ने पूछा-अर्द्धवार्षिक परीक्षा की कापिया जाच कर अभी तक किसने नहीं लौटाई है? प्रधानाध्यापक भी चतुर थे। बात टालने के लिए निरीक्षक जी को अन्य अभिलेख देखने में व्यस्त कर दिया। पर फिर दूसरी बार निरीक्षक जी न वही प्रश्न किया इस बार प्रधानाध्यापक ने विद्यालय पत्रिका की तैयारी का विवेचन आरम्भ कर दिया पर निरीक्षक जी ने फिर उत्तर पुस्तिकाओ के लिए पूछा। अब देखिए प्रधानाध्यापक किस प्रकार अपने साथियो को बचाता है? प्रधानाध्यापक का उत्तर था कि अर्द्धवार्षिक परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाये जाच कर समय पर न लौटाने वालो की सूची में पहला नाम तो मेरा लिखिये-मैने अभी तक नही लौटाई है। अब में परीक्षा प्रभारी को बुला कर पूछ लेता हूँ कि और ऐसे कितने अध्यापक हैं? स्वय प्रधानाध्यापक का नाम आते ही बात यही आई गई हो गयी। जब यह बात लिपिक ने स्टाफ के साथियो को अगले दिन बताई तो प्रधानाध्यापक जी का चेहरा कितना प्रसन्न था? स्टाफ

के साथी तो एहसान मान ही रहे थे।

दूसरो की सुविधा का तनिक ध्यान रखिये-उनके मन को जीत लीजिये उनको कष्ट में मत डालिय फिर दखिये कैसा व कितना आश्चर्यजनक काम होता है कितना अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। एक बार एक जिला शिक्षा अधिकारी प्रात ही विद्यालय में पहुचे तथा सामान्य बातचीत क बाद वे जानना चाहते थे कि कौन कौन अध्यापक मुख्यावास पर नहीं रहते हैं। प्रधानाध्यापक यह तथ्य बताना नही चाहते थे। बोले सर आप प्रार्थना सभा तो देखना ही चाहेगे प्रार्थना हो ही रही ह-पधारिये बच्चा को आशीर्वाद दीजिए। प्राथना से लौट कर, आफिस मे पहुच कर शिक्षा अधिकारी जी ने फिर मुख्यावास पर न रहने वालों के नाम जानना चाहा तभी प्रधानाध्यापक बोले-सर घटी लग गई है तथा अध्यापन कार्य शुरू हो गया है-आप तो अपने समय के ख्याति प्राप्त अग्रेजी क अध्यापक रह है तो हमारे शिक्षका का मार्गदर्शन कीजिय। प्रधानाध्यापक ने कागज लगे क्लीप पेड को शिक्षा अधिकारी जी की ओर बढाते हुए कहा सर नवीं कक्षा में अग्रेजी पढाई जा रही है। कक्षा देख कर अधिकारी जी जब वापस पधारे तो फिर वही रट कि उन अध्यापकों के नाम बताओं भाई टालो नही। अब तो प्रधानाध्यापक जी को बोलना ही था वे बोले-सर सबसे पहले मेरा नाम लिखिये मैं यहा नही रहता हूँ, मैं ही सदैव अपडाउन करता हूँ। अब मैं पूछ लेता हूँ कि कौन कौन यहा नही रहते है? मैं सोचता हूँ कि सब यहीं रहते है पर पुष्टि के लिए प्रथम सहायक से पूछ लेना भी जरूरी है। बस इतना कहना था कि बात यही समाप्त हो गई-समाप्त होनी ही थी।

अब आप जरा ध्यान दीजिये कि प्रधानाध्यापक ने इन दो उदाहरणों म अपने सहकर्मियो के प्रति सहानुभूति बताई है उनको कष्ट से बचाया है ऐसा करके उनका हृदय जीता है। अब यदि कभी प्रधानाध्यापक यह कहे कि बोर्ड की परीक्षाए निकट आ रही है जरा दसवीं तथा बारहवीं कक्षा क विद्यार्थियों को रविवार को मार्गदर्शन देना है जिससे कि वे परीक्षा म अधिक अच्छे अक प्राप्त कर सके या गणित या अग्रेजी का पाठ्यक्रम अतिरिक्त समय मे पूरा करवाइये या विज्ञान का प्रायोगिक कार्य विद्यालय समय क बाद रुक कर पूरा करवाइये तो क्या वे शिक्षक मना करेगे? यदि कभी प्रधानाध्यापक पर कोई कष्ट आता दिखा तो क्या व सब शिक्षक एक हो कर कष्ट स बचने का उपाय नहीं करेंगे? एसे ही क्षणो मे सवदनशीलता स्पष्ट होती है। सब क सब अध्यापक पूरा स्टाफ प्रधानाध्यापक की सहायता के लिए खड़ा हो जायेगा। अधिकारी को चाहिए कि अधीनस्थ अधिकारियों

एवं कर्मचारियों का साहस बढाये उनकी पीठ थपथपाये उनको उत्प्रेरित करें उनके हितों की सुरक्षा करे फिर देखिये कार्यों मे कैसी चमत्कारपूर्ण सफलता मिलती है।

ऐसे संवेदना के सहानुभूति के मदद के अवसर हर व्यक्ति के जीवन मे आते है। आवश्यक्ता है उन्हे समझने की तथा समझ कर लाभ उठाने की। दीप्ति कालेज से आई है आज उसे गृहविज्ञान की प्यावहारिक परीक्षा देनी थी-पता नही लगातार वह कितनी दर खडी रही यही स्थिति सुधा की विज्ञान के व्यावहारिक कार्यों के समय हो जाती है। अब यदि इनके घर लौटते ही माता कहे कि बेटी-खाना बनाले तो दीप्ति या सुधा को कैसा लगेगा? इसके विपरीत यदि माता दीप्ति के आते ही उसे नाश्ता देती है या चाय पिलाती है या सुधा को पानी का गिलास देती है तो दीप्ति या सुधा का मन कितना प्रसन्न होगा? दिन भर की थकान से सुधा या दीप्ति का मुरझाया चेहरा एक दम खिल उठेगा वे प्रसन्नता से भर उठेगी। माता भी थकी हो सकती हैं सम्भव है वे भी दिन भर व्यस्त रही हों पर माता को अपनी थकान या व्यस्तता नही बतानी है। माता को बेटी का स्वागत करना है उसकी दिनचर्या पूछनी है। माता की थकान तो पुत्री दूर करेगी ही उसके कामो मे हाथ बटायेगी ही। पर इसके विपरीत यदि आपने उदासीनता बरती या झुझलाहट बताई तो जीवन कष्टमय हो जायेगा। प्रयत्न कीजिये कि जीवन मधुरएवं सुखमय बन सके। बेटी आपसे ही तो शीलगुण नम्रता अध्यवसाय विनय संवेदनशीलता सीखती है। पुत्री का भी दायित्व है कि वह मा के कामो मे सहायता करे मा के सिर में तेल डालना उसके कपडो पर इस्तरी कर देना यदि वे विश्राम करके उठी है तो तत्काल ही चाय तैयार कर प्रस्तुत करना अच्छे परिवार के लक्षण है ऐसे परिवारों में स्वर्ग के समान सुख छाये रहते है घर के अन्य सदस्यों की सुख सुविधा का ध्यान रखे-यही तो संवेदनशीलता है। माता-पिता भाई का अधिक ध्यान रखते है तो इसको भी बुरा न माने आप अधिकाधिक काम कर माता पिता की अधिक लाडली बन सकती है माता पिता का मन रखन के लिए आप भी भाई को अधिक सम्मान दे उसका ध्यान रखे ऐसा करके आप माता पिता की भावनाओं की रक्षा कर रही है बदले मे आपको भी मिलता है भैया का असीमित लाड दुलार प्यार। माता पिता भाई का अधिक ध्यान रखते है या उसके लिए अधिक सुख सुविधाए जुटाते ह-ध्यान रखिये कि इन बातो पर सोच विचार करके कभी भाई से ईर्ष्या या डाह न करे नहीं तो परिवार नरक बन जायेगा। आपको कभी कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिए जिससे भाई या माता-पिता को

कष्ट पहुचे। मा को बेटी की तथा बेटी को मा की भावनाओं का सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना ही है। पारिवारिक सुख शान्ति के लिए दूसरो के मन की उनकी भावनाओं की रक्षा कीजिये उनके विचारा पर ध्यान दीजिये।

पति क रूप मे आपकी जिम्मेदारी अधिक हो सकती है आपका कार्यक्षेत्र घर के बाहर रहता है। पर जब भी घर पर रहने का अवसर मिलता है तो पत्नी क कार्मो म हाथ बटाना न भूलिये। पत्नी गाय को पानी पिला रही है तथा घर पर मेहमान आ गये है तो रमेश बिना पत्नी की प्रतीक्षा किये स्वय ही मेहमान के लिये पानी का गिलास ले आता है। इसी भाति जब कभी पत्नी रसोईघर में व्यस्त होगी तथा मुन्ना रोन लगा तो रमेश तत्काल ही उसे गोद म ले लेता है। रमेश के दिमाग म है ही नही कि यह काम केवल पत्नी का ही है पत्नी को ही करना है। मनोविज्ञान क अनुसार काम म जब परिवर्तन आता है तो यह परिवर्तन ही विश्राम का रूप ले लेता है परिवर्तन से एकरसता समाप्त होती है तथा सुख मिलता है।

इसके विपरीत यदि पति कार्यालय से आते ही बच्चों पर क्रोध करे पत्नी के काम में दोष निकाले उसकी आलोचना करे उसकी उपेक्षा कर उसकी कम शिक्षा पर ताना मारे या उसकी ओर ध्यान न दे तो परिवार कष्टो मे फस जायेगा। पत्नी भी आपकी ही तरह सवेदनशील है उसका भी हृदय है वह भी प्यार और सम्मान चाहती है आप ही उसे सभा-सोसायटी में ले जाने योग्य बनाइये पत्नी म कई अन्य गुण हो सकते है कई अन्य मित्रो में सराही जान वाली विशेषतायें हो सकती हैं आप उन पर ध्यान दीजिये नकारात्मक दृष्टिकोण छोडिये इस पास न आने दीजिये। लेखक का क्षतिपूर्ति सिद्धान्त म दृढ विश्वास है। व्यवहार में आप देखत है कि अधे व्यक्ति कितने सहनशील होते है जब दो अधे व्यक्ति टकरा जाते है तो वे कुछ नहीं कहते। एक कमी की जगह दूसरे गुण की अधिक पूर्ति हा गई। कई बाये हाथ से लिखन वालों की लिपि कितनी सुन्दर होती है माना मोती हो। इन उदाहरणों म क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त ही काम कर रहा है।

पत्नी आपक प्यार भरे दो शब्द की भूखी है उसे कुछ नही चाहिए। उसके बच्चा को आप प्यार करे यही उसे प्रसन्नता से भर दगा। प्रभाकर पत्नी के बनाये खाने की बडी प्रशसा करता है। कभी वह रसाई में देखता है कि पत्नी सब्जी कतर रही है तथा दूध चूल्हे पर गर्म हो रहा है तो प्रभाकर पत्नी से बात करने के बहाने दूध उबलने तक वहीं खडा रहता है तथा चूल्हा बद कर देता है। एसा करके प्रभाकर पत्नी की सहानुभुति जीत लेता है। पत्नी भी यदि कभा कष्ट में है ता सहानुभूति जतायें। प्रभाकर पत्नी की सहेलियों

का बडा सम्मान करता है कभी कभी वह उन्हे पत्र पत्रिकाओ में लिखने के लिए भी प्रेरित करता है मार्गदर्शन करता है बताता है कि किस पत्रिका म क्या छपने की सम्भावना हो सकती है। पत्नी आपके परिवार का आपका अभिन्न अग है और उसका अपना स्थान है उसका अपना व्यक्तित्व है आप उसकी गरिमा स्वीकार कीजिये उसका महत्वपूर्ण स्थान है उसकी भावनाओ को विचारों की रक्षा कीजिये उन्हें उच्च स्थान प्रदान कीजिये।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि कोरा किताबी ज्ञान या सैद्धान्तिक ज्ञान ही काफी नही है। लेखक के ज्ञान मे ऐसे कई दम्पती है जो उच्च शिक्षा प्राप्त ह पर पारिवारिक कार्यों में तालमेल न बिठा पाने से दोनों के सम्बन्ध विच्छेद हो गये दोना एक दूसरे की बात मानने को तैयार ही नहीं दोनो अपने अपने विचारों पर दृढता से अड जाते दोना का अपना अपना अहम् सुमधुर वातावरण की रचना में बाधा बन जाता। इससे स्पष्ट होता है कि सैद्धान्तिक ज्ञान तथा दुनियादारी की समझ बूझ म बडा अन्तर ह दोनो मे बुनियादी भेद है। उच्च शिक्षा प्राप्त सैद्धान्तिक ज्ञान धनी उदारता सवेदनशीलता न होने पर अप्रिय हो सकता है। सम्भव है वह दूसरों का दृष्टिकोण समझने का प्रयत्न ही न करे वह आवेश म कुछ भी बोल सकता है वह चिडचिडा हो सकता है उसकी बोली कर्कश हो सकती है उसका व्यवहार मानवता से परे हो सकता है वह शीघ्रता मे किसी को कुछ भी कह कर अपमान कर सकता है। ऐसे आदमियों से कौन मित्रता करना चाहेगा? वह तो मनुष्य रूप मे पशु समान है उसे दूर से ही नमस्कार कीजिए।

❐

विकास के लिए शिक्षा

राजस्थानी में एक कहावत के अनुसार पढे लिखे व्यक्ति के चार आँखें होती हैं। व्यवहार में चार आँखें किसी भी व्यक्ति के नहीं देखी जाती- अत इसके शाब्दिक अर्थ पर ध्यान न देकर गूढ अर्थ में छिपी भावना पर विचार करना चाहिए। सही अर्थों में पढा लिखा व्यक्ति केवल अपने लिए ही नहीं जीता वह दूसरों के सुख दु ख में भागीदार बनता है उनकी सहायता करता है बड़े हितों के लिए छोटे स्वार्थों का त्याग करना सीखता है सहकार के साथ काम करके प्रसन्नता-गौरव अनुभव करता है और सन्तुष्ट व्यक्ति ही कम समय में अधिक काम का निष्पादन करता है। ऐसी शिक्षा ही सही शिक्षा है विकास की शिक्षा है।

पिछली तीन चार दशाब्दियों से विश्व के सामाजिक चिन्तकों अर्थशास्त्रियों समाजविज्ञानियों तथा योजना बनाने वालों का ध्यान विकास की ओर केन्द्रित रहा है। आज सभी निर्धन देश विकास करना चाहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि केवल विकास या सम्पन्नता ही उनके देशवासियों की भुखमरी बेकारी गरीबी एव असन्तोष आदि से छुटकारा दिला सकती है। विकास के लिए शिक्षा ही इस प्रकार के विचार का फलितार्थ है। आज प्रत्येक राष्ट्र विकास की दृष्टि से ही शिक्षा की योजनायें बना रहा है। भारत में विकास के लिए शिक्षा के विचार ने 1960 से ही जोर पकडा तथा कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) ने तो अपने प्रतिवेदन का नाम ही शिक्षा और राष्ट्रीय विकास पसद किया।

यद्यपि निर्धन राष्ट्र भी विकास के लिए शिक्षा पर विचार कर रहे हैं तथा योजनायें भी बना रहे हैं पर वे विकास के लिए शिक्षा की निश्चित भूमिका पर असमजस में हैं सन्देह में हैं। क्या शिक्षा किसी राष्ट्र के विकास मे मदद करती है? यदि हा तो कैसे? किस प्रकार प्राविधिक तकनीकी व्यावसायिक साहित्यिक या उदार या धधा की तथा किस स्तर की (पूर्व प्राथमिक प्राथमिक उच्च प्राथमिक माध्यमिक उच्च माध्यमिक या उच्च या विश्वविद्यालय स्तरीय) शिक्षा तुलनात्मक रूप से अधिक मदद कर सकती है? क्या शिक्षा का नियोजन इस प्रकार किया जा सकता है कि इससे विकास

को कई गुनी तीव्र गति व दर मिले? आज विश्व के विभिन्न देशों मे इस प्रकार के प्रश्नों पर विवाद है। प्रस्तुत अध्याय में इस प्रकार के प्रश्नो का उत्तर देने का विनम्र प्रयास किया जा रहा है जिससे आर्थिक विकास मे शिक्षा की भूमिका पर प्रकाश पडे तथा नीति निर्धारण मे लाभ उठाया जा सके।

व्यवहार में देखा जाता है कि शिक्षित व्यक्ति मशीनों को अधिक सावधानी से चलाता है इससे उनका जीवन (लाइफ एक्सपेक्टेन्सी) बढता है उनके रखरखाव या सार सम्भाल पर खर्चा कम आता है। कारीगर कम समय में उतनी ही या अधिक मात्रा में वस्तुए पैदा करता है, इससे प्रति इकाई लागत खर्च कम आता है तथा वस्तुए सस्ती बिकती हैं इससे उपभोक्ता अधिक वस्तुए काम में लेने योग्य बनाते हैं इससे सम्पन्नता बढती है। सम्पन्न व्यक्ति अच्छा खाना अच्छा कपडा अच्छा मकान तथा बच्चों के लिए उच्च स्तर की शिक्षा तथा मनोरजन के साधन जुटाता है। यदि उनका जीवन स्तर ऊचा उठता है तो वे नई वस्तुओं की माग करेगे जिससे उनका उत्पादन बढाया जायेगा या शुरू किया जायेगा व्यवसायी अधिक उत्पादन के लिए अधिक श्रमिक चाहेंगे इससे रोजगार के अवसर बढेगे वृहद् स्तर पर उत्पादन के कारण वस्तुए सस्ती होगी फलत उनकी और माग बढेगी तथा इस प्रकार यह रोजगार के अवसरों की वृद्धि का चक्र निरन्तर चलता रहेगा।

पाश्चात्य देशो में हुए अनुसधानों से स्पष्ट हुआ है कि शिक्षित महिलाओ ने कम सन्तान को जन्म दिया है अर्थात् गर्भ धारण करने की उनकी इच्छा मे कमी आई है इससे माताओ के स्वास्थ्य मे सुधार हुआ है जीवन का विस्तार बढा है तथा स्वास्थ्य एव चिकित्सा सेवायें अन्य जरूरतमदों को उपलब्ध होने लगी हैं बच्चा के लालन-पालन मे सुधार हुआ है उनका जीवन स्तर ऊचा उठा है इससे उन्हें उपयोगी नागरिक बनने में मदद मिली है। यह प्रभाव भारत में भी देखा जा सकता है।

रोजगार प्राप्त कम शिक्षित व्यक्ति को उच्च शिक्षा पाते ही उच्च पद पर पदोन्नत कर, उच्च वेतन उपलब्ध करवाकर समाज मे धन के समान वितरण को अग्रसर किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा न केवल उत्पादन तथा विनियोग में ही मदद करती है वरन् यह वितरण में भी मदद करती है सक्षेप म यही विकास के लिए शिक्षा है।

विकास के लिए शिक्षा का अर्थ

विकास के लिए शिक्षा का अर्थ समय समय पर बदलता रहा है। कभी जिस सन्दर्भ में प्रगति (प्रोग्रेस) शब्द का प्रयोग किया जाता था आज

उसी सन्दर्भ में विकास शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता है और आज भी भिन्न- भिन्न लेखक विकास का भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं ये सब विकास के एक अर्थ पर मतैक्य नहीं रखते हैं यह क्षेत्र बड़ा ही विवादास्पद बन गया है। अर्थशास्त्री विकास का अर्थ आर्थिक वृद्धि या बढ़वार (ग्रोथ) से लगाते हैं जबकि समाजशास्त्री इसका अर्थ प्रचलित सामाजिक प्रतिमान पर नये प्रतिमान की स्थापना या परिवर्तन से लेते हैं। इस तथ्य को लेकर विभिन्न चिन्तक या योजना निर्माता अपने विचारों में कितनी ही भिन्नता रखते हो वे सब इस एक बात से सहमत हैं कि विकास का जन साधारण की सम्पन्नता तथा उनके कल्याण से गाढ़ा सम्बन्ध है। इस दृष्टि से स्पष्ट कहा जा सकता है कि विकास का अर्थ जनसाधारण के लिए बुनियादी सुविधाओं में अभूतपूर्व वृद्धि उनके जीवन स्तर में सुधार तथा उनके सोचने-विचारने के दृष्टिकोण में व्यापकता लाना है। उत्पादन तथा वित्तीय साधनों में वृद्धि करके यह उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। इस क्रम में यातायात तथा सम्प्रेषण के साधन भी जोड़े जा सकते हैं वहीं शिक्षा तथा चिकित्सा-स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। विकास की इस प्रक्रिया में प्राकृतिक सम्पदा तथा भौतिक सुविधाओं की महत्वपूर्ण ही नहीं निर्णायक भूमिका भी रहती है। इन दोनों की अनुपस्थिति में विकास की प्रक्रिया पर विचार ही नहीं किया जा सकता।

विकास के लिए प्राकृतिक साधनों तथा भौतिक सम्पदा का दोहन अधिकतम सीमा तक वाछनीय ही नहीं वरन् अनिवार्य है। यह केवल तभी किया जा सकता है जबकि उत्पादन कार्यों में लगी मानवशक्ति शिक्षित हो ट्रेण्ड हो। इस भांति प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि विकास के लिए शिक्षा प्राथमिक आवश्यकता है। इसीलिए जनसाधारण शिक्षा की बात करता है। अब कुछ प्रश्न उठते हैं जैसे विकास की प्रक्रिया में दिमाग व चरित्र की भूमिकाओं की कितनी आवश्यकता है? विकास के विभिन्न स्तरो पर किस प्रकार की शिक्षा तथा किस स्तर की शिक्षा की कितनी आवश्यकता है? आज की शिक्षा प्रणाली मे विकास की गति को तेज करने के लिए किस प्रकार के परिवर्तनों की जरूरत है? आज की स्थितियो में यदि इन प्रश्नों का उत्तर प्रभावी बनाया जा सके तो ऐसी शिक्षा को विकास के लिए शिक्षा कहा जाना चाहिए।

जनसाधारण विकास के लिए शिक्षा दृष्टिकोण पर दो प्रकार से विचार करता हुआ पाया जाता है। प्रथम के अनुसार-विकास के लिए शिक्षा का अर्थ है-व्यावसायिक शिक्षा खेती-बाड़ी या उद्योग धंधों या भारी व्यवसायो

की शिक्षा चिकित्सा या अभियान्त्रिकी शिक्षा जिससे प्रति व्यक्ति या राष्ट्रीय आय सीधी प्रभावित होती है। इससे दूसरा अर्थ लिया जाता है कि मानव को विकास की गतिविधिया के लिए उद्यत किया जाये उनमें इच्छा विकसित कर तत्पर बनाया जाये कि यह उत्पादन के साधनों का अधिक प्रभावी एव सही उपयोग करे जिससे उनका जीवन स्तर बढे, उत्पादन का लागत खर्च कम आय कम समय मे वस्तुओं की अधिक मात्रा पैदा की जाये जिससे वस्तुए सस्ती या कम मूल्य पर बिके तथा उपभोक्ता अधिक वस्तुओ की माग करे वे अधिक वस्तुआ का उपभोग करें। इसमे उपभोक्ताआ में इच्छा उत्पन्न करना तथा उपभोग के लिए त्याग करने को तत्पर बनाना दाना ही सम्मिलित है। क्षत्र का विस्तार करते हुए दोनों बाता पर विचार किया जा रहा है।

आर्थिक विकास मे शिक्षा की भूमिका

एक लम्बे समय से विकास में शिक्षा की भूमिका पर योजना से जुडे अधिकारियो मे मतविभिन्नता रही है। प्राय कई शताब्दियों से शिक्षा को समाज सेवा माना जाता रहा है आज भी शिक्षा को राजकीय व्यय में समाज सेवा की विभिन्न मदा में ही सम्मिलित किया जाता है तथा प्रत्यक्षत आर्थिक विकास मे इसका योगदान नगण्य या नाममात्र का माना जाता है। पर अब इस विचार म परिवर्तन आया है तथा आज इस विचार को कोई महत्व नहीं देता कोई इस पर ध्यान भी नहीं देता है। इससे अधिक कि आज शिक्षा को विनियोग माना जाता है क्याकि यह प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को प्रभावित करती है। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया म शिक्षा अभिन्न अग बन गई है।

आज यह तर्क महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है कि श्रमिक की उत्पादकता बढा कर विकास की गति या प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है जिससे राष्ट्र का सकल उत्पादन बढता है फलत प्रति व्यक्ति आय भी सकारात्मक रूप से प्रभावित होती है। आर्थिक विकास के सूचकों मे से यह भी एक महत्त्वपूर्ण सूचक है। शिक्षा यह कार्य करती है। श्रमिक के ज्ञान का विकास करके उसमे श्रम के प्रति निष्ठा या आदर विकसित करके उचित मूल्यो एव अभिवृत्तिया का विकास करके कार्य की आवश्यकतानुसार कौशल अर्जित करवाकर मस्तिष्क का सही दिशा मे विकास करके श्रमिक को अधिक उपयोगी बनाकर राष्ट्र को विकास के मार्ग पर बढाती है।

आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) की प्रक्रिया मे श्रमिक को प्रभावी सहभागिता के लिए तैयार करके शिक्षा ही राष्ट्र के आर्थिक विकास को सचालित करती है। आथिक विकास मे शिक्षा की भूमिका पर अनुसधानों से निम्नलिखित निष्कर्ष प्रकाश मे आये हैं –

* साक्षरता की वृद्धि के साथ साथ आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) बढ़ती है। चालीस प्रतिशत से कम साक्षर देश गरीब हैं विपन्न हैं जबकि 70 प्रतिशत से अधिक साक्षर देश धनी हैं- सम्पन्न हैं। इससे बामेन तथा एण्डरसन (1950) ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी देश को निश्चित रूप से आर्थिक संकटों से मुक्ति पाने के लिए 80 प्रतिशत साक्षरता से ऊपर आना ही होगा।

* हरीसन तथा मायर्स (1964) के अनुसार मानव संसाधन विकास सकल उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति आय में संयुक्त रूप से सकारात्मक सहसम्बन्ध है।

* इस्टरलीन (1981) के अनुसार आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) औपचारिक शिक्षा के विकास-विस्तार पर निर्भर करती है। स्टुमलाइन (1924) की सम्मति है कि पढ़ा लिखा श्रमिक या कर्मचारी अधिक कुशल उत्पादक होता है।

इन निष्कर्षों से आर्थिक विकास में शिक्षा की सकारात्मक भूमिका की पुष्टि होती है। यहां इस तर्क पर विचार नहीं किया जा रहा है कि शिक्षा के बिना आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता। वास्तविकता यह है कि बिना शिक्षा भी कुछ अंशों में आर्थिक विकास होता है। व्यवहार में ऐसे उदाहरण भी मिल जायेंगे। यही कारण है कि आर्थिक विकास के लिए शिक्षा ही एकमात्र उत्तरदायी घटक नहीं है। इनमें अन्य घटक है- प्राकृतिक साधन वित्तीय विनियोजन अच्छी प्रबन्धन प्रणाली वैयक्तिक गुण आदि मुख्य हैं इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण है उत्पादकों की उपलब्धि उत्प्रेरणा। शिक्षा मार्गदर्शक-उत्प्रेरक एवं प्रबोधन का काम करती है। यदि विकास के लिए अन्य तत्व उपलब्ध हैं कार्यशील हैं पोषण कर रहे हैं तो शिक्षा उन्हें अधिक तीव्र गति प्रदान कर सकती है।

भारत में शिक्षा और विकास की स्थिति

विकसित देशों के आँकड़े बताते हैं कि शिक्षा तथा विकास में गहरा सम्बन्ध है। पिछली चार दशाब्दियों से अविकसित देशों ने सभी साधन शिक्षा के विकास की ओर मोड़ दिये हैं इस अपेक्षा से कि इससे राष्ट्र का विकास होगा। भारत सहित अन्य सभी अविकसित या विकासोन्मुखी देशों में इस विचार के अनुसार शैक्षिक साधना का निरन्तर विस्तार किया गया है। आज भारत में 6 85 लाख प्राथमिक तथा उच्च प्राथमिक तथा 68 हजार माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक मान्यता प्राप्त विद्यालय हैं। विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय के समकक्ष दर्जा प्राप्त 190 संस्थान हैं 7000 महाविद्यालय हैं जिनमें 40 लाख छात्रों को 2 लाख अध्यापक पढ़ाते हैं। अनौपचारिक शिक्षा के 2 80 लाख केन्द्र तथा प्रौढ़ शिक्षा के 2 80 लाख केन्द्र हैं। सम्भवतः शिक्षा की यह व्यवस्था विश्व में सबसे बड़ी है। पर प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा के इस विस्तार से आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) को मदद मिली है? वास्तविकता तो

यह है कि शिक्षा के इस विस्तार के बाद भी भारत में आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) अपेक्षित रूप एवं मात्रा में नहीं हुई है।

प्राप्त सूचनाओं के अनुसार पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से 40 वर्षों में राष्ट्रीय सकल उत्पाद में 3.5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है जबकि शिक्षा के विस्तार की दृष्टि से यह दर अधिक होनी चाहिए। परिणामतः देश की आबादी का एक बड़ा भाग आज भी गरीबी में गुजर-बसर कर रहा है उन्हें बुनियादी सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। फिर जीवन स्तर में सुधार की तो बात ही नहीं करनी चाहिए। क्या इसे ही विकास कहा जाये? यह तो निश्चित रूप से विकास नहीं है। विकसित राष्ट्रों की तुलना में शिक्षा ने भारत में आर्थिक विकास (डवलपमेन्ट) में अधिक मदद नहीं की है।

शैक्षिक नियोजन में कहां गलती है?

हमारी शिक्षा प्रणाली में उसके विस्तार में कहां गलती हुई है? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न शिक्षा नियोजकों से बार बार पूछा जाता है। हमारी आज की शिक्षा प्रणाली में नीचे लिखे दोष बताये जाते हैं -

* शिक्षा का विस्तार देखने में अच्छा लगता है पर यह जरूरतों से कम है। प्राप्त सूचनाएं बताती हैं कि प्राथमिक उच्च प्राथमिक माध्यमिक उच्च माध्यमिक शालाओं में प्रवेश चाहने वाले विद्यार्थियों की दृष्टि से सुविधाएं कम हैं विद्यालय भवन तथा अध्यापक भी कम हैं। 85 करोड़ की आबादी वाले देश के लिए शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार उपयुक्त मात्रा में नहीं हुआ है।

* शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार में असंतुलन देखा जाता है। उच्च शिक्षा का विकास तुलनात्मक रूप से अधिक हुआ है। वास्तविकता यह है कि आज उच्च शिक्षा आर्थिक विकास में तुलनात्मक रूप से कम योगदान करती है जबकि यह प्राथमिक उच्च प्राथमिक माध्यमिक या उच्च माध्यमिक शिक्षा की तुलना में कहीं अधिक महंगी या खर्चीली है। प्राप्त 1975 की सूचनाओं के अनुसार एक स्नातक का लागत खर्च 66 प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के खर्च के बराबर है।

* भूतकाल में व्यावसायिक शिक्षा का विकास नहीं हुआ तथा शिक्षा के विस्तार पर खर्च की जाने वाली सभी राशि सामान्य शिक्षा पर ही खर्च की गई। यह समझ लिया जाना चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा सामान्य शिक्षा की अपेक्षा आर्थिक विकास में अधिक योगदान करती है।

* शिक्षा का जो कुछ भी विस्तार हुआ है वह मात्रा में है या संख्यात्मक है-गुणात्मक नहीं। इससे शिक्षा की गुणवत्ता का सीमाहीन ह्रास

हुआ है। जनसाधारण को जो शिक्षा दी जा रही है उससे शिक्षार्थियों में उपयुक्त गुणों कौशलों श्रम के प्रति निष्ठा या आदर तथा समाज सम्मत मूल्यों का विकास नहीं हुआ है शिक्षा व्यवस्था अनुपयुक्त है इससे राष्ट्र को आर्थिक विकास में मदद नहीं मिली है।

* भारत में वृहद स्तर पर बेकारी है। भारी राशि खर्च करके बालको को शिक्षित किया जाता है तथा वे बेकार होने से देश के आर्थिक विकास में मदद नहीं कर रहे हैं। न केवल इतना ही बल्कि भारत में छिपी हुई बेरोजगारी भी है तथा आदमी जन बल काम की आवश्यकता के अनुसार शिक्षित भी नहीं हुए हैं उदाहरण के लिए डाक्टर को कम्पाउण्डर का तथा इजीनियर को ओवरसियर का काम करना पड रहा है। प्राप्त शिक्षा या ट्रेनिंग की दृष्टि से आदमियों को उपयुक्त काम नहीं मिला हुआ है। प्राय गोल खूटी को चौकोर छेद में बिठाया जा रहा है। इसका परिणाम साफ है कि उत्पादन के साधन के रूप मे जैसी उनसे अपेक्षा की गई थी-वैसा वे नहीं कर पा रहे हैं। पर इसके लिए केवल शिक्षा को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था एव नियोजन को भी दोष देना चाहिए। हा शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका से मना नहीं किया जा सकता।

* राजकीय तथा अराजकीय अनगिनत प्रयत्नो के बाद भी हमारे देश में निरक्षरता दूर नहीं हुई है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में आज भी 48 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं। यह 48 प्रतिशत ही वह जनसख्या है जो श्रमिक कामगार या राज या निम्न श्रेणी के मजदूर वर्ग में आते हैं तथा क्या शिक्षाधिकारियों ने योजना बनाने वालो ने तथा प्रशासको ने इनको शिक्षित करने की कोई चिन्ता की है? फलत विकास में भी अन्तर स्पष्ट दीखता है।

* उच्च शिक्षित व्यक्ति कारण कुछ भी रहे हो विदेशों मे जाकर बस जाते हैं वहा उन्हें उच्च वतन सम्मान तथा अधिकारियों का उत्साह वद्धक व्यवहार मिलता है कुछ वहा पढने के लिए जाते हैं तथा अध्ययन समाप्त कर वहीं बस जाते हैं। राष्ट्र ने उनकी शिक्षा-दीक्षा पर धन राशि खर्च की है उनके लिए भव्य भवन विशाल पुस्तकालय साधन सम्पन्न प्रयोगशालायें सुरम्य क्रीडागण उपलब्ध करवाये हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है 66 प्राथमिक विद्यालय के बालको का खर्चा एक ही स्नातक पर खर्च किया गया है। यदि अभियान्त्रिकी या चिकित्सा के क्षेत्र में बात करे तो यह अनुपात 66 से और अधिक बैठेगा। पाठक भिन्न राय रख सकते हैं पर गरीब देश या विकासोन्मुखी राष्ट्र के लिए तो इस प्रवृत्ति से बचना ही चाहिए अन्यथा प्रतिकूल स्थितिया बनी ही रहेंगी।

* भारतीय जनसख्या का अधिकाश ग्रामीण आदिवासी गिरिजन पिछडे वर्ग तथा महिलाओं का है। विकास में इस वर्ग के योगदान की कोई परवाह नहीं की गई है। यदि देश के विकास कार्यों में इस वर्ग का योगदान प्राप्त किया जाता तो निश्चय ही देश के आर्थिक विकास को इससे कहीं अधिक बढाया जा सकता था।

देश में आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) के निम्न स्तर के लिए बहुताशों में हमारी शिक्षा ही उत्तरदायी है और फिर दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति भी कम उत्तरदायी नहीं है। इससे स्पष्ट है कि न्यूनाधिक रूप से देश मे सकल उत्पाद बढाने मे शिक्षा प्रणाली असफल या निष्प्रभावी ही रही है तथा उसका प्रभाव देश के आर्थिक विकास पर भी पडा है।

निष्प्रभावी शिक्षा के लिए उत्तरदायी तत्व

दश के आर्थिक विकास में शिक्षा को निष्प्रभावी करने के दो मुख्य कारण या बताये जा सकते हैं।

(अ) शिक्षा तथा आर्थिक विकास में उपयुक्त सलग्नता न होना

देश के आर्थिक विकास मे शिक्षा का आशानुकूल योगदान न होने का मुख्य कारण यह है कि भूतकाल में इस दिशा मे कोई उपयुक्त, गम्भीर तथा पूरे मन से प्रयत्न ही नहीं किये गये। देश की शैक्षिक आवश्यकताओं का अनुमान ही नहीं लगाया गया देश की आवश्यकता तथा शैक्षिक सुविधाओ के विस्तार मे कोई सम्बन्ध नहीं जोडा गया देश के विकास के लिए उपयुक्त व्यक्तियो की आवश्यकता के ज्ञान के बिना ही अधाधुध शिक्षण सस्थाए खोली गई। ऐसा लगता है कि यह बिना योजना के ही हो गया या शैक्षिक नियोजन वास्तविकताओ से परे किया गया या शैक्षिक नियोजनसम्बन्धी अनुमान ही त्रुटिपूर्ण लगाये गये।

(आ) साधनों की कमी

दूसरा कारण है साधनों की कमी। गुणात्मक एव उपयुक्त शिक्षा बालकों को नागरिको को सुलभ हो इसके लिये आवश्यकतानुसार साधन सरकार के पास नहीं हैं। पिछली योजनाओ में सरकार ने इसके लिए उपयुक्त राशि का आवटन नहीं किया है यद्यपि हम सब स्वीकार करते हैं जानते हैं कि शिक्षा उपयोगी प्रतिफल देने वाली है। भारत की प्रथम पचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए सात प्रतिशत धन दिया गया था जो आगे चलकर सातवीं योजना में (जो वर्ष 1991 में समाप्त हुई है) 3 3 प्रतिशत ही रह गया। यहा यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1950-51 से राष्ट्रीय सकल उत्पाद का 1 2 प्रतिशत ही शिक्षा पर खर्च किया गया था जो 1986-87 में बढ

कर 39 प्रतिशत हो गया पर यह राशि 6 प्रतिशत से बहुत नीचे है जिसके लिए कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी अनुशसा की है। यह अनुमान लगाया जाता है कि यदि 2000 तक सबको शिक्षा मिलनी चाहिए तो इसके लिए मात्र प्राथमिक शिक्षा के मद में ही अगले 10 वर्षो में 80 000 करोड रुपयों की आवश्यता होगी क्योंकि इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रत्येक 5 मिनट में 230 छात्रो के लिए एक प्राथमिक विद्यालय खोलते रहना होगा।

नीतिगत निहितार्थ

शिक्षा के प्रतिफल के रूप में विकास पर भारत तथा विदेशो में सम्पादित कई अनुसधान प्रतिवदनों में प्रकाश डाला गया ह। इन शार्धो के निष्कर्षों से योजनाधिकारियो को लाभ उठाना चाहिए। विकास की दृष्टि से इनके निष्कर्ष योजना के लिए आधार का काम कर सकते हैं। कुछ पर यहा विचार किया जा रहा है-

* चूकि साक्षरता तथा साक्षरता का स्तर सीधा विकास से जुडा हुआ है अत देश की निरक्षता के निवारण पर सर्वोच्च प्राथमिकता क रूप में विचार किया जाना चाहिए। सन 1991 की जनगणना क अनुसार यद्यपि 52 प्रतिशत जनसख्या साक्षर हो गई पर यह काफी नहीं ह तथा अभी भी करने के लिए बहुत कुछ शेष है।

* ज्यों ज्यों शिक्षा का स्तर बढता है शिक्षा का आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) की दर के रूप में प्रतिफल गिरता जाता है। इससे स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा से मिलनेवाले प्रतिफल की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा से मिलनेवाला प्रतिफल अधिक होगा। या उच्च माध्यमिक शिक्षा का प्रतिफल स्नातक शिक्षा के प्रतिफल से अधिक होगा इस प्रकार निष्कर्षत कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा का प्रतिफल सर्वाधिक होता है। इससे प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा ही आर्थिक विकास में सर्वाधिक मदद करती है भूमिका निभाती है। इस विवेचन से यह भी सकेत मिलता है कि शिक्षा के अन्य सभी स्तरों की अपेक्षा प्राथमिक स्तर को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि आर्थिक विकास में यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है सर्वाधिक योगदान करती है और दुर्भाग्य से हो यह रहा है कि हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा की ही भारी दुर्गति है इसे ही सबसे कम महत्व दिया जा रहा है। न केवल इतना ही शिक्षा की सीढी में यही सबसे कमजोर कडी है। प्रत्येक योजना में प्राथमिक शिक्षा को दिये जानेवाले धन के प्रतिशत मे कमी आई है। इससे स्पष्ट होता है कि स्थितिया में तब तक सुधार नहीं हो सकता जब तक कि प्राथमिक शिक्षा के लिए अधिक प्रतिशत धन की व्यवस्था न की जाय।

* भारतीय जनसंख्या का अधिकांश ग्रामीण आदिवासी गिरिजन पिछड़े वर्ग तथा महिलाओं का है। विकास में इस वर्ग के योगदान की कोई परवाह नहीं की गई है। यदि देश के विकास कार्यों में इस वर्ग का योगदान प्राप्त किया जाता तो निश्चय ही देश के आर्थिक विकास को इससे कहीं अधिक बढ़ाया जा सकता था।

देश में आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) के निम्न स्तर के लिए बहुतांशों में हमारी शिक्षा ही उत्तरदायी है और फिर दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति भी कम उत्तरदायी नहीं है। इससे स्पष्ट है कि न्यूनाधिक रूप से देश में सकल उत्पाद बढ़ाने में शिक्षा प्रणाली असफल या निष्प्रभावी ही रही है तथा उसका प्रभाव देश के आर्थिक विकास पर भी पड़ा है।

निष्प्रभावी शिक्षा के लिए उत्तरदायी तत्व

देश के आर्थिक विकास में शिक्षा को निष्प्रभावी करने के दो मुख्य कारण यों बताये जा सकते हैं।

(अ) शिक्षा तथा आर्थिक विकास में उपयुक्त संलग्नता न होना

देश के आर्थिक विकास में शिक्षा का आशानुकूल योगदान न होने का मुख्य कारण यह है कि भूतकाल में इस दिशा में कोई उपयुक्त गम्भीर तथा पूरे मन से प्रयत्न ही नहीं किये गये। देश की शैक्षिक आवश्यकताओं का अनुमान ही नहीं लगाया गया देश की आवश्यकता तथा शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार में कोई सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया देश के विकास के लिए उपयुक्त व्यक्तियों की आवश्यकता के ज्ञान के बिना ही अंधाधुंध शिक्षण संस्थाएं खोली गई। ऐसा लगता है कि यह बिना योजना के ही हो गया या शैक्षिक नियोजन वास्तविकताओं से परे किया गया या शैक्षिक नियोजनसम्बन्धी अनुमान ही त्रुटिपूर्ण लगाये गये।

(आ) साधनों की कमी

दूसरा कारण है साधनों की कमी। गुणात्मक एवं उपयुक्त शिक्षा बालकों को नागरिकों को सुलभ हो इसके लिये आवश्यकतानुसार साधन सरकार के पास नहीं हैं। पिछली योजनाओं में सरकार ने इसके लिए उपयुक्त राशि का आवंटन नहीं किया है यद्यपि हम सब स्वीकार करते हैं जानते हैं कि शिक्षा उपयोगी प्रतिफल देने वाली है। भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए सात प्रतिशत धन दिया गया था जो आगे चलकर सातवीं योजना में (जो वर्ष 1991 में समाप्त हुई है) 3.3 प्रतिशत ही रह गया। यहां यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1950-51 से राष्ट्रीय सकल उत्पाद का 1.2 प्रतिशत ही शिक्षा पर खर्च किया गया था जो 1986-87 में बढ

कर 39 प्रतिशत हो गया पर यह राशि 6 प्रतिशत से बहुत नीचे है जिसके लिए कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) ने भी अनुशसा की है। यह अनुमान लगाया जाता है कि यदि 2000 तक सबको शिक्षा मिलनी चाहिए तो इसके लिए मात्र प्राथमिक शिक्षा के मद में ही अगले 10 वर्षों में 80 000 करोड रुपयों की आवश्यता होगी क्योंकि इस लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रत्येक 5 मिनट में 230 छात्रों के लिए एक प्राथमिक विद्यालय खोलते रहना होगा।

नीतिगत निहितार्थ

शिक्षा के प्रतिफल के रूप में विकास पर भारत तथा विदेशों में सम्पादित कई अनुसधान प्रतिवेदनों में प्रकाश डाला गया ह। इन शोधों के निष्कर्षों से योजनाधिकारियों को लाभ उठाना चाहिए। विकास की दृष्टि से इनके निष्कर्ष योजना के लिए आधार का काम कर सकते हैं। कुछ पर यहा विचार किया जा रहा है-

* चूकि साक्षरता तथा साक्षरता का स्तर सीधा विकास से जुडा हुआ है अत देश की निरक्षता के निवारण पर सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में विचार किया जाना चाहिए। सन 1991 की जनगणना के अनुसार यद्यपि 52 प्रतिशत जनसख्या साक्षर हो गई पर यह काफी नहीं है तथा अभी भी करने के लिए बहुत कुछ शेष है।

* ज्यों ज्यों शिक्षा का स्तर बढता है शिक्षा का आर्थिक वृद्धि (ग्रोथ) की दर के रूप में प्रतिफल गिरता जाता है। इससे स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा से मिलनेवाले प्रतिफल की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा से मिलनेवाला प्रतिफल अधिक होगा। या उच्च माध्यमिक शिक्षा का प्रतिफल स्नातक शिक्षा के प्रतिफल से अधिक होगा इस प्रकार निष्कर्षत कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा का प्रतिफल सर्वाधिक होता है। इससे प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा ही आर्थिक विकास मे सर्वाधिक मदद करती है भूमिका निभाती है। इस विवेचन से यह भी सकेत मिलता है कि शिक्षा के अन्य सभी स्तरों की अपेक्षा प्राथमिक स्तर को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि आर्थिक विकास में यही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है सर्वाधिक योगदान करती है और दुर्भाग्य से हो यह रहा है कि हमारे देश में प्राथमिक शिक्षा की ही भारी दुर्गति है इसे ही सबसे कम महत्व दिया जा रहा है। न केवल इतना ही शिक्षा की सीढी में यही सबसे कमजोर कडी है। प्रत्येक योजना में प्राथमिक शिक्षा को दिये जानेवाले धन के प्रतिशत मे कमी आई है। इससे स्पष्ट होता है कि स्थितियां मे तब तक सुधार नहीं हो सकता जब तक कि प्राथमिक शिक्षा के लिए अधिक प्रतिशत धन की व्यवस्था न की जाये।

* यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा सामान्य या उदार शिक्षा से आर्थिक विकास म अधिक योगदान करती है। इससे आर्थिक विकास में व्यावसायिक शिक्षा की भूमिका स्पष्ट होती है। पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि देश में अंधाधुंध बिना सोचे विचारे व्यावसायिक शिक्षा संस्थाएं खोलते रहे। एक ऐसे समय की भी कल्पना की जा सकती है जब व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी मानविकी या कला के विद्यार्थियों से भी अधिक हो या आवश्यकता से अधिक हों यह स्थिति कला स्नातकों की आज भी है। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में देश में अभियान्त्रिकी शिक्षा का बेतहाशा विकास हुआ तथा देश में आज हजारों इंजीनियर बेकार हैं। यह याद रखा जाना चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा सामान्य या उदार शिक्षा की अपेक्षा कहीं अधिक महंगी होती है। इसलिए कोई भी व्यावसायिक शिक्षा का नया संस्थान खोलने के पूर्व पक्ष विपक्ष की सभी बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। एक इंजीनियर को तैयार होने मे आज एक अनुमान के अनुसार लगभग 10 लाख रुपये खर्च आता है इसमें से दो ढाई लाख रूपया माता-पिता खर्च करते हैं तथा शेष सार्वजनिक या राजकीय कोष से व्यय किया जाता है। इतने भारी खर्च के बाद यदि इंजीनियर बेकार रहे तो माता-पिता के मन पर क्या बीतेगी? इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। प्रशिक्षित जन बल का जिस क्षेत्र में अभाव है वहां अवश्य ही ऐसी शिक्षा के संस्थान खोले जाने चाहिए। इसके सिवाय माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा की अधिक आवश्यकता है। इसीलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को व्यावसायिक शिक्षा देने का प्रावधान किया गया पर शिक्षार्थियों में व्यावसायिक शिक्षा लोक प्रिय नहीं हो पाई इसके कारण कुछ भी रहे हैं। अब इस प्रतिशत को घटाकर 10 प्रतिशत ही स्वीकार किया गया है। यह आशा की जानी चाहिए कि व्यावसायिक शिक्षा पानेवाले विद्यार्थी इसे सही रूप में लेंगे।

* आर्थिक विकास में उच्च शिक्षा का योगदान प्राथमिक उच्च प्राथमिक माध्यमिक या उच्च माध्यमिक शिक्षा की अपेक्षा सबसे कम है। सम्भवतया इस सबसे कम योगदान का कारण यह है कि उच्च शिक्षा सामाजिक दृष्टि से अति महंगी है और महंगी होने का कारण शायद यह है कि उच्च शिक्षा प्राप्त कार्य में लगे लोगों की संख्या तुलनात्मक रूप से बहुत कम होती है। उच्च शिक्षा की उत्पादकता या प्रतिफल बढाने का एक ही तरीका हो सकता है कि इसकी सामाजिक या सर्वजनिक लागत घटाई जाय। उच्च शिक्षा की वैयक्तिक या निजी लागत को बढा कर इस उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता

है। इसका एक कारण यह भी बताया जाता है कि उच्च शिक्षा के सामाजिक प्रतिफल से निजी या वैयक्तिक प्रतिफल अधिक ऊचे होते हैं। यहा यह स्पष्ट किया जाना बहुत आवश्यक है कि किसी भी स्थिति मे तथा किसी भी कीमत पर प्रतिफल कम प्राप्त होने पर भी उच्च शिक्षा के स्थान का उसकी गुणवत्ता का ह्रास न किया जाये क्योंकि उच्च शिक्षा के अपरोक्ष या अप्रत्यक्ष प्रतिफल की गणना बहुत कठिन है। उच्च शिक्षा के मुख्य अग अनुसधान नवाचार उच्च स्तरीय अध्यापन सस्थितिया तथा अभिनव विचारो का विकास होता है तथा उनका हर स्थिति मे लागत-लाभ का विश्लेषण न तो उपयुक्त होता है तथा नहीं सही। इस दोष का उपचार केवल या बताया जा सकता है कि वास्तविक सही उपयुक्त प्रतिभा सम्पन्न मेधावी विद्यार्थियों को ही उच्च शिक्षा के लिए प्रवश दिया जाये। इससे उच्च शिक्षा की लागत घटाने में मदद मिलेगी। इसके सिवाय उच्च शिक्षा को इस दृष्टि से भी महत्व दिया जाना चाहिए कि इसस अर्थतन्त्र के विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकता के व्यक्तियो को तैयार किया जाता है शिक्षित या प्रशिक्षित किया जाता है।

* सामान्यतया शिक्षा के सार्वजनिक या सामाजिक प्रतिफल की अपेक्षा निजी या वैयक्तिक प्रतिफल अधिक होते है उच्च शिक्षा की दृष्टि से तो यह शत प्रतिशत सही है ही। इसका मुख्य कारण यह है कि शिक्षा का व्यक्ति के लिए उसके निजी रूप म अधिक महत्व है व्यक्ति इसे बुनियादी आवश्यकता मानता है तथा सर्वोच्च स्थान दता है। नीतिनिर्धारको के हाथों में शिक्षा को उतना महत्व नहीं मिलता पर जनसाधारण को यह स्थिति तो सहना ही होगी क्योकि शिक्षा का केवल एक आर्थिक उद्देश्य-कार्य ही नहीं है बल्कि समाज सेवा भी इसका एक महत्वपूर्ण अग है।

समाहार

शिक्षा तथा विकास में अविच्छिन्न एव परस्पर गाढा सम्बन्ध है तथा शिक्षण को विकास की दृष्टि से नियोजित करने की आज प्रथम स्थान पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। दश के आर्थिक विकास के लिए शैक्षिक नियोजन को सही रूप मे आर्थिक नियोजन से अविलम्ब जोडा जाना चाहिए। शैक्षिक नियोजन तथा ससाधनो के आवटन की व्यूह रचना के समय देश में आर्थिक विकास की दृष्टि से शिक्षा के प्रकार (उच्चतर शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा प्राविधिक शिक्षा विधि शिक्षा आदि) तथा शिक्षा के स्तरा (पूर्व प्राथमिक प्राथमिक उच्च प्राथमिक माध्यमिक उच्च माध्यमिक उच्च विश्वविद्यालय) पर निर्विवाद रूप से ध्यान दिया ही जाना चाहिए। ऐसा करते समय देश की शिक्षित या ट्रेण्ड जन बल की आवश्यकता को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया

जाना चाहिए क्योंकि इन्हीं सब तत्वो पर या अगों पर देश का सामान्य विकास निर्भर करता है। या इन सब क्षेत्रों का विकास मिलकर ही तो देश का विकास बनता है। योजनाधिकारियों को शिक्षा तथा विकास को शीतल मस्तिष्क से सही रूप से लेना चाहिए, यही आज की शीर्षस्थ आवश्यकता है।

अन्तिम पर महत्वपूर्ण है कि किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए शिक्षा का नियोजन करते समय वहा क सामाजिक पक्षों उनके परिणामों सास्कृतिक पृष्ठभूमि सामाजिक मूल्या विचार धाराओ एव निवासियो के जीवन दर्शन पर भी विचार किया जानाचाहिए। शिक्षा का जिस किसी रूप मे नियोजन किया जाये उसे सामाजिक उत्तरदायित्व वहन करना ही होगा अर्थात् वह शिक्षा समाज के प्रति उत्तरदायी हो। बिना सामाजिक सन्दर्भ का ध्यान रखे किसी भी राष्ट्र का आर्थिक विकास कोई महत्व नहीं रखता। साराशत शिक्षा का विकास देश के आर्थिक विकास की अपेक्षा समग्र या सकल विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण है अधिक अर्थपूर्ण है। इसीलिये इसे (शिक्षा के विकास को) समग्र विकास की दृष्टि से नियोजित किया जाना चाहिए तथा इस समग्र विकास मे आर्थिक विकास को उसका वाछित तथा उपयुक्त स्थान मिलना चाहिए। स्पष्ट है कि शैक्षिक नियोजन के समय सामाजिक पक्ष को छोडा नहीं जाना चाहिए अर्थात् शैक्षिक नियोजन शून्य में नहीं किया जाना चाहिए।

❐

उपभोक्ता की शिक्षा

औद्योगिक विकास के साथ ही उत्पादन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये हैं। क्रान्तिकारी इस अर्थ में कि एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए भिन्न भिन्न नामो से एक से अधिक वस्तुए बाजार मे दिखती हैं तथा खरीदी जा सकती है। उपभोक्ता के लिए सही वस्तु का चुनाव करना आज के समय में टेढी खीर बन गया है। कारण कि कई वस्तुए तो समान मात्रा मे समान भार की होते हुए भी उनकी कीमत में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई राशि का पूरा पूरा लाभ उसे मिले यहीं से उपभोक्ता शिक्षा आरम्भ हो जाती हैं।

सामान्य जनता को इस क्षेत्र में शिक्षित करने के लिए जनसचार माध्यमों का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। इन जनसचार माध्यमो में समाचार पत्र आकाशवाणी दूरदर्शन कैसेट चलचित्र जनसम्पर्क विभाग तथा प्रचार निदेशालय सम्मिलित है।

समाचार पत्र मुद्रित सामग्री हैं जबकि जन सम्पर्क तथा प्रचार निदेशालय प्रचार के साथ मुद्रित सामग्री भी वितरित करता है पर वे सदैव ही अपने कार्यक्रमों के प्रचार म इनका अनिवार्यत प्रयोग नहीं करते हैं। इनम से कुछ साधन तो उपभोक्ता देख सकते हैं जबकि कुछ अन्य साधनो से वे देख भी सकते हैं तथा सुन भी वे देखने तथा सुनने दोनों की श्रेणी में आते हैं। समाचार पत्र एक ऐसा साधन है जिसे उपभोक्ता दृश्य साधन मानता है जबकि आकाशवाणी तथा कैसेट श्रव्य साधन है और शेष साधन श्रव्य तथा दृश्य दोनों प्रकार के हैं।

आकाशवाणी दूरदर्शन चलचित्र तथा कैसेट जनसचार के शक्तिशाली एव प्रभावी साधनो के रूप म उपभोक्ताओं को निर्णायक स्थिति में पहुँचाते हैं। आकाशवाणी तथा कैसेट ऐसे साधन है जिनसे केवल सुना जा सकता है- इनमें कहने वाले को देखा नहीं जा सकता। कहते समय कहने वाले के हाव भाव अगचालन नेत्र-सकेत मुखमुद्रा का जो प्रभाव उपभोक्ता पर पडता है यह प्रभाव ही उनके निर्णय को सचालित करता है पर उपभोक्ता इससे वचित रहता है यही इसकी सीमायें हैं। इसके विपरीत चलचित्र तथा

दूरदर्शन म ये दोनों ही विशेषताए पाई जाती ह। उपभोक्ता उनसे सुनता है तथा सुनने के साथ ही सुनाने वाले को भी देखता है।

कैसेट तथा समाचार पत्र के सिवाय अन्य सभी सचार माध्यमों पर सरकार का नियन्त्रण रहता है। इसम कई बार उपभोक्ताओ के हितो को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया जाता है और लगता है कि सचार माध्यम सही वाछित दिशा में काम नहीं कर रहे हैं और वे सही तथा गलत का या विवेक का विकास करने के बजाय सरकारी नीतियों के प्रचारक मात्र भी बन सकते हैं। उपभोक्ताओ क वृहद् हित में ऐसा नहीं किया जाना चाहिए।

सरकार द्वारा पूर्ण रूप से नियन्त्रित जनसम्पर्क विभाग तथा प्रचार निदेशालय का तो स्पष्टत कार्य ही यही है कि वे राज्य सरकारो की नीतिया तथा कार्यों का प्रचार करें तथा जनसाधारण की प्रतिक्रियाओ से उच्चाधिकारियो को अवगत कराये जिससे वे जनभावना का सम्मान करते हुए अपने सिद्धान्तों-कार्यों में परिवर्तन ला सकें।

जनसचार के पत्रकारिता अग को कभी कभी अपने मालिकों द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर उसका दुरुपयोग भी किया जाता है। किसी के चरित्र हनन करने अपनी दुश्मनी निकालने या अपने लाभ हेतु किसी उपभोक्ता को ब्लेकमेल करने के कार्य को पीत पत्रकारिता कहते हैं। समाचारो को तोड मरोड कर छापना भी इसी श्रेणी मे आता है उपभोक्ताओं को इससे सचेत रहना चाहिए।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति शहरी-ग्रामीण बालक-वृद्ध पुरुष-नारी शिक्षित-निरक्षर बालक-बालिका श्रमिक-नियोक्ता छात्र-अध्यापक गरीब-धनी सभी एक न एक रूप म उपभोक्ता है। हर उपभोक्ता चाहता है कि वह जो राशि चुका रहा है उसके बदले में सही वस्तु तथा वह भी उच्च गुणवत्ता एव पूरे तोल में प्राप्त हो। ऐसा विवेकपूर्ण निर्णय सही अर्थों म शिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। मान लीजिये- समाचार पत्र में वीको वज्रदन्ती तथा कोलगेट या प्रॉमीस टूथपेस्ट का विज्ञापन छपा है। तीनों टूथपेस्ट का वजन बराबर होने के साथ ही कीमत भी बराबर है। वीको वज्रदन्ती टूथपेस्ट में मिलाई गई आयुर्वेदिक जडी बूटियाँ भी दर्शायी गई है। अब यदि पाठक दाँतो की सुरक्षा की दृष्टि से कोलगेट या प्रॉमिस के बजाय वीको टूथपेस्ट का चयन करता है तथा प्रयोग के लिए खरीदता है तो उपभोक्ता को सही अर्थों में शिक्षित कहा जाना चाहिए। यही बात किसानों के सम्बन्ध में जेटर तथा एच एम टी ट्रेक्टर को लेकर कही जा सकती है। दोनों की कीमत गारण्टी नि शुल्क सेवा की दृष्टि से किसान निर्णय करता है। अब यदि किसान को

यह भी पता लग जाये कि किसी भी एक ट्रेक्टर का फाल जमीन कितनी गहराई तक खोदता है तो किसान को यह अतिरिक्त लाभ होगा तथा वह अपने निर्णय को अधिक विवेकपूर्ण बना सकता है। मोनो ब्लाक तथा क्रिलोस्कर पम्पसेट के लिए भी यही कहा जा सकता है। समाचार पत्र से फिल्म समीक्षा पढ कर पाठक पिक्चर देखने या न देखने का निर्णय करते हैं। उपभोक्ता के रूप मे पाठक पुस्तक समीक्षा पढ कर पुस्तक खरीदने या न खरीदने का निर्णय लेता है। यही उपभोक्ता शिक्षा है।

मान लीजिए- आप आयकर दाता हैं। जब आप दूरदर्शन से सुनते हैं कि युनिट ट्रस्ट ने कर दिखाया न अपना वादा सही 18 प्रतिशत बोनस पर जब आप देखते हैं कि इससे आयकर में छूट नहीं मिलती है तो आप जीवन बीमा निगम या विकास बोण्ड या डाकघर की बचत योजना की ओर मुडते हैं तथा विभिन्न विकल्पो में से सही एव लाभदायक विकल्प चुनते हैं जो आपको आयकर भुगतान से बचा सके। कालेज के विद्यार्थी को एच एम टी तथा टाइटन की घडी में से चुनाव करना है। दोनों घडियों की कीमत लगभग समान है दोनो की गारण्टी की अवधि भी समान है पर टाइटन घडी की शक्ल सूरत आकर्षक है तो विद्यार्थी टाइटन घडी खरीदने का निर्णय ले सकता है पर एच एम टी की घडियों ने जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान ख्याति या साख पाई है उससे भी विद्यार्थी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता तथा वह एच एम टी की घडी चुन लेता है।

आजकल देश के हर जिले मे उपभोक्ता मच या फोरम का गठन किया गया है। जहा भी उपभोक्ता के हितों की अनदेखी की जाती है या हितो को आघात पहुचाया जाता है तो सम्बन्धित उपभोक्ता ऐसे मचों से अपने हितो की सुरक्षा की माग कर सकते हैं जिसका कोई शुल्क भी नहीं होता है। लेखक के एक मित्र ने वर्षा में साइकिल से गिरने के कारण अदालत मे वाद प्रस्तुत करके नगर पालिका से हरजाना प्राप्त कर लिया। उसका तर्क था कि जब वह मार्ग कर देता है तो सडक सही स्थिति में रखने की नगरपालिका की जिम्मेदारी है। आजकल न्यायालयो मे ढेरों वाद विचाराधीन पडे हुए हैं तथा समय पर न्याय नहीं मिलता इसलिए उपभोक्ता सरक्षण मच का गठन किया गया है। कम तोलने पर, मिलावट करने पर, सडे फल बेचने पर घटिया माल बेचने पर इन मचों में शिकायत की जा सकती है जहाँ तत्काल सुनवाई होती है। अरहर की दाल में चने की दाल हल्दी में ईंट पिसवा लेना चीनी में पानी उडल देना चावल में ककर मिला देना तो सामान्य बात हो गई है इसी भाति स्टेशनरी में निर्धारित से कम पृष्ठ की अभ्यास

पुस्तिका या कम वजन के गत्ते की जिल्द वाली कापी प्राय छात्रों के हाथों में थमा दी जाती है। नला में पानी का न आना या पर्याप्त मात्रा में न आना या समय पर न आना या उसको एक अधिक इँच वाली मुख्य धारा से न जोडकर कम इँची धारा से जोडकर कष्ट पहुँचाया जाता है तो उपभोक्ता अपने हिता की सुरक्षा के लिए ऐसे मच से सहायता ले सकता है। गदे पानी का नाला बहते रहना या सार्वजनिक स्थानो से कचरा न हटवाना या सफाई न करवाना भी इसी प्रकार के कार्य हैं इन्ह पब्लिक न्यूसेंस एक्ट में भी लिया जा सकता हैं पर वहाँ सुनवाई में बहुत समय लगता है तथा शुल्क भी देना होता है। वहा वकील की सहायता भी ली जाती है। पर इन उपभोक्ता मचो म वकीलों की सहायता जरूरी नहीं है। इन्हीं सब बाता को पर्यावरण सुरक्षा के अन्तर्गत भी इन्हीं मचों म सुनवाइ के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस प्रकार उपयुक्त विवचन से स्पष्ट है कि उपभोक्ताओं को शिक्षित करने के लिए किसी विद्यालय या किसी सस्थान की औपचारिक शिभा व्यवस्था की अपेक्षा जनसचार माध्यमों द्वारा अधिक प्रभावी ढग से शिक्षित किया जा सकता है। सही वस्तु न मिलने पर सजग होना उच्च गुणवत्ता तथा मानक वस्तु की प्राप्ति का आग्रह करना ही उपभोक्ता शिभा का मूलमत्र है। आज हर उपभाक्ता को तथा नागरिक को इस प्रकार की शिभा की नितान्त आवश्यकता है।

❐

डिग्री नौकरी अलग-अलग

डिग्री तथा नौकरी की पृथकता से जनसाधारण मे कैसे भ्रम का विकास हुआ है इससे वे कैसे गुमराह हुए हैं? लोग समझ रहे हैं कि अब हर कोई जिलाधीश या न्यायाधीश बन जायगे या इजीनीयर का काम सम्भाल लेंगे। कौन इन्हें समझाए कि बिना डिग्री के अब भी कलेक्टर या इजीनीयर या न्यायाधीश नहीं बन सकेंगे। मान लो बना भी दिये तो क्या वे काम का निष्पादन कर पायेंगे? क्या वे त्वरित गति से निर्णय ले लेंगे? क्या वे विश्वास के साथ काम निपटा देंगे? क्या वे सहकर्मियों पर रोबदाब या प्रभाव रख सकेंगे? क्या वे विषम परिस्थितियों में बिना धैर्य खोये विवेक सम्मत निर्णय ले सकेंगे? क्या वे अच्छे बुरे का निर्णय कर साथियों का नेतृत्व कर सकेंगे? क्या वे साथियों का प्रभावी मार्गदर्शन कर सकेंगे? ये कुछ प्रश्न हैं जिन पर शान्त मस्तिष्क से विचार किया जाना वाछनीय है। यदि बिना किसी शैक्षिक सामाजिक पृष्ठ भूमि पर विचार किये व्यक्ति को उच्च पद पर बिठा दिया तो काम निष्पादन में विलम्ब नहीं होगा? क्या बिना हिचक के निर्णय ले लेगा? जो सदैव ही आदेश के लिए उच्चाधिकारियों की ओर देखता रहा है वह अचानक पद प्राप्त करते ही सही निर्णय ले लेगा नेतृत्व प्रदान करेगा मार्गदर्शन करेगा आदेश दे देगा किसी अप्रिय घटना की आशंका के समय साहस और विश्वास के साथ अप्रत्याशित निर्णय ले लेगा तदनुसार आदेश दे देगा ऐसी अपेक्षा नहीं की जा सकती और कार्य का स्तर भी गिरेगा ही यह भी निश्चित है। व्यक्ति की स्वय की हानि होगी तथा काम भी बिगडेगा और न वह समय पर ही निपटाया जा सकेगा।

इसके दूसरी ओर व्यवहार मे देखा जा रहा है कि स्वतन्त्रता के बाद जनसाधारण में उच्च शिक्षा की माग कई गुणा बढी है। साधारण चपरासी भी अपने बच्चों को स्नातक या एम ए. तक शिक्षा दिलाना चाहता है। अभिभावकों मे इस विकसित महत्वाकांक्षा के फलस्वरूप 1947 में उपलब्ध 500 कॉलेजों तथा 27 विश्वविद्यालयों की सख्या बढ कर 1995 में क्रमश 8000 तथा 150 हो गई है। सैकेण्डरी तथा हायर सैकण्डरी स्कूलों की सख्या इसी अवधि में 7300 से 62300 हो गई है। उच्च शिक्षा के अवसरों में वृद्धि

के साथ- साथ रोजगार के अवसरों में वृद्धि नहीं हुई है। परिणाम स्पष्ट है कि शिक्षितो मे बेकारी द्रोपदी के चीर की तरह बढी है। और फिर शिक्षित व्यक्ति को अशिक्षित व्यक्ति के समान न तो गुमराह किया जा सकता है तथा न ही उनकी आवाज को महत्वहीन मान कर छोडा जा सकता है।

उच्च शिक्षा को एक दूसरे सन्दर्भ म भी देखा जाना चाहिए। भारत मे उच्च शिक्षा लगभग पौने पाच-पाच प्रतिशत है तथा ढेरो शिक्षित बेकार रोजगार की तलाश में इधर-उधर घूम रह हैं जबकि पाश्चात्य देशो में उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति दशमलव म आते हैं। भारतीय व्यावहारिक अर्थशास्त्रीय अनुसधान परिषद की एक शोध के अनुसार 1985-86 म उच्च शिक्षा सस्थाना म पढ रहे कुल विद्यार्थियो क आधे ही आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त थे। इस दृष्टि से यदि भारत में अब भी उच्च शिक्षा का और विकास किया जाता है तो बढने वाली बेकारी को एक अर्थशास्त्र के विद्यार्थी क रूप में सहज ही कल्पना की जा सकती है। इस समस्या की गम्भीरता तब और बढ जाती है जब उच्च शिक्षा सस्थानों में प्रवेश प्राप्त 60 प्रतिशत विद्यार्थी या इससे भी अधिक छात्र-छात्राएँ या तो अनुत्तीर्ण हो जाते हैं या तृतीय श्रेणी म उत्तीर्ण होते हैं। इससे प्रति छात्र उच्च शिक्षा पर होने वाला व्यय कई गुना बढ जाता है। सामान्य विषयों क स्नातकों को सार्वजनिक क्षेत्र में ही काम मिल सकता है। पर यह क्षेत्र भी उनके 20 प्रतिशत भाग को ही नियोजित कर सकता है। इस प्रकार तीन-चौथाई से भी अधिक शिक्षित नवयुवक रोजगार पाने के लिए पूर्व से खडे लोगो की पक्ति में जुड जाते हैं। शिक्षित बेकारो की इसी समस्या को हल करने के लिये या इस समस्या की गम्भीरता को कम करने के लिए-नई शिक्षा नीति के अनुसार डिग्री को नौकरी से पृथक करने का प्रस्ताव है जिससे डिग्री के प्रति लोगों की ललक कम हो यद्यपि शिक्षा की चुनौती मसौदे मे यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि पूर्व से नियुक्त लोक सेवकों को गतिशीलता के साथ बेहतर पद एव सेवा स्थितिया देने क लिए पत्राचार या दूरस्थ शिक्षा के माध्यम पर विचार करना होगा।

व्यवहार में देखा जाता है कि आज शिक्षा के बाद नौकरी प्राप्त करने के लिए डिग्री आशार्थी की योग्यता के रूप में महत्वपूर्ण कसौटी मानी गई है। केम्ब्रिज तथा आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की डिग्रिया आज भी सम्मान की दृष्टि से देखी जाती हैं। डिग्री प्राप्त करने का अर्थ होता है रोजगार या नौकरी के कई रास्ते खुलना। कई समाजों मे आज भी डिग्री श्रेष्ठता का सूचक मानी जाती है। आज विश्व के हर देश म डिग्री उच्च शिक्षा सस्थानों द्वारा प्रदान की जाती है

पेरिस विश्वविद्यालय ने पहली बार बेचलर की डिग्री दी थी। आज ससार के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा दी जाने वाली डिग्रियो म काफी विविधता है। उदाहरण के लिए भारत के ही बिहार के कुछ विश्वविद्यालय कानून क विद्यार्थी को बी एल की डिग्री दत हैं जबकि देश के अन्य विश्वविद्यालय एल एल बी की डिग्री देते हैं। इसी भाँति गढवाल तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय शोध छात्र को डी फिल की डिग्री देता है जबकि देश क अन्य विश्वविद्यालय पी एच डी की डिग्री देते हैं। कुछ पाश्चात्य शिक्षा सस्थान शिक्षा मे उच्च डिप्लोमा देते हैं जिसे भारत में कुछ विश्वविद्यालयो ने एम एड के समकक्ष माना है। इसी कारण इनकी समतुल्यता स्थापित करने के लिए प्रयत्न भी किये जात हैं। ज्यों-ज्यो शिक्षा का प्रसार हुआ है डिग्री की सामाजिक स्वीकार्यता व मान्यता म कमी आई है और आज बेकारी छिपी हुई बेकारी अर्द्ध बेकारी की स्थिति मे डिग्री के महत्व का ह्रास हुआ है। आज स्थिति यह है कि कभी श्रेष्ठता की प्रतीक कही जाने वाली डिग्री नवयुवको में निराशा कुण्ठा हताशा एव कटुता का स्रोत बन गई है।

उन सेवाओ मे डिग्री को नौकरी से अलग किया जायेगा जिनमे विश्वविद्यालयों की डिग्री की अनिवार्य योग्यता के रूप म आवश्यकता नहीं हाती। यह लागू किये जाने से विशिष्ट नौकरियों के लिये चलाये जाने वाले पाठ्यक्रमों का पुनर्निर्धारण शुरू हो जायगा और इससे उन उम्मीदवारों के प्रति अधिक न्याय हागा जो नौकरी क लिए पूरी तरह योग्य होते हुए भी स्नातक उम्मीदवारो को अनावश्यक तरजीह और प्राथमिकता दिये जाने के कारण नौकरी पान से वंचित रह जाते हैं।

"भिन्न-भिन्न काम के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के ज्ञान कौशल एव रुझान की आवश्यकता होती है तथा किसी भी नौकरी या काम के लिए विश्वविद्यालय की डिग्री क आधार पर किसी आशार्थी को चुनना या निरस्त करना उपयुक्त साधन नहीं है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण कदम यह लिया जा सकता है कि उपलब्ध नौकरी या कार्य क अवसरों का सोच विचार कर विश्लेषण किया जाये। इससे यह लाभ होगा कि काम के निष्पादन हेतु या उस निपटाने के लिए जिन कौशलों की आवश्यकता है उन कौशलों से युक्त शिक्षा तथा ट्रेनिंग की व्यवस्था की जाये इससे शिक्षा के व्यवसायीकरण मे मदद मिलेगी।"[1]

1 प्रोग्राम आफ एक्सन मिनिस्ट्री आफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेण्ट (शिक्षा विभाग) भारत सरकार नई दिल्ली प्रबन्धक टेक्सट बुक प्रेस 1986 पृष्ठ 77

डिग्री को नौकरी से अलग करने के बाद इसके स्थान पर विभिन्न चरणों में राष्ट्रीय परीक्षण सेवा जैसे उपयुक्त तंत्र की स्थापना की जायेगी। इसका उद्देश्य निर्धारित नौकरियो के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता निर्धारित करने के बाद स्वैच्छिक आधार पर परीक्षण का आयोजन करना है। इसका उद्देश्य देशव्यापी स्तर पर तुलनात्मक योग्यता के मानक या मानदण्डों के निर्धारण के लिए मार्ग प्रशस्त करना भी है। ऐसे परीक्षणों का मुख्य उद्देश्य लोगो को चाहे उनके पास औपचारिक डिग्रिया हैं या नहीं यह दिखाने का अवसर प्रदान करता है।

साधारणतया नागरिको के पास वे सारे विभिन्न काम करने की क्षमता योग्यता तथा कुशलता है पर वे काम व्यवहार में परम्परागत रूप से स्नातको को ही उपलब्ध होते रहे हैं। जो सस्थान भर्ती के लिए अपने यहा परीक्षाए आयोजित करते हैं ठोक से ठोक बजाकर नौकरी देते हैं उन्हें औपचारिक डिग्री का आग्रह नहीं करना चाहिए। ऐसा परीक्षण पहले से नौकरी पर लगे लोगों को पदोन्नति पाने में भी सहायक हो सकता है। सक्षेप मे यह स्वैच्छिक आधार पर राष्ट्र व्यापी परीक्षणो का आयोजन करने के लिए गुणवत्ता नियन्त्रण की प्रक्रिया है ताकि योग्यता दक्षता एव कुशलता के तुलनात्मक अध्ययन के लिए मानदण्डो का विकास हो सके। इस प्रक्रिया में स्वतन्त्र परीक्षण भी आयोजित किये जा सकते हैं। 'इससे नवयुवको में स्वत ही डिग्री पाने की ललक कम होगी जिसके फलस्वरूप उच्च शिक्षा सस्थान में प्रवेश के लिय दबाव भी कम होगा प्रवेश के लिए भीड कम उमडेगी। इन सकेतो पर काम करने के लिए आरम्भ में कार्मिक विभाग में एक प्रकोष्ठ बनाया जा सकता है जो कार्यों का पता लगाए तथा कर्मचारियो की भर्ती का समाकलन करे।'[1]

व्यवहार में डिग्री का नौकरी स पृथक करना जितना सरल तथा आसान माना जा रहा है वास्तव में उतना है नहीं स्थिति उल्टी ही है। इस तथ्य पर शान्त मस्तिष्क से लाभ-हानि की दृष्टि से विचार करना होगा। डिग्री को नौकरी से पृथक करने में सैद्धान्तिक कमियों के साथ-साथ व्यावहारिक कठिनाइया भी हैं। इस विषय के स्वरूप एव सीमा पर विस्तृत विचार मथन की आवश्यकता है बिना पूर्व तैयारी के कई कठिनाइयों को व्यर्थ ही मे आमन्त्रित किया जा सकता है।

सेवाओ के तीन वर्ग माने जाते हैं- उच्च मध्यम तथा निम्न। काफी

1. वही पृष्ठ 78

समय से यह आवाज उठती रही है कि निम्न वर्ग की सेवाओं में कर्मचारियो की भर्ती के लिए किसी भी प्रकार की योग्यता या डिग्री या प्रमाणपत्र की आवश्यकता न रहे। उदाहरण के लिए पत्रो के आवक–जावक विभाग में एक कमचारी को लिफाफों पर पता लिखना है। यदि इस कार्य के लिए आशार्थी का साधारण लिपि का ज्ञान है जिससे कि वह पते लिख सके तो उसके लिए हायर सैकण्डरी परीक्षा पास होने या स्नातक होने पर आग्रह क्यों किया जाय? साधारण शिक्षा से उनका कार्य हो सकता है तो डिग्री की आवश्यकता क्यो? इसी भाँति यदि किसी बैंक मे रुपया के लेन-देन के लिये कर्मचारी की आवश्यकता है तो साधारण गणित जानने एवं जोड बाकी कर सकने वाले को भर्ती किया जा सकता है जो रुपयों को गिन कर दे या ले सकें। अब यदि वह स्नातक नहीं है तो क्या हानि हो रही है? बिना हायर सैकेण्डरी परीक्षा पास व्यक्ति बैंक के इस कार्य को कर सकता है तो इस कार्य के लिए भर्ती किये जाने के लिए स्नातक या हायर सैकेण्डरी परीक्षा पास आशार्थी मागना बेमानी बात है। इसी भाँति मध्यम वर्ग की कुछ निचली सेवाओं के लिए भी शैक्षिक योग्यता की छूट दी जा सकती है और यह आशा की जानी चाहिए कि इससे सेवाओं से जुड़े निष्पादित कार्य के स्तर मे कोई गिरावट नहीं आयेगी।

डिग्री- नौकरी पृथक-पृथक के पक्ष में तर्क

कुछ चुने हुए क्षेत्रों मे डिग्री को नौकरी से अलग करने के लिए कदम लिये जाने चाहिए। ऐसी नौकरिया जिनमे डिग्री की आवश्यकता नहीं है तथा डिग्री वाले उपलब्ध हों तो उन्हें प्राथमिकता नहीं दी जाये। उदाहरण के लिए चपरासी तथा क्लर्क के लिए यदि साक्षर तथा मेट्रिक पास आशार्थी चाहिए तो इन पदों पर क्रमश मेट्रिक तथा स्नातको को नियुक्तिया नहीं दी जाये। अर्थ यह है कि उच्च शैक्षिक योग्यता को श्रेष्ठ न माना जाये अपरोक्ष रूप से इसका आशय यही है कि डिग्री को अनावश्यक रूप से महत्व नहीं दिया जाये।

डॉ एम एस गोरे के अनुसार डिग्री को नौकरी से अलग करने से विश्वविद्यालयों मे प्रवेश के लिए निरुद्देश्य आने वाली भीड का दबाव कम होगा इससे शिक्षा का भी स्तर सुधारा जा सकेगा क्योंकि काम करने के लिए डिग्री का नहीं, बल्कि काम से सम्बन्धित वाछित रुचि कौशल एवं रुझान की जरूरत होती है। वे आगे कहते हैं कि इससे एक लाभ और होगा और वह यह है कि विश्वविद्यालय में सही रुचि तथा ज्ञान प्राप्ति की तीव्र भूख और इच्छा वाले विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जा सकेगा जिससे विश्वविद्यालयों की अन्य कई समस्याएँ दूर की जा सकेगी।

कार्यालय संचालन से जुड़े लोगों को अन्य डिग्री प्राप्त करने के सार्वजनिक सम्बन्धों टंकण आशुलिपि आफिस मैकेनिज्म सेक्रेटेरिएट प्रासिजर आदि की ट्रैनिंग दी जानी चाहिए। ऐसा ही विचार 1955 में कुलपतियों के सम्मेलन में प्रकट किया गया था।

एक बार संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री किदवई का कहना था कि हाई स्कूल के बाद सामान्य विषयों में स्नातक बनने के लिए 4 से 6 वर्ष के समय की जरूरत पड़ती है तथा उनमें किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं होती। इसलिये अच्छा यह होगा कि हाई स्कूल के बाद बालक की रुझान जानकर 4-6 वर्ष तक विशिष्ट ज्ञान और कौशल की शिक्षा दी जाय जिससे उसे कौशल और अनुभव भी प्राप्त हो सके। डिग्री को नौकरी से अलग करने की योजना उन सेवाओं में शुरू की जायेगी जिनमें विश्व-विद्यालय की डिग्री आवश्यक नहीं होगी। इस योजना को लागू करने से विशेष कार्यों में अपेक्षित कुशलताओं पर आधारित नये पाठ्यक्रम बनने लगेंगे और इससे उन आशार्थियों के साथ अधिक न्याय हो सकेगा जिनके पास किसी विशेष काम को करने की कुशलता एवं क्षमता तो है लेकिन उन्हें वह काम इसलिए नहीं मिल सकता क्योंकि उनके लिए स्नातक आशार्थियों को अनावश्यक रूप से तरजीह दी जाती है। पर इससे व्यावहारिक व शैक्षिक समस्याएं आ सकती हैं-जो समय पर उपचार भी चाहेगी। प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री स्वर्गीय श्री लक्ष्मी कान्त झा ने कहा था कि नौकरी के इच्छुक आशार्थियों का चयन हायर सैकेण्डरी परीक्षा पास करने के बाद ही कर लिया जाय तथा आशार्थियों द्वारा चाहे गये काम की दृष्टि से विशिष्ट प्रकृति की शिक्षा तथा उससे जुड़ा उपयोगी प्रशिक्षण दिया जाय। चिकित्सा इन्जिनीयरी रक्षा विधि के क्षेत्र में ऐसा तत्काल किया जा सकता है। उन्होंने इस समस्या को एक अन्य दृष्टिकोण से भी देखा कि इससे विश्व विद्यालयों में प्रवेश का दबाव कम हो जायेगा। शेष विद्यार्थियों के लिए वे शिक्षा को अधिक अर्थपूर्ण तथा गहन बना सकेंगे।

श्री आर.पी मिश्र के अनुसार यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये कि नवाचार नेतृत्व उच्च बौद्धिक क्षमता त्वरित निर्णय प्रत्युत्पन्न मति की जिन पदों के लिए आवश्यकता है वहा डिग्री की अनिवार्यता बनी रहेगी। विशिष्ट व्यावसायिक क्षेत्रों जैसे इन्जिनीयरी चिकित्सा कानून शिक्षा आदि में इस प्रस्ताव को लागू नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार मानविकी सामाजिक विज्ञान और शुद्ध या प्राकृतिक विज्ञान आदि में जहाँ विशेषज्ञों की सेवाओ की आवश्यकता होती है अकादमिक अर्हताओं की आवश्यकता बनी रहेगी।

डिग्री-नौकरी पृथक-पृथक के विपक्ष में तर्क

बुनियादी शिक्षा सीखो कमाओं कार्यानुभव आदि प्रयागा के फल हमारे सामने है। आशा की गई थी कि 50 प्रतिशत छात्र स्कूल शिक्षा क बाद रोजगार म चल जायेंगे तथा शेष 50 प्रतिशत छात्र ही उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे। पर यह आशा पूरी नहीं हुई-हाथ से काम करना कोई नहीं चाहता। हायर सैकण्डरी स्कूल छोडने वाले आधे छात्रा के लिए भी काम या अपना रोजगार कहाँ हैं? इसलिये डिग्री को नौकरी से अलग करने के विपक्ष मे यह तर्क दिया जाता है कि स्कूल की शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी को काम नहीं मिला तो विश्वविद्यालय उसे कुछ समय तो व्यस्त रखेगा।

यह भी विचार सामने आया कि डिग्री को नौकरी स अलग करने के विचार का धुआधार या युद्ध स्तर पर प्रचार किया गया या इस प्रकार का वातावरण तैयार किया गया तो उच्च शिक्षा के प्रति जनसाधारण की इच्छा लुप्त हो जायेगी या मात्रा में कमी आयेगी। शिक्षित लोगों म यह विचार विकसित हो सकता है कि आने वाले समय मे डिग्री का कोई महत्व नहीं रहेगा। इस प्रकार प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की सेवाओ स समाज वंचित हो जायेगा तथा समाज के हित में उनका वांछित उपयोग नहीं होगा। यह भी सम्भावना है कि डिग्री को नौकरी स अलग करने के स्थान पर डिग्री का अवमूल्यन हो जाय। यहा भी इस दृष्टि से सतर्कता बर्ती जानी अत्यन्त आवश्यक है।

कटु आलोचक वर्तमान स्थितियों म इसे अप्रासंगिक तथा निरर्थक बतायेंगे। ऐसा कहने के लिए उनके पास पर्याप्त आधार व तर्क होंगे। सरकार एक तरफ खुले विश्वविद्यालय तथा पत्राचार पाठ्यक्रम आरम्भ कर रही है तथा कर्मचारियों को सतत अध्ययन करने के लिए प्रेरित कर रही है तथा दूसरी और डिग्री का महत्व कम करना चाहती है विश्वविद्यालयों में बढती हुई भीड के नाम पर आधे स्कूली छात्रो को रोजगार में भेजना चाहती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जब तक डिग्री नौकरी शिक्षा उच्च शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा आदि के सम्बन्ध में और मुख्यत इनके आपसी सम्बन्धों मे भी नीति स्पष्ट नहीं हो जाती जनसाधारण अनिश्चिय की स्थिति में ही रहेगा। जब तक इस क्षेत्र म योजनानुसार पूर्व प्रयोग नहीं कर लिया जाता विचार की व्यावहारिकता जानने के लिये तत्परता नहीं बरती जाती विचार का कोई महत्व नहीं रह जाता है।

निष्कर्ष

ऊपर के विवेचन से तथा पक्ष-विपक्ष के तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डिग्री को नौकरी से अलग करना आसान कार्य नहीं है। ऐसा करना न तो सम्भव है तथा न अपेक्षित हो तथा वर्तमान परिस्थितियों

म न व्यावहारिक ही है इस विचार पर खुल कर बहस करने की जरूरत है। डिग्री को नौकरी से अलग करने के लिए राज्यो के विभागों तथा राज्यो के लोक सेवा आयोगों को अपेक्षित योग्यता तथा कौशलों पर विचार-विमर्श कर निश्चय करना होगा। विभिन्न पदो के लिए चयन के बाद अभिरुचि तथा क्षमता की दृष्टि से सेवा पूर्व प्रशिक्षण शुरू किये जाने चाहिए। इसके लिए सम्भव है कई नई संस्थाओ की स्थापना करनी होगी-इसी सन्दर्भ मे राष्ट्रीय परीक्षण सेवा संस्थान की स्थापना भी विचाराधीन है।

समस्या की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए डिग्री को नौकरी से अलग करने का कार्य एकाएक लागू नहीं किया जाये वरन् इस कार्यक्रम को विभिन्न चरणो म समय का अन्तराल देकर किया जाये इस सम्बन्ध में शीघ्रता में लिया गया निर्णय समस्या को सुलझाने की अपेक्षा और उलझा भी सकता है। क्योंकि यह छोटी मोटी या आसान या महत्वहीन समस्या नहीं है। विश्वविद्यालय इस बात को सहर्ष स्वीकार कर रहे हैं इसमे उनकी सुविधा निहित है कि उन्ह ज्ञान की उत्कट रुचि एव सीखने की जिज्ञासा वृत्ति वाले चयित छात्र प्रवेश के लिए मिलगे जिनसे उनकी अन्य कई समस्यायें समाप्त हो जायेंगी।

माता-पिताओ का एक वर्ग यह मान सकता है कि सामाजिक जीवन म डिग्री का महत्व स्टेट्स सिम्बल या प्रतिष्ठा या सम्मान के रूप में बना रहेगा तथा डिग्री को नौकरी से अलग न करके उसे कुछ सीमा तक महत्व अवश्य दिया ही जाना चाहिए। माता-पिताओं का एक अन्य वर्ग इस राय का भी हो सकता है कि उन्हें डिग्री से जुडे महत्व से कोई मतलब नहीं है पर उनकी सरक्षित सन्तान अपने पैरों पर खडी हो सके इतनी आशा तो वे करगे ही न केवल इतना ही वरन् वे अवश्य ही यह भी चाहेंगे कि यदि उनके सरक्षितों को उच्च शिक्षा में प्रवेश नहीं दिया जाता है तो अन्य विकल्प तत्काल उपलब्ध हों। नौकरियों में आ सकने वालों की सख्या ज्ञात कर उनके लिए व्यावसायिक शिक्षा की निश्चित रूप से व्यवस्था की जानी चाहिए। यदि माता-पिता यह अनुभव करते हैं कि नई संस्थायें श्रेष्ठ नहीं हैं या उनका स्तर निम्न है या वे माता-पिताओं की अपेक्षाएं पूरी नहीं कर पायेगी तो स्पष्ट है कि माता-पिता अपनी सन्तान को इन संस्थाओ में नहीं भेजेंगे। इसीलिए विश्वविद्यालय से बाहर रोजगारोन्मुखी शिक्षा तथा व्यवसाय के लिए आवश्यक कौशल का प्रशिक्षण देने की सुविचारित योजना तैयार की जानी चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो निश्चित रूप से परम्परागत विश्वविद्यालयों पर विद्यार्थियों को प्रवेश देने के लिए अधिक भार बना ही रहेगा।

डिग्री को नौकरी से अलग करने के सम्बन्ध में यूनेस्को ने 1971

में 'लर्निंग टू बी' शीर्षक वाले प्रतिवेदन में पूरे महत्व के साथ बताया है कि छात्रों की बढ़ती हुई संख्या तथा विविधता को देखते हुए उनके लिए स्कूली शिक्षा के बाद भी संस्थाओं में विविधता लाने की प्रथम स्थान पर नितान्त आवश्यकता है। इसके लिए शिक्षा संस्थाओं में बुनियादी परिवर्तन करने होंगे। स्कूली शिक्षा के बाद विभिन्न पदों के लिए चयनित आशार्थियों को निष्पादित किये जाने वाले काम के लिये अपेक्षित गुणों तथा कौशलों की दृष्टि से लम्बे समय की शिक्षा व ट्रैनिंग की व्यवस्था की जायगी। इससे न केवल पदों के लिए उपयुक्त शिक्षा प्राप्त आशार्थी ही उपलब्ध होंगे वरन् उच्च शिक्षा संस्थानों को उद्देश्यहीन विद्यार्थियों को प्रवेश देने के दबाव से भी मुक्ति मिलेगी। इस भांति कुछ सीमा तक डिग्री अपना महत्व खोने से भी बच सकेगी।

❐

अन्तर्विषयी शोध

पाश्चात्य देशों में शोध की एक नई विधि बडी लोकप्रिय होती जा रही है वह है अन्तर्विषयी शोध। यहा किसी एक ही प्रकरण या प्रात्यय पर एक से अधिक कई शोध कार्यकर्ता कार्य करते रहते हैं-साथ बैठते हैं समस्या के विभिन पहलुओं पर खुले मस्तिष्क से विचारों का आदान-प्रदान करते हैं इसके पीछे भावना यही है कि एक से अधिक मस्तिष्कों द्वारा सोच-विचार कर किया गया शोध कार्य तुलनात्मक रूप से अधिक प्रभावी उपयोगी सार्थक स्पष्ट तथा तर्क-सगत होगा। भारत वर्ष में भी बदलती हुई सामाजिक स्थितियों म अन्तर्विषयी अनुसधान के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। एक-दूसर अनुशासन या विषय के जानकार विद्वानों का दृष्टिकोण समझा जाय तथा उससे लाभ उठाया जाये। जहा कहीं भी योग्य व्यक्ति एकत्र होते हैं वहा विचारों का आदान-प्रदान सभव है और इससे रचनात्मक ऊर्जा के नवीन स्तरो को टटोला जाता है। जब किसी शोध में विभिन्न विषयो या विज्ञानो या अनुशासनों के सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है तो उसे अन्तर्विषयी शोध कहते हैं। इसे कई विद्वान सहकारी शोध भी कह सकते हैं पर लेखक के अनुसार दोनों की आत्मा या भावना (spirit) मे अन्तर है।

वैसे तो प्रत्येक अनुशासन या विषय का अपना दृष्टिकोण होता है उसकी अपनी स्वतान्त्र अध्ययन विधि होती है उदाहरण के लिए समाज शास्त्र मनुष्य की विभिन्न क्रियाओं का समाज के सदस्य के रूप में अध्ययन करता है राजनीति शास्त्र मनुष्य तथा राज्य के अन्त सम्बन्धों पर केन्द्रित रहता है सास्कृतिक अध्ययन मानव शास्त्र में किया जाता है। बाजार में किसी वस्तु की कमी होने पर उपभोक्ता तथा उत्पादक का क्या व्यवहार रहता है इसका अध्ययन अर्थ-शास्त्र म किया जाता है अधिगम के लिए प्रभावी स्थितिया कौनसी है इसका अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। इस प्रकार एक लम्बे समय से प्रत्यक विषय का स्वतत्र अध्ययन मनुष्य के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है अर्थात् मनुष्य को धुरी बनाकर विभिन्न विषय अपनी सीमाओं मे रहते हुए अध्ययन करते हैं। उनका अपना-अपना भिन दृष्टि कोण है तथा वे व्यवहार के भिन्न-भिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं। जब प्रत्यक विषय

का अपना अपना भिन्न दृष्टिकोण होता है तो स्पष्ट है कि उसकी अध्ययन विधि भी निश्चित रूप से भिन्न होगी। उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है तथा अधिगम की प्रभावी स्थितिया ज्ञात करने के लिए बच्चों पर प्रयोग किया जाता है। दोना शोध क्रमश अर्थ-शास्त्र तथा मनोविज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दोनों विषया में शोध की अध्ययन विधि में समानता नहीं है। यह भी सभव है कि अन्य विशिष्ट प्रकरणो में न्यूनाधिक रूप से समानता मिल भी जाये परन्तु प्रत्येक विषय की अपनी धारणाये सकल्पनाये होती है जिनके आधार पर ज्ञान का विकास होता है तथा प्रत्येक विषय का अपना इतिहास होता है उसकी अपनी शब्दावली होती है। उस विषय म शोध करते समय शोध विधि उसके इतिहास से निर्दिष्ट की जाती है तथा शोध में उसी विषय की शब्दावली का अनिवार्यत पालन किया जाता है। सम्भवतया इसीलिए उसे अनुशासन के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

कालान्तर मे इस विचारधारा मे परिवर्तन आया। शिक्षाशास्त्रियों का कहना था कि ज्ञान टुकडो में नहीं दिया जाना चाहिए, एक विषय को दूसरे विषय से पूर्णत शत प्रतिशत पृथक करके भिन्न कमरे में उसे बन्द नहीं किया जा सकता। ऐसा ज्ञान एकागी है जो समग्र चित्र प्रस्तुत नहीं करता। एक विषय को पढाते समय दूसरे विषय को दिमाग से निकाल दें यह स्थिति वाछनीय नहीं है कुछ अशो में निश्चित रूप से हानिकारक भी हो सकती है। ऐसा ज्ञान जो बच्चे के सामने समग्र चित्र प्रस्तुत न करे, सभव है उनके लिए अपच का कारण बने।

अन्तर्विषयी शोध की परिभाषा

पाश्चात्य देशा म इस दशक में हुई लोकप्रिय शोध विधि मे सम्बन्धित विज्ञानों या विषयो की विधियो का अनुसरण किया जाता है तथा उन विषयो के विशेषज्ञों की विभिन्न सेवाओं का उपयोग किया जाता है। इसे ही अन्तर्विषयी या अन्तर्विद्या शोध कहते हैं। यद्यपि यह विधि भारत मे अभी लोकप्रिय नहीं हो पायी है। इतना ही नहीं कई विशेषज्ञ तो इसे मानने को ही तैयार नहीं है। उनका दृढ मत है कि समाजशास्त्र समाजशास्त्र है उसे मनोविज्ञान या अर्थशास्त्र नहीं बनाया जा सकता। इस अन्तर्विषयी शोध विधि को कई लेखक सहकारी विधि भी कहते हैं चूकि इस विधि में कई अनुशासनो के विद्वान सहयोग से काम को आगे बढाते हैं। कई विद्वानों ने तो इससे भी एक कदम आगे बढकर इसे सहकारी अनुशासन ही नाम दे डाला है। भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ अपने ज्ञान व सेवाओ का इस तरह योगदान करते

हैं कि उनकी विधियों में एकीकरण हो जाता है तादात्म्य हो जाता है। भिन्न-भिन्न अनुशासनों के विशेषज्ञ भले ही एक अनुसधान योजना पर काम क्यों न कर रहे हों उसे अन्तर्विषयी शोध तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि उनमें परस्पर समन्वय न हो। जिस प्रकार एक वारस सगीत के लिए हारमोनियम तबला बासुरी आदि विभिन्न प्रकार के वाद्य यत्रों पर कलाकार काम करते रहते हैं इनका अपना पृथक् पृथक् व्यक्तित्व होता है फिर भी ये पूर्णतया स्वतत्र होकर कार्य नहीं करते तथा न ही उनका स्वतत्र अस्तित्व कोई अर्थ रखता है। उनमे विभिन्नता होते हुए भी एक समझौता है एक प्रकार की विशिष्ट समझ-बूझ है एकता है जिससे एक कर्णप्रिय मधुर सगीत की रचना होती है। इसी प्रकार विभिन्न विज्ञानो के विशेषज्ञ-अर्थशास्त्री समाज-शास्त्री शिक्षा-शास्त्री मानव शास्त्री वाणिज्य-शास्त्री मनोवैज्ञानिक प्रशासक भूगोलवेत्ता राजनीति-शास्त्री यद्यपि अपने अनुशासनो का पालन करते है परस्पर एक होकर काम करते हैं। इस भाति कई व्यक्तियों के ज्ञान का उनकी विशिष्टताओं का प्रयोग होने से इसे सुधरी हुई परिष्कृत विधि कहा जा सकता है तथा वृहद्‌शोध प्रायोजनाओं मे इसका निरापद उपयोग किया जा सकता है।

इस प्रकार के शोध को मुख्यत दो भागो में बाटा जा सकता है -

(क) अन्तर्विद्या या (Intra Disciplinary) इसमें शोध को एक ही विषय की परिधि मे सीमित कर दिया जाता है उदाहरणार्थ ग्रामीण बेकारी-प्रकृति मापन सघनता अर्थतत्र से सबध तथा उपचार -

(ख) अन्तर्विद्या विधि-(Inter-Disciplinary)इसमें शोध को एक साथ कई विषयों से सबधित करके अनुसधान आरम्भ किया जाता है यथा-नदी-घाटी योजनाओं के साथ बसे लोगो के एकीकृत विकास की समस्याए।

इस प्रकार के शोध कार्य को तीन स्तरों पर विभाजित किया जा सकता है -

1 सैद्धान्तिक स्तर-विकास का विज्ञान मानवीय विकास आदि

2 व्यावहारिक स्तर-शिक्षानुशासन अन्य विषयों प्रतिमानो सिद्धान्तों आदि से ज्ञान प्राप्त करता है।

3 वैचारिक स्तर-समाज को चिन्तन की सही दिशा प्रदान करना-मानव द्वारा पर्यावरण के साथ समजन पर विवेचन आदि। इस स्तर मे दार्शनिक पक्ष पर आग्रह रहता है।

अन्तर्विषयी शोध की आवश्यकता

सहकारी या अन्तर्विषयी शोध की आवश्यकता या महत्त्व के लिए निम्न आधार प्रस्तुत किये जाते हैं -

1 कोई भी एक अनुशासन स्वतन्त्र रूप से अपने आप मे पूर्ण नहीं है। विशेषज्ञों के अनुसार कई क्षेत्रों के वैज्ञानिक भी सामान्य व्यक्ति के समान हैं यदि वह उसमें प्रयुक्त सामान्य वैज्ञानिक विधि के गूढ अर्थ को जाने बिना सिर्फ अपने निजी अनुशासन की वैज्ञानिक विधि अपनाता है तो वह इस अनुशासन के किसी भी अन्य व्यक्ति के समान ही घोर परम्परावादी हैं। यह मात्र विडम्बना होगी यदि अर्थ शास्त्री यह कहे कि समाज की समस्त बुराइयों व समस्याओं का मूल कारण अर्थशास्त्र के गर्भ में है तथा केवल अर्थशास्त्रीय उपायों से ही वे दूर करने का आग्रह करें। स्पष्ट है कि सरकारी या अन्तर्विषयी विधि द्वारा अन्य विशेषज्ञों की भी मदद ली जानी चाहिए।

2 विभिन्न अनुशासनों के पृथक-पृथक होते हुए भी उनका क्षेत्र पूर्णतया एक दूसरे से भिन्न नहीं है। इसका एक मात्र कारण यह है कि सभी अनुशासनों का केन्द्र एक ही है मनुष्य। भौतिक विज्ञान भी मानव द्वारा संचालित है तथा मानव के लिए है। समाज विज्ञानों में यह एकता और भी अधिक है इसलिए भौतिक विज्ञानों का सामाजिक पहलू भी हैं तथा सामाजिक विज्ञानो का भौतिक पहलू क्षेत्र विस्तृत रहता है कई लोग मिलकर काम करते हैं तो विषय का विस्तार इतना अधिक हो जाता है कि लोग व्यस्त हो जाते हैं। कई सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के कारण किसी नई दवा का आविष्कार होता है। आर्थिक विकास केवल आर्थिक क्रियाओं से प्रभावित नहीं होता- इसके लिए सामाजिक व मानवीय प्रयास भी समान रूप से महत्वपूर्ण होते हैं। समान साधन सुविधाए होने पर भी दो कक्षाओं की शैक्षिक प्रगति में भिन्नताएँ हो सकती है। आर्थिक उन्नति के लिए भी ऐसा ही कहा जा सकता है। इन सब भिन्नताओं के लिए सामाजिक कारण उत्तरदायी होते हैं। इससे निष्कर्ष निकलता है कि किसी एक अनुशासन की समस्या सुलझाने के लिए तुरन्त दूसरे विज्ञानों की सहायता की आवश्यकता पड जाती है।

3 अन्तर्विषयी शोध में वस्तुनिष्ठता लाना भी आवश्यक है। इस शोध विधि के प्रमुख लेखक यंग का कथन है कि ' अन्तर्विषयी शोध की सबसे बडी विशेषता यह है कि मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक कारणो से घिरे एव उलझे हुए मनुष्य जीवन में शोध कार्य सहज एव स्पष्ट बना देता है। सभी विषयों के ज्ञान तथा विशेषज्ञता प्राप्त होने से किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होती समस्या उत्पन्न नहीं होती। विभिन्न विषयो का तुलनात्मक अध्ययन करने से किसी एक विषय पद्धति के दोष स्पष्ट दृष्टिगोचर होत हैं तथा इन पद्धतियो से प्राप्त विपरीत व विरोधी निष्कर्षों का समन्वय भी हो जाता है।

4 सामाजिक घटना की प्रकृति कुछ इस प्रकार की होती है कि उसके लिए अन्तर्विषयी शोध अधिक उपर्युक्त रहता है। सामाजिक घटनाओं आर्थिक

मनोवैज्ञानिक ऐतिहासिक तथा भौतिक घटनाओं से प्रभावित होती हैं जिनके लिए विशिष्टीकरण के क्षेत्र में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ये घटनायें स्वयं भी परिस्थितियो को प्रभावित करती हैं। अत आधुनिक समाजशास्त्री सामाजिक घटना का उसके समग्र रूप में सामूहिक रूप से अध्ययन करते हैं। उदाहरण के लिए-आधुनिकीकरण एक ऐसा पहलू है जिस पर आर्थिक सामाजिक भौतिक राजनैतिक सास्कृतिक मनौवैज्ञानिक आदि अनेक पहलू प्रभाव डालते हैं। इसका प्रभाव भी इतना मिश्रित है कि उसका पृथक्-पृथक् अध्ययन नहीं किया जा सकता। ऐसे अध्ययन का यदि प्रयत्न किया गया तो एकागी होगा जो पहलू या घटना का समग्र चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकता।

कतिपय निश्चित प्रकल्पनाओं या निष्कर्षों पर पहुचने के लिए उसी से सम्बन्धित विभिन्न अज्ञात उन समस्याओ की आर जिन पर शोध किया जाना है कार्य करने की प्रक्रियाओं में अन्तर्विषयी शोध फलप्रद एव प्रभावी हो सकता है। हा यह सम्भव है कि क्षेत्र एव विषय की दृष्टि से उनका महत्व न्यूनाधिक हो सकता है। इसीलिए वृहद् शोध प्रायोजनाओं तथा क्षेत्रीय अनुसन्धानों की निरन्तर आवश्यकता ने व्यक्तिगत प्रयासों के समन्वय के महत्व को और भी प्रकाशित कर दिया है।

यही नहीं विभिन्न सरकारी एव गैर सरकारी सस्थाओं न अनुदान देकर इस तरह के शोध कार्य के प्रति जो रुचि प्रकट की है इससे भी अन्तर्विषयी शोध के विकास में मदद मिली है। वैसे भी कई सस्थाये शीघ्र ही फल जानने को उत्सुक रहती है। अत वे समस्या पर अन्तर्विषयी शोध प्रक्रिया से ही काम करवाना पसद करती हैं।

यह तो सुनिश्चित है कि प्रत्येक व्यक्ति सभी क्षेत्रो में विशेषज्ञता प्राप्त नहीं कर सकता तथा न ही इस प्रकार की आशा की जानी चाहिए। ऐसी स्थिति में यह व्यावहारिक नहीं होगा कि सभी अध्ययन व्यक्तिगत स्तर पर ही कराये जायें। अन्तर्विषयी शोध में एक दूसरे की कार्य पद्धतिया की भी आपस मे जाँच पड़ताल हो जाती है और फिर विभिन्न विचारधारा वाले अपने अनुशासनों मे आपस में विचार-विमर्श के बाद जो निर्णय लेते हैं उससे किसी प्रकार की सामान्य त्रुटि तथा तकनीकी दोष रहने की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है। हाँ यह अवश्य है कि इस प्रकार के आपसी बौद्धिक विचार मन्थन तथा निर्णय में समय लगता है पर अन्तर्विषयी शोध के महत्व को देखते हुए यह सारहीन है। इसलिये कुछ अशों तक यह कहना कि आधारभूत योगदान अनुसधानकर्ताओं के दल द्वारा नहीं किया जा सकता त्रुटिपूर्ण होगा। यदि समस्या शुद्ध अनुसधान का विषय हो तो इसमें कई विषयों या अनुशासनों के विद्वाना से योगदान की अपेक्षा की जा सकती है। इसीलिये इस प्रकार

के अनुसधान की महत्ता दिन प्रतिदिन बढती जा रही है। आज सभी समाज वैज्ञानिक इस प्रकार की शोध विधि की आवश्यकता अनुभव कर रह हैं। न केवल इससे एक दूसर क यागदाना का परिचय मिलता है बल्कि इससे कई सामान्य समस्याओं का भी उपचार प्राप्त होता है इसीलिए आज अन्तर्विषयी अनुसधान दलों का सगठन करके विभिन्न समस्याओ का समाधान किया जाता है।

अन्तर्विषयी शोध का महत्व एव आवश्यकता पर विचार करने से इसकी निम्न विशेषताए स्पष्ट होती हैं –

(1) अन्तर्विषयी शोध कार्य मे जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है विभिन्न अनुशासनों क विशेषज्ञ परस्पर सहयोग से आपसी समझ-बूझ एव सद्‌भाव से एक दूसरे का दृष्टिकोण समझते हुए प्रायोजना पर अग्रसर होते हैं। इस विधि में किसा एक अनुशासन की विधि को ध्यान में रखते हुए नहीं बल्कि सहयाग से काम किया जाता है। जरूरत के अनुसार विभिन्न अनुशासनो के विशेषज्ञ अपनी भूमिका निभाते हैं सहयोग देते हैं।

(2) दल के सभी सदस्यों को केवल सम्बन्धित समस्या के लिए ही अनुसधान करना चाहिए। प्रायोजना मे सम्मिलित विभिन्न विशेषज्ञ यदि मुख्य यात ध्यान में रख कर किसी गौण बात पर ही ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं तो मूल कार्य के प्रति पक्षपात हो सकता है तथा यह भी सभव है कि मूल शोध कार्य सही ढग से नहीं हो। एक उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी। बेरोजगारी के सर्वेक्षण पर विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। इस बीच मनोवैज्ञानिक शोध के विभिन्न चरणों पर कार्य करते हुए, यदि यह जानने का प्रयत्न करें कि माता-पिता अपने प्रथम पुत्र के लिए क्या धधा पसद करते हैं या भूगोलवेत्ता उसी शोध अध्ययन के साथ साथ जो की भूमि का सर्वेक्षण जाति वार करना चाहता है या सस्कृति का विद्वान उनके मनोरजन के साधनो का पता लगाना चाहता है या अर्थशास्त्री उनके पारिवारिक बजटों का अध्ययन करना चाहता है या राजनीति शास्त्री उनकी राजनीतिक दल के पसदगी या किसी दल या किसी नेता के प्रति पसदगी का अध्ययन करना चाहता है तो सभी विशेषज्ञ न तो ठोस अध्ययन करने की स्थिति में होंगे न इसे अन्तर्विषयी शोध विधि कहा जायेगा और सभव है- मूल कार्य बेरोजगारी का सर्वेक्षण पूरा भी न हो और यदि पूरा हो भी गया तो सर्वसम्मत निश्चित निष्कर्ष हो न निकल पायें। ऐसी स्थिति में सभी मानवीय प्रयत्न निष्फल होंगे।

(3) अनुसधान का प्रयोजन समाज को लाभ पहुचाना है। अत सर्वाधिक

महत्वपूर्ण उद्देश्य किसी तात्कालिक या दीर्घगामी समस्या का हल खोजना है। दूसरे शब्दों मे या कहा जा सकता है कि शोध निष्कर्षों का उपयोग समाज की व्याधियों को दूर करने के लिए सरलता एव सुविधा से किया जा सकता है अत निष्कर्ष खोजते समय समस्या की व्यावहारिकता ही मस्तिष्क मे रहती है। मान लीजिये बढती हुई जनसख्या पर एक वृहद् शोध कार्य हाथ में लिया जाना है विद्यालय के शिक्षक बढती हुई जनसख्या छोटे व बडे परिवार की धारणा बडी कक्षाओं म जनसख्या सम्बन्धी माल्थस के सिद्धान्त आदि पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। बाल-मृत्यु तथा स्वास्थ्य सेवाओ पर चिकित्सा विज्ञानी कार्य करते हैं। बडे परिवारों की या जनसख्या के सघन घनत्व या नगरीकरण की कठिनाइयों का अर्थशास्त्री अच्छा अध्ययन कर सकते हैं। श्रम के विशिष्टीकरण की हानिया या श्रम कल्याण सबधी समस्याये मजदूर बस्ती के सामाजिक जीवन का अध्ययन समाजशास्त्री अच्छा कर सकता है। गर्भ-निरोधक उपायो पर कार्यरत चिकित्सक अच्छा कार्य कर सकता है। इस स्थिति मे इस योजना पर विभिन्न अनुशासनों के विशेषज्ञो ने मिलकर सोच-विचार कर, सही परिस्थितियों में अन्तर्मन से काम किया है तो प्राप्त निष्कर्ष जनसख्या नियत्रण पर प्रभावी रूप से लागू किए जा सकेगें। इस भाति समस्या क निदान में व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रमुख रहता है।

सहकारी या अन्तर्विषयी शोध विधि के गुण

इस विधि की विशेषताऐ, महत्त्व एव आवश्यकता जान लेने के बाद उचित लगता है कि अन्तर्विषयी शोध विधि के गुणों पर प्रकाश डाला जाय-

इससे विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के बीच विरोध समाप्त होकर एकता सहानुभूति तथा समन्वय का विकास होता है। इस विधि के माध्यम से एक दूसरे के दृष्टिकोण को सही रूप में समझने का प्रयत्न किया जाता है। अनेक सन्देहपूर्ण स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। अनुसधान दल के सभी सदस्य प्रायोजना को अपना कार्य मान कर आगे बढते हैं।

किसी भी विषय का विस्तृत व गहन अध्ययन हो जाता है। पृथक पृथक टुकडो में शोध करने से होने वाली त्रुटियों से भी मुक्ति मिल जाती है।

विषय या शोध प्रायोजना का अध्ययन एकागी न होकर समग्र रूप म होता है। प्रायोजना के सभी पहलुओं पर आवश्यकतानुसार प्रकाश पडता है। एक से अधिक मस्तिष्को द्वारा काम करने से त्रुटि की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसकी वस्तुनिष्ठता पर निर्भर किया जा सकता है।

अनुशासनों का विशिष्ट आग्रह समाप्त हो जाता है तथा विभिन्न विषयो म समन्वय की भावना उत्पन्न होती है।

सामाजिक समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य म लिया जाता है इनका वाछित सही तथा सवागीण अध्ययन किया जाता है।

इस विधि म साधनों का अधिकतम उपयाग होता है। जा साधन या उपकरण जिनके पास होते हैं उन्ह अधिक उपयोगी कामा में लगा दिया जाता है इसमे साधनों की गतिशीलता बढती है जिससे अनुसधानकर्ता भी लाभ उठाते हैं तथा सजग रहत हैं।

व्यवहार म अन्तर्विषयी शोध विधि

अन्तर्विषयी शोध की पूर्व मौलिक आवश्यकता एक सुनिश्चित शोध प्रायोजना की रचना है जिसमें शोध के उद्दश्य तथा क्षेत्र सही सही निरूपित हो। उद्देश्य प्रयत्नों का निधारण करते हैं। तभी यह निश्चित किया जाता है कि प्रायाजना म किन किन विषयों क विशेषज्ञों की आवश्यकता पडेगी। प्रायोजना म हाथ बटाने वाले विभिन्न अनुशासना के विद्वान ऐस व्यक्ति हो जो अपने विषय क जाने माने ख्याति प्राप्त विद्वान होने के साथ ही रूढिवादी न हो। विचारो म वे इतने उदार हो कि वे दूसर विज्ञाना की पद्धतिया ग्रहण कर ले तथा उनसे हाथ मिला कर परस्पर विचार विमर्श से कार्य कर। कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) क अनुसार अनेक सीमा तक और अन्त विद्या विषय शीघ्रता से विकसित हो कर स्वतत्र अध्ययन और अनुसधान के क्षेत्र बन रहे हैं। उदाहरण के लिए गणित और भौतिकी रसायन और भूविज्ञान जीव विज्ञान और भौतिकी गणित और अर्थशास्त्र के सश्लिष्ट पाठ्यक्रम बड लाभदायक और रुचिकर होंगे। ऐसे पाठ्यक्रमों की व्यवस्था सबधित विभागा को सयुक्त रूप से करनी चाहिए जीव विज्ञान विभाग के चुने हुए आदम। ।तिकी में तथा भौतिक विभाग के चुने हुए आदमी रसायन विभाग में प्रतिनियुक्ति पर रह सकते हैं। फिर विज्ञान विभाग विशेषतया भौतिकी तथा गणित अनुसधान में रुचि रखने वाल इन्जीनियरा क घनिष्ठ सम्पर्क से अत्यत लाभान्वित हो सकत हैं आज जरूरत इस बात की है कि हमारी शिक्षा प्रणाली मे विज्ञान शिल्प विज्ञान तथा अनुशासनों को पास-पास लगाया जाये। जैसा कि ज ऐ स्ट्रेटन ने कहा है 'विज्ञान व इन्जीनियरी के विषय में सबसे बडा अपकार और कोई नहीं हो सकता है कि एक को दूसरे के विरुद्ध उकसाया जाये और दाना के बीच खाई डाली जाये। ' इसी सम्बन्ध में पी वी यस का यों कहना है- 'अन्तर्विषयी शोध क लिए विभिन्न विशषज्ञों के अनुशासन युक्त सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है जो स्वार्थ तर्क दलीलों तथा ईर्ष्या से विचलित न हो। सभी विशेषज्ञ में परस्पर एक दूसरे

महत्वपूर्ण उद्देश्य किसी तात्कालिक या दीर्घगामी समस्या का हल खोजना है। दूसरे शब्दों में यो कहा जा सकता है कि शोध निष्कर्षों का उपयोग समाज की व्याधियों को दूर करने के लिए सरलता एव सुविधा से किया जा सकता है अत निदान खोजते समय समस्या की व्यावहारिकता हा मस्तिष्क मे रहती है। मान लीजिये बढती हुई जनसख्या पर एक वृहद् शोध कार्य हाथ मे लिया जाना है विद्यालय के शिक्षक बढती हुई जनसख्या छोटे व बडे परिवार की धारणा बडी कक्षाओं म जनसख्या सम्बन्धी माल्थस के सिद्धान्त आदि पर ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं। बाल-मृत्यु तथा स्वास्थ्य सेवाओ पर चिकित्सा विज्ञानी कार्य करते हैं। बडे परिवारों की या जनसख्या क सघन घनत्व या नगरीकरण की कठिनाइयों का अर्थशास्त्री अच्छा अध्ययन कर सकते हैं। श्रम के विशिष्टीकरण की हानिया या श्रम कल्याण सबधी समस्याय, मजदूर बस्ता के सामाजिक जीवन का अध्ययन समाजशास्त्री अच्छा कर सकता है। गर्भ-निरोधक उपायों पर कार्यरत चिकित्सक अच्छा कार्य कर सकता है। इस स्थिति मे इस योजना पर विभिन्न अनुशासनों के विशषज्ञ ने मिलकर सोच-विचार कर, सही परिस्थितियों में अन्तर्मन से काम किया है तो प्राप्त निष्कर्ष जनसख्या नियत्रण पर प्रभावी रूप से लागू किए जा सकेगें। इस भाति समस्या क निदान में व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रमुख रहता है।

सहकारी या अन्तर्विषयी शोध विधि के गुण

इस विधि की विशेषताये, महत्व एव आवश्यकता जान लेने के बाद उचित लगता है कि अन्तर्विषयी शोध विधि के गुणों पर प्रकाश डाला जाय-

इससे विभिन्न विषयो के विशेषज्ञों के बीच विरोध समाप्त होकर एकता सहानुभूति तथा समन्वय का विकास होता है। इस विधि के माध्यम से एक दूसरे के दृष्टिकोण को सही रूप मे समझने का प्रयत्न किया जाता है। अनेक सन्देहपूर्ण स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। अनुसधान दल के सभी सदस्य प्रायोजना को अपना कार्य मान कर आगे बढते हैं।

किसी भी विषय का विस्तृत व गहन अध्ययन हो जाता है। पृथक पृथक टुकडों में शोध करने से होने वाली त्रुटियों से भी मुक्ति मिल जाती है।

विषय या शोध प्रायोजना का अध्ययन एकागी न होकर समग्र रूप मे होता है। प्रायोजना के सभी पहलुओं पर आवश्यकतानुसार प्रकाश पडता है। एक से अधिक मस्तिष्कों द्वारा काम करने से त्रुटि की सम्भावना समाप्त हो जाती है। इसकी वस्तुनिष्ठता पर निर्भर किया जा सकता है।

अनुशासनों का विशिष्ट आग्रह समाप्त हो जाता है तथा विभिन्न विषयो म समन्वय की भावना उत्पन्न होती है।

सामाजिक समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य मे लिया जाता है इनका वांछित सही तथा सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है।

इस विधि मे साधनों का अधिकतम उपयोग होता है। जो साधन या उपकरण जिनके पास होते हैं उन्हें अधिक उपयोगी कामो में लगा दिया जाता है इससे साधनों की गतिशीलता बढती है जिससे अनुसधानकर्ता भी लाभ उठाते हैं तथा सजग रहते हैं।

व्यवहार म अन्तर्विषयी शोध विधि

अन्तर्विषयी शोध की पूर्व मौलिक आवश्यकता एक सुनिश्चित शोध प्रायोजना की रचना है जिसमें शोध क उद्देश्य तथा क्षेत्र सही सही निरूपित हो। उद्देश्य प्रयत्नों का निधारण करते हैं। तभी यह निश्चित किया जाता हैं कि प्रायोजना म किन किन विषयों के विशेषज्ञो की आवश्यकता पडगी। प्रायोजना में हाथ बटाने वाले विभिन अनुशासनों के विद्वान एसे व्यक्ति हो जो अपने विषय के जाने माने ख्याति प्राप्त विद्वान होने के साथ ही रूढिवादी न हो। विचारो मे वे इतने उदार हो कि वे दूसरे विज्ञानो की पद्धतिया ग्रहण कर ले तथा उनसे हाथ मिला कर परस्पर विचार विमर्श से कार्य करे। कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) के अनुसार " अनेक सीमा तक और अन्त विद्या विषय शीघ्रता से विकसित हो कर स्वतत्र अध्ययन और अनुसधान के क्षेत्र बन रहे हैं। उदाहरण के लिए गणित और भौतिकी रसायन और भूविज्ञान जीव विज्ञान और भौतिकी गणित और अर्थशास्त्र के सश्लिष्ट पाठ्यक्रम बडे लाभदायक और रुचिकर होंगे। ऐसे पाठ्यक्रमों की व्यवस्था सबधित विभागो को सयुक्त रूप से करनी चाहिए जीव विज्ञान विभाग के चुने हुए आदम। ।तिकी में तथा भौतिक विभाग के चुने हुए आदमी रसायन विभाग म प्रतिनियुक्ति पर रह सकते हैं। फिर विज्ञान विभाग विशेषतया भौतिकी तथा गणित अनुसधान में रुचि रखने वाले इन्जीनियरो के घनिष्ठ सम्पर्क से अत्यत लाभान्वित हो सकते हैं आज जरूरत इस बात की है कि हमारी शिक्षा प्रणाली मे विज्ञान शिल्प विज्ञान तथा अनुशासनों को पास-पास लगाया जाये। जैसा कि जे ऐ स्ट्रेटन ने कहा है 'विज्ञान व इन्जीनियरी के विषय में सबसे बडा अपकार और कोई नहीं हो सकता है कि एक को दूसरे के विरुद्ध उकसाया जाये और दोना के बीच खाई डाली जाये। ' इसी सम्बन्ध में पी वी यग का यों कहना है- 'अन्तर्विषयी शोध के लिए विभिन्न विशेषज्ञो के अनुशासन युक्त सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है जो स्वार्थ तर्क दलीलों तथा ईर्ष्या से विचलित न हो। सभी विशेषज्ञों में परस्पर एक दूसरे

के प्रति समझदारी तथा सहानुभूति होनी चाहिए। ये बातें न होकर अन्तर्विषयी शोध में अनावश्यक खींचतान उत्पन्न होने की पूरी-पूरी सभावना रहती है। अन्तर्विषयी शोध पर कार्य करने की तीन स्थितिया हो सकती है-

1 शिक्षा शास्त्री स्वय समस्त अनुसधान कार्य कर। या केवल आवश्यकता के समय विभिन्न समस्याओ पर विशेषज्ञो से परामर्श कर ल।

2 अन्तर्विषयी शोध प्रायोजना पर कार्य उनके विशेषज्ञों द्वारा ही किया जाय। वे स्वय अपनी शोध योजनायें बनायें तथा मिलकर समन्वय कर ले। उसके बाद शोध का उपक्रम आरभ हो तथा सभी विशेषज्ञ एक मत हो समन्वय से काम कर। शोध के विभिन्न चरणो म सभी विशेषज्ञ प्रायोजना की प्रगति पर विचार करें। मिल बैठ कर, परस्पर विचार-विमर्श कर सतुलन बनायें रखें। अन्त म एक स्थान पर शोध का एकीकरण कर दिया जाये।

3 विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ अपना अनुसधान कार्य स्वतन्त्र रूप में करे और अन्त मे उनकी शोध के आधार पर समन्वय तथा एकीकरण के द्वारा उसी रूपरेखा के अनुसार कार्य किया जाये।

अन्तर्विषयी शोध प्रायोजनाओं में निदेशक को अधिक रुचि लनी चाहिए। कभी कभी उसे क्षेत्रीय अनुसधान कर्ताओ के साथ जाना चाहिये। तथा उत्तरदाताओं से मिलना चाहिए। इससे क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलेगा एव स्वय को क्षेत्र सम्बन्धी समस्याओं से जानकारी रहेगी। इससे न केवल अध्ययन को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है बल्कि इससे समय एव धन की भी बचत हो सकती है। प्राय देखा जाता है कि जो व्यक्ति प्रायोजना प्राप्त करता है वह सरकारी एव गैर सरकारी सस्थाओं से आर्थिक मदद लेता है एव स्वय उसका निदेशक बन जाता है तथा अन्य सहयोगियों को उपनिदेशक तथा अनुसधान सहायक आदि बना देता है। इससे दलीय भावना सगठित नहीं हो पाती। फिर भी निदेशक को सम्पादकीय व निरीक्षकीय भूमिकाए अदा करते हुए शोध क्षेत्र में जाने को अपनी प्रतिष्ठा को नीचे नहीं मानना चाहिए। क्षेत्रीय कार्य में भाग लेने से उसे क्रियात्मक रूप से अपना शैक्षिक अधिकार स्थापित करने में सहायता प्राप्त होगी।

अन्तर्विषयी अनुसधान विधि से शोध कार्य सम्पन्न करने के लिए, उदाहरणार्थ नदी घाटी परियोजना क्षेत्रों के निवासियों के समग्र विकास का विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। सम्पूर्ण शोध कार्य को विभिन्न शीर्षकों मे बारीकी से लिपिबद्ध कर विशिष्ट ज्ञान या कौशल या तकनीक के जानकार अनुसधानकर्ताओ को या उनके दल को सौंपा जा सकता है -

1 आधुनिकता नैतिक मूल्य तथा सामाजिक परिवर्तना के प्रति किशारों की अभिवृति	- समाजविज्ञानी
2 सामाजिक आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में स्कूली बच्चो की शैक्षिक सम्प्राप्ति	- मनावैज्ञानिक
3 जन्मदर में परिवर्तन कुपोषण तथा राग	- चिकित्सक
4 विभिन्न आयु स्तरो पर मातृभाषा का शब्द भण्डार	- शिक्षाधिकारी
5 अन्तर्जैवीय तत्व तथा सामाजिक दूरी	- जैव विज्ञानी/मनावैज्ञानिक
6 मतदान या व्यवहार मे प्रजातन्त्र	- राजनीतिशास्त्री
7 भू स्वामित्व जोत तथा राजस्व	- भूगोलवेता/भूविज्ञानी
8 पारिवारिक बजट बचत तथा ग्रामीण बेरोजगारी	- अर्थशास्त्री
9 लोकगीत लाकनृत्य तथा लाक संस्कृति	- समाज विज्ञानी/नृशास्त्री
10 निवास की सुनिर्धारित वस्तुकला तथा सस्ते मकान बनाने के साधन व तरीक	- अभियान्त्रिक
11 शिशु पालन की विधियो तथा बच्चों का स्वास्थ्य	-चिकित्सा स्वास्थ्य विनानी
12 भूमि विवाद तथा इसी प्रकार के विवादों के नियमन की विधिया	- वकील
13 कल्याणकारी गतिविधियों का सर्वेक्षण	- समाज सुधारक/सामाजिक कार्यकर्ता

ऊपर बताये सभी 13 दल एक साथ एक ही वृहद् कार्य योजना पर शोधकार्य करेगे। जब जहा जैसी आवश्यकता हागी वे मिल बैठ कर बात करेगे विचार विमर्श करेगे विवाद के बिन्दु पर विचारो का भूल रूप से आदान प्रदान हागा। ऐसी बैठक दल सक्लन सारणीकरण अकन विश्लेषण तथा प्रतिवेदन लेखन के समय आवश्यकतानुसार हुआ करगी।

शोध के लिए कुछ और विषय सुझाये जा सकते हे-

* पिछडी जातिया के कुपोषण तथा बीमारी सम्बन्धी समस्यायें
* पचायती राज का नगरीय प्रशासन व्यवस्था पर प्रभाव
* उद्यम तथा श्रमिक सघों की शिकायता का निराकरण
* ग्रामीण बेरोजगारी प्रकृति गम्भीरता विस्तार विकास तथा सम्भावित उपचार
* प्राथमिक कक्षाओ के विद्यार्थिया का नैतिक विकास
* इन्दिरा गाधी/महात्मा गाधी के बारे में विद्यार्थियों क ज्ञान का विस्तार तथा मात्रा

* किसी गाव का समग्र अध्ययन
* व्यावसायिक शिक्षा का इतिहास
* सहयोगी तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक व्यवहार का अध्ययन
* आम चुनाव म जीती महिला प्रत्याशिया का समग्र अध्ययन
* प्रशासन में अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति तथा महिला प्रत्याशिया का समग्र अध्ययन
* कैदिया के असामाजिक व्यवहार का अध्ययन
* पचायत चुनाव का गहन एव समग्र अध्ययन

अन्तर्विषयी शोध विधि की परिसीमाए -

अन्तर्विषयी अनुसधान म कई विषयों का मिश्रण होता हैं तथा एक प्रायोजना म कई शोध सहायक तथा शोधकर्ता होते हैं। अत यह जरूरी होता है कि वे सब प्रायोजना से सम्बन्धित मूलभूत सज्ञाओ तथा अवधारणाओं से परिचित हों तथा शोध प्रायोजना के उद्देश्या का ज्ञान हो। वे अपने विचार प्रकट करने को स्वतन्त्र ही न हो बल्कि ऐसा करने के लिए उन्ह प्रोत्साहन मिल तथा वे अपने आपको दल प्रायोजना से सम्बद्ध समझें।

एक प्रायोजना पर सफल कार्य के लिए वैयक्तिक विशेषताओ के अतिरिक्त और भी कई तत्वा को ध्यान में रखना पडता है। उचित समन्वय बनाये रखने के लिए अन्तर्विषयी शोध दल में प्रत्येक सदस्य को एक दूसरे के विषय का कम से कम प्रारम्भिक ज्ञान अवश्य रखना चाहिए और फिर यह भी जरूरी नहीं है कि सभी प्रकार की समस्याओ का अध्ययन अन्तर्विषयी शोध विधि द्वारा ही हो। इस विधि से केवल सामान्य तथा व्यावसायिक समस्याओ पर ही सर्वेक्षण द्वारा अनुसधान किया जा सकता है। गहन अध्ययन तथा सैद्धान्तिक विवेचन एव सभी परिस्थितियों में योग्यताओ की बहुलता का समाकलन गहन तथा विस्तृत अन्वेषण अथवा दैनिक कार्यों मे विनियोजन अन्तर्विषयी अनुसधान विधि द्वारा अधिक उपयुक्त होता है।

अन्तर्विषयी शोध मे प्राय अधिक धन खर्च होता है जिसके अभाव में न तो तकनीकी शोध हेतु सहायता और न विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्ति ही प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी प्रकार इस तरह के शोध में समय का भी बहुत महत्व होता है बहुत थोडे समय में वृहद् शोध कार्य एक बडे शोध दल द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। सभी अनुशासनो के विशेषज्ञ एक अमुक समय ही उपलब्ध हो सकेंगे इसमें भी सन्देह बना रहता है शोध आयोजना वृहत् स्तर पर होने म व्यय होता है। अत आर्थिक दृष्टि से सरकारी तथा गैर सरकारी सस्थाओं पर निर्भर रहना पडता है और यही कारण है

कि कभी कभी आर्थिक समस्या भी इस प्रकार के अनुसधान म बाधा उत्पन्न कर दती है। सरकारी एव गैर सरकारी सस्थाओं द्वारा आर्थिक सहायता नहीं मिली तो शोध कार्य की गति धीमी हो जाती है आर कभी कभी तो प्रायोजना पूरी ही नहीं हो पाती।

प्राय होता यह ह कि अनुसधान दल म जिन विभिन्न विशेषज्ञों का चयन होता है वह चयन सही नहीं हा पाता और उसकी वजह से शोध प्रायोजनाएँ असफल हो जाती हैं। अत एक अनुसधान दल म प्रत्येक सदस्य को अपन क्षेत्र मे विशेषज्ञ या ज्ञाता हाना चाहिए। स्पष्ट है कि ये अपने दृष्टिकोण स सोचते हैं आर उनम जितना ज्यादा हो विभिन्न विज्ञानों के अन्त सम्बन्धों तथा उनके भिन्न-भिन्न दृष्टिकाणो को सीखन एव समझने की इच्छा हानी चाहिए। एसा न होन पर प्राय एक सर्वसम्मत निर्णय लेने में दरी हो जाती है तथा कभी कभी मतभेद भी हो जाते हैं। अत ऐसे समय पर विशेषज्ञो का आपसी मतभेद भुला कर बाह्यिक सद्भाव दिखाना चाहिए जिससे शोध कार्य सही दिशा बनाय रखे सभी को आपस में सहयोग करना चाहिए।

कभी कभी अन्तर्विषयी शाध में दल सदस्या के मध्य सघर्ष से मतैक्य न होने से हानि पहुँचती है जबकि दल में एसे सदस्य होते हैं जिनकी सामाजिक सास्कृतिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि भिन्न हाती है जैसे भाषा धर्म तथा विभिन्न आर्थिक वग। ऐसे दल म समायाजन मे कठिनाई उत्पन्न होती है दल को इन बाता से ऊपर रह कर कार्य करना चाहिए। दल की सफलता क लिए सगठन एक मुख्य बात है। शोध दल के सरल सगठन के लिए शैक्षणिक प्रतिमान (एकेडेमिकनाार्म) शक्ति अथवा तन से अधिक महत्वपूर्ण ह। नौकरशाही ढाचे म लागा से अपने उच्चाधिकारिया की आज्ञा (बिना किसी प्रकार का प्रश्न किये) मानने की अपेक्षा की जाती है तथा यह जरूरी होता है कि व अपने उच्चाधिकारिया के विचारा स हमेशा सहमत हो। लेकिन यह अन्तर्विषयी शोध में नहीं चल सकता। यहा पर उच्च पद पर कार्यरत व्यक्ति को नौकरशाही की तरह बास (Boss) न मानकर उसे एक विशेषज्ञता प्राप्त विद्वान व अनुभवी व्यक्ति माना जाय। लेकिन इसके साथ ही यह पद सोपान में यदि दल का कोई सदस्य नीचे के पद पर हो तो भी उसके विचारो का उसके ज्ञान एव अनुभव का आदर करना चाहिए उनको यह कभी अनुभव न हाने देना चाहिए कि वे आलाचना से बाहर हैं। वे भी उतने ही उत्तरदायी हैं जितने कि शोध प्रायोजना के निदेशक।

इस विधि में शोध प्रायोजना के असगठित तथा अकेन्द्रित होने का डर रहता है। प्रत्येक विशिष्ट विषय की अपनी अनुसधान विधि होती है जो उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। विभिन्न पद्धतिया के समन्वय व

सहयोग से बनी शोध प्रायोजना कहा तक वस्तुनिष्ठ व वैज्ञानिक रह सकेगी? यह सन्देहास्पद है।

अन्तर्विषयी शोध अध्ययन दल मे कई स्तर के कार्यकर्ता होते हैं जैसे निदेशक शोध सहायक सर्वेक्षणकर्ता आदि। महत्वपूर्ण यह है कि ये सब एक दूसरे क प्रति समान दृष्टि से देख तथा यदि उच्च पदासीन व्यक्ति को सम्मान दिया जाता है तो वह इसलिए नहीं कि उस पर कोई जोर जबरदस्ती है बल्कि इस लिए कि वह व्यक्ति विशेषज्ञ एव अनुभवी है। यह सम्मान की भावना अपने आप उत्पन्न होती है न कि किसी दबाव से।

यह स्पष्ट है कि एक दल समन्वयात्मक परिणाम प्राप्त करसकता है जिसम ऐसी एकता हो जो विविध प्रकार के विशेषज्ञों के एकत्रित होने से प्राप्त नहीं हो सकती है। परन्तु यहा इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न सिद्धान्त एव कार्य पद्धति स सम्बन्धित है। अत दल में एक ऐसा विशेषज्ञ होना चाहिए जो समस्या की गहराई तक जा सके एव अपने सहयोगियो को भी समझाने मे सफल हो सके, उन्ह सन्ताप दे सके। यह केवल उस अध्ययन तक ही सीमित नहीं होगा बल्कि भविष्य में होने वाले शोध कार्यों के लिए भी एक आधारभूत प्रलेख हो सकेगा।

अन्तविषयी शोध विधि में समस्या का सही हल निकालने के स्थान पर विभिन्न अनुशासनो में समन्वय स्थापित करने पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। सम्भव है अन्तविषयी शोध प्रायोजना के लालच में इतने परिवर्तन करने पडे कि वे उसका स्वरूप ही बदल दे उसकी मूल आत्मा ही न रहे तथा सही निष्कर्ष निकालना ही असम्भव हो जाये।

* अन्तर्विषयी शोध विधि से केवल सामान्य तथा व्यावहारिक समस्याओ पर सर्वेक्षण द्वारा अनुसधान किया जाता है। गहन अध्ययन तथा सैद्धान्तिक विवेचन इसके द्वारा सभव नहीं है।
* इस विधि में शोध प्रायोजना के असगठित तथा अकेन्द्रित होने का डर रहता है। प्रत्येक विशिष्ट विषय की अपनी अनुसधान पद्धति होती है जो उसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। विभिन्न पद्धतियो के समन्वय व सहयोग से बनी शोध प्रायोजना कहा तक वस्तुनिष्ठ व वैज्ञानिक रह सकेगी? यह सन्देह-पूर्ण है।
* अन्तविषयी शोधविधि में समस्या का सही हल निकालने के स्थान पर विभिन्न अनुशासनो में समन्वय स्थापित करने पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। सभव है अन्तर्विषयी शोध प्रायोजना के लालच में इतने परिवतन करने पड कि वे इसका स्वरूप ही बदल दें उसकी मूल आत्मा ही न रहे तथा सही निष्कर्ष निकालना ही असभव हो जाये।

उपसंहार

अन्तर्विषयी शोध विधि के दोष एव सीमाय पढ लेने के बाद भी इस बात से मना नहीं किया जा सकता है कि यह विधि समाज विज्ञानो में प्रयोग नहीं की जा सकती या हानिप्रद है। सावधानी सजगता आग्रह से मुक्त होकर, निष्पक्ष रह कर कार्य किया जाये तो इस विधि की उपयोगिता का लाभ उठाया जा सकता है। इसकी व्यावहारिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। वैसे भी भारत म पचवर्षीय योजनाओं के लागू होने के बाद से अन्तर्विषयी शोध का महत्ता दी जाने लगी है। "विश्वविद्यालय के अनुसधान के स्तर म सुधार के लिए" कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) का कहना है कि" यह आवश्यक है कि टोली कार्य (टीम वर्क) का विकास हो। इसकी आवश्यकता विभागा के अन्दर तथा समूचे विश्वविद्यालय क्षेत्र में स्वस्थ अनुसधान के वातावरण और अनुसधान के विकास के लिए है। टोली कार्य वास्तविक रूप म हाना चाहिए ।" इसके अलावा प्रायोजना में जिस सदस्य का जो भी योगदान रहा हो, उसे उसका पूरा श्रेय मिलना चाहिए। यह नहीं कि काम सबने किया तथा श्रेय कवल प्रायोजना निदेशक को मिले। व्यवहार में देखा जाता है कि सामाजिक विज्ञानों में वृहद् शोध कार्यों मे कई लोग अच्छे उच्च स्तर का कार्य करते हैं पर उनको अपने इस कार्य का श्रेय नहीं मिलता तथा अनुपयुक्त रूप से प्रायोजना निदेशक का श्रेय दिया जाता है जोकभी एक पक्ति नहीं लिखता तथा अनुसधान क्षेत्र को भी जाकर नहीं दखता। अच्छा हो इस तरह की सकीणताओं का अन्तर्विषयी शोध में प्रवेश न हो।

◻

समाज विज्ञानो मे अनुसधान की स्थिति

स्वर्गीय आचार्य विनोबा भावे ने आज की शिक्षा व्यवस्था पर असन्तोष व्यक्त करते हुए एक बार कहा था कि आज की शिक्षा व्यवस्था म 33 या 36 प्रतिशत अक या श्रेय प्राप्त करने वाले विद्यार्थी उत्तीर्ण होते है। इसका अर्थ यह भी बताया जा सकता है कि न्यूनाधिक रूप से 10 में से साढे तीन या चार अक प्राप्त कर लेना उत्तीर्ण होने के लिए ठीक है। यदि इसे ठीक मान लिया जाये तो अब ये कल्पना कीजिए कि एक व्यक्ति भूखा है तथा वह 10 रोटिया खा सकता है। अब यदि कोई भोजन कराने वाला उसे 4 रोटी तो ठीक से सेकी या पकी हुई परोस दे तथा शेष 6 रोटिया कच्ची ही बिना पकी परोस दे तो उस भूखे व्यक्ति का स्वास्थ्य कैसा होगा- उसकी मानसिक स्थिति कैसी होगी? आप स्वय अनुमान लगा सकते हैं। क्या अनुसधान के क्षेत्र में इस दृष्टि से विचार नहीं किया जा सकता? सम्भवत अनुसधान की भी यही स्थिति है। विनोबा जी के उदाहरण में अतिशयोक्ति हो सकती है पर यह भी निश्चित है कि कहीं न कहीं तो सीमा रेखा खींचनी ही होगी।

सत्य को जानने के लिए अनुसधान एक वैज्ञानिक विधि है अनुसधान परीक्षण की अन्य तकनीकों के समान ही सगत विधिवत एव उपयुक्त तकनीक है जो कल्पनाशीलता सृजनात्मकता तथा दक्षतापूर्ण तकनीको के प्रयोग पर आश्रित हैं। अनुसधान का तात्पर्य सत्य की खोज नये तथ्यो की जानकारी तथा पूर्व से ज्ञात निष्कर्षों का नई स्थितियों में नया या सशोधित अर्थ लगाना है या उसे प्रकाश में लाना है जो तर्कों पर आधारित हो स्वीकार्य मानदण्डों पर खरा उतरता हो। इस भाति अनुसधान शोधकर्ता का मानस विकसित करता है उसके ज्ञान को पैना बनाता है तथा उसकी सूचनाओ का विस्तार करता है। इससे तथ्यों के बारे मे समाज की अन्त क्रियाओं के बारे मे उसकी समझबूझ बढती है तथा वह किसी भी घटना या तथ्य के बारे में अधिक पारखी बनता है। अर्थपूर्ण अनुसधान के लिए यही मात्र आवश्यक नहीं है कि शोधकर्ता तर्कों की उलझनो से ऊपर उठे वरन् उसे मानव के समग्र कल्याण की दृष्टि से भी सोचना है।

अनुसधान एक श्रम साध्य तथा कठिन कार्य है। इसके आरभ होने

से लेकर समाप्त होने तक अनुसधान कर्ता को सतत सजग रह कर काम करना होता है सत्य- सग्रह के लिए प्रयत्नशील रहना पडता है। इसलिए जरूरी हैं कि वह अपने पूर्व निर्धारित मार्ग से कठिनाई या बाधा आन पर डिग न जाये उद्देश्य से जरा सी भटकन अनुसधान क स्तर का निश्चित रूप से गिरा देती है। जिस प्रकार अपनी पैदावार से मात्र किसान ही सम्बन्धित नहीं है वरन् उसकी पैदावार से बनिया सहयोगी पडौसी या खती में सहयोग करने वाले राजस्व वसूली वाले कर्मचारी आदि सभी सम्बन्धित है जुडे हुए हैं। उसी भाति मोटे रूप से समाज उससे जुडा हुआ है। कल कारखानो के उत्पाद की भी यही स्थिति है, उससे न केवल मालिक या साहसी या प्रबधक या श्रमिक हा सम्बन्धित है बल्कि समाज का हर सदस्य सम्बन्धित ह व इसस सरोकार रखत हैं। इसी भाति अनुसधान कर्ता क कार्य स प्राप्त निष्कर्षों से अन्तिम फलों से पूरा समाज सरोकार रखता ह तथा वे उससे जुड हुए हैं। इसीलिए अनुसधान कता का यह भा निरन्तर दिमाग म रखना चाहिए कि सिद्धात या काइ ज्ञान का तब तक कोई महत्व नहीं है जब तक उसका व्यावहारिक पक्ष सबल तथा स्पष्ट न हा साथा समाज क उत्थान प्रगति एव कल्याण म याग दें इसलिए अनुसधान का विशेष बल सिद्धातो के व्यावहारिक पक्ष पर हा रहता है।

शोध मार्गनिर्देशको को कोठारी शिक्षा आयोग (1964-66) की टिप्पणियाँ अवश्य याद रखना चाहिए। आयाग क अनुसार कुछ प्रमुख कालेजो के अतिरिक्त सम्बद्ध कालेजों में अनुसधान की वास्तविक सुविधायें या तो है ही नहीं या अत्यन्त सीमित है। शैक्षिक शोध अब भी शैशवावस्था म है। एम एड के शोध निबन्धो म कदाचित् ही अनुसधान कहलाने की योग्यता होती है।[1] । पी एच डी के स्तर पर यह कार्यरत विधितत्र मे कमजोर रहता है।[2] इसी सदर्भ मे प्रो रईस अहमद ने इक्कीस विश्वविद्यालय तथा भारतीय प्रौद्योगिकी सस्थाओ के अध्ययन से निष्कर्ष प्राप्त किया कि विद्यार्थियों को अनपेक्षित रूप से उच्च श्रेणी या गुण या अक दिये जाते है निम्न स्तरीय शोध ग्रन्थ पी एच डी के लिए स्वीकार किये जाते है सबधो की यहाँ वहाँ से व्यवस्था कर ली जाती है। आन्तरिक मूल्याकन म बेहिसाब अधिक अक दिये जाते हैं। पी एच डी के छात्रों के प्रवेश के मार्गदर्शक सिद्धान्ता का पालन नही किया जाता है।[3]

(1) शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन (1964 66) शिक्षा मत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली दि.मैनेजर पब्लिकेशन्स डिवीजन (हिन्दी सस्करण) 1968 पृष्ठ 354
(2) वही पृष्ठ 366
(3) दि हिन्दू जनवरी18 1994

मूलत जो कारण शिक्षा के स्तर गिरने के लिए उत्तरदायी बताये जाते हैं न्यूनाधिक रूप से ये सभी कारण अनुसधान के गिरते स्तर के लिए भी उत्तरदायी माने जा सकते है। जिस प्रकार हर कोई उच्च शिक्षा पाना चाहता है उद्देश्यहीन भीड विश्वविद्यालय या महाविद्यालय मे प्रवेश की इच्छुक है-इसी भाति हर कोई शोध करने को तत्पर है। प्रथम तो उनको भविष्य सुरक्षित नही लग रहा है दूसरे वे अनुसधान के विद्यार्थी बन कर जीविका की खोज को दो ढाई या तीन वर्ष टाल रहे है। अनुसधान के विद्यार्थी बनने के पीछे उनका एक निहित स्वार्थ भी है और वह है नौकरी न सही तो छात्रवृत्ति ही सही। आज की स्थितिया म अनुसधान करने के पीछे एक और महत्वहीन आधार यह भी बताया जा सकता है कि वे वरिष्ठ छात्र के रूप म विश्वविद्यालय या महाविद्यालय मे दादागिरी करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि इन विचारो से या पृष्ठभूमि म अनुसधान करने वाला पूरे मन से काम नहीं करेगा उनका उद्देश्य येनकेन प्रकारेण उपाधि प्राप्त करना रहेगा। इन स्थितियो मे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अनुसधान का स्तर यदि गिरे तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

पिछले दशक मे विश्वविद्यालयो या महाविद्यालयों में व्याख्याता पद के आप्रवेशन क लिए अनुसधान उपाधि की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनिवार्यता से लागू किय जाने से भी अनुसधान का स्तर गिरा है। कारण कि हर कोई व्याख्याता बनने का इच्छुक येन-केन प्रकारेण शॉर्टकट से भी उपाधि प्राप्त करने म जुट जाता है। इससे पी एच डी के विद्यार्थियों का मार्गदर्शन तथा निर्देशन करने वाले शिक्षाविदो के सामने प्रवेशार्थियों की अनपेक्षित भीड इकट्ठी हो गई। प्राप्त समय को तो आप बढा नही सकते फलत वे सभी

करते है वे शार्टकट भी अपनाते है आप मर विद्यार्थी को पास कीजिये बदल में मैं आपके विद्यार्थी को पास करता हू या करवाता हूँ। यह होड की प्रवृति कइ बार सकाया तथा विश्वविद्यालयो मे भी दखी जाती है। इस मनोवृत्ति से भी अनुसधान कार्य का स्तर गिरा हैं।

इस तथ्य पर एक अन्य दृष्टिकोण स भी विचार किया जाना चाहिए। आप्रवसन के लिए आपके सामने तीन आशार्थी है-

अ-हाई स्कूल या सैकेण्डरी स्कूल से अधिस्नातक तक की सभी पराक्षाए प्रथम श्रेणी स उत्तार्ण

आ-हाई स्कूल या सैकण्डरी स्कूल स अधिस्नातक तक का सभी पराभाए सामान्य द्वितीय श्रणी से उत्तीर्ण+पा एच डी

ई-हाइ स्कूल या सैकेण्डरी स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी हायर सैकेण्डरी प्रथम स्नातक परीभा तृताय तथा अधिस्नातक द्वितीय श्रणी मे उत्तीर्ण+पी एच डी

इन आशार्थियों की याग्यताओं से इनकी गुणवत्ता स्वय स्पष्ट है। व्याख्याता पद क लिए पी एच डी की अनिवार्यता दूसरे तथा तीसर आशार्थी को व्याख्याता तो बनवा दगी पर क्या वे सभी परीक्षाऐं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण आशार्थी से श्रेष्ठ है? यह सयाग ही माना जाना चाहिए कि सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करन वाला आशार्थी पी एच डी की ओर ध्यान न दे। पर उसकी श्रष्ठता पर सन्देह किया जाना समीचीन नहीं लगता।

पाश्चात्य ॰शा म भारतीय शोध उपाधि का गिरता हुआ स्तर देखकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अधिस्नातक तथा पी एच डी के बीच में एक सत्रीय (या कहीं-कहीं अशकालीन दा सत्रीय भी) एम फिल पाठ्यक्रम आरभ करने की अनुशसा की है। पर यू जी सी की सभी अनुशसाये मानने के लिए सभी विश्वविद्यालय अनिवार्यत बाध्य नहीं है। यही कारण है कि कई विश्वविद्यालयों म कई विषयों मे अभी तक एम फिल पाठ्यक्रम का विकास ही नहीं किया गया है यहा अभी तक अधिस्नातक परीक्षा पास विद्यार्थी ही पी एच डी के लिए पात्र माने जाते है। एम फिल पाठ्यक्रम से शाध के स्तर में सुधार की आशा की गई थी पर उसे भी विश्वविद्यालय की मनमानी ने कार्यरूप में परिणत नहीं होने दिया।

समाज विज्ञानों मे भौतिक विज्ञानो की तरह प्रयाग नहीं किये जा सकते कारण कि समाज विज्ञानी जिन पर प्रयोग करते है वे निर्जीव वस्तुएँ नहीं है जिन बालकों या विद्यार्थियों पर प्रयोग किया गया है या जिनसे सूचनाएँ प्राप्त की गई हैं वे प्रतिवेदन पहुँचने तक परिवर्तित हो जाते है-बालक का मन/विचार हर क्षण बदलता है। इसलिए एक बार प्राप्त किया गया निष्कर्ष हर समय हर बालक पर हर स्थिति में समान रूप से लागू हागा ऐसी

मूलत जो कारण शिक्षा के स्तर गिरने के लिए उत्तरदायी बताये जाते हैं न्यूनाधिक रूप स ये सभी कारण अनुसधान के गिरते स्तर के लिए भी उत्तरदायी माने जा सकते है। जिस प्रकार हर कोई उच्च शिक्षा पाना चाहता है उद्देश्यहीन भीड विश्वविद्यालय या महाविद्यालय मे प्रवेश की इच्छुक है-इसी भाति हर काई शोध करने को तत्पर है। प्रथम तो उनको भविष्य सुरक्षित नही लग रहा है दूसरे वे अनुसधान के विद्यार्थी बन कर जीविका की खोज को दो ढाई या तीन वर्ष टाल रहे है। अनुसधान के विद्यार्थी बनने के पीछे उनका एक निहित स्वार्थ भी है और वह है नौकरी न सही तो छात्रवृत्ति ही सही। आज की स्थितिया में अनुसधान करने के पीछे एक और महत्वहीन आधार यह भी बताया जा सकता है कि वे वरिष्ठ छात्र के रूप म विश्वविद्यालय या महाविद्यालय म दादागिरी करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि इन विचारो से या पृष्ठभूमि म अनुसधान करने वाला पूरे मन से काम नहीं करेगा उनका उद्देश्य येनकेन प्रकारेण उपाधि प्राप्त करना रहेगा। इन स्थितियों म सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अनुसधान का स्तर यदि गिरे तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

पिछले दशक म विश्वविद्यालयो या महाविद्यालयो में व्याख्याता पद के आप्रवशन के लिए अनुसधान उपाधि की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनिवार्यता से लागू किये जाने से भी अनुसधान का स्तर गिरा है। कारण कि हर कोई व्याख्याता बनने का इच्छुक येन-केन प्रकारेण शॉर्टकट से भी उपाधि प्राप्त करने मे जुट जाता है। इससे पी एच डी के विद्यार्थियों का मार्गदर्शन तथा निर्देशन करने वाले शिक्षाविदो के सामने प्रवेशार्थियों की अनपेक्षित भीड इकट्ठी हो गई। प्राप्त समय को तो आप बढा नही सकते फलत वे सभी का सही रूप में उपयुक्त मार्गदर्शन नही कर सकते और न ही स्पष्ट है कि भीड म सम्मिलित सबके सब विद्यार्थी पी एच डी के लिए पात्र हो सकते हैं। इसके सिवाय शोध प्रबध की रूपरेखा अनुमोदित होते ही शोध प्रबन्ध लेखन का कार्य भी तय हो जाता है। जो शोधकर्ता रूपरेखा ही तैयार नहीं कर सके तथा उसमें बार-बार सशोधन होता रहे इस स्थिति मे शोध प्रबन्ध लेखन बडा दुरूह हो जाता है इसलिए उसे इस प्रविधि में निष्णात होना चाहिए। यदि कार्य प्रणाली या योजना ही ठीक न बने तो कई कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इसलिये इन स्थितियो से बचना श्रेयष्कर रहता है।

व्याख्याता की पदोन्नति प्रवाचक के पद पर होती है इस पदोन्नति के लिए मानदण्ड में अपने मार्गदर्शन में पी एच डी प्राप्त छात्रों की सख्या भी एक है। शोध निदेशक अपनी पदोन्नति की आशा मे अधिकाधिक पी एच डी करवाने क काम में जुट जाते हैं वे अपने साथियो से आगे बढने की होड

करते है वे शार्टकट भी अपनाते है आप मेरे विद्यार्थी को पास कीजिये बदले मे मैं आपके विद्यार्थी को पास करता हू या करवाता हूँ। यह होड की प्रवृत्ति कई बार सकायो तथा विश्वविद्यालयो मे भी देखी जाती है। इस मनोवृत्ति से भी अनुसधान कार्य का स्तर गिरा है।

इस तथ्य पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जाना चाहिए। आप्रवेशन के लिए आपके सामने तीन आशार्थी है-

अ-हाई स्कूल या सैकेण्डरी स्कूल से अधिस्नातक तक की सभी परीक्षाए प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण

आ-हाई स्कूल या सैकेण्डरी स्कूल से अधिस्नातक तक की सभी परीक्षाए सामान्य द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण+पी एच डी

ई-हाई स्कूल या सैकेण्डरी स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी हायर सैकेण्डरी प्रथम स्नातक परीक्षा तृतीय तथा अधिस्नातक द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण+पी एच डी

इन आशार्थियो की योग्यताओ से इनकी गुणवत्ता स्वय स्पष्ट है। व्याख्याता पद के लिए पी एच डी की अनिवार्यता दूसरे तथा तीसरे आशार्थी को व्याख्याता तो बनवा देगी पर क्या वे सभी परीक्षाऐं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण आशार्थी से श्रेष्ट है? यह सयोग ही माना जाना चाहिए कि सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाला आशार्थी पी एच डी की ओर ध्यान न दे। पर उसकी श्रेष्ठता पर सन्देह किया जाना समीचीन नहीं लगता।

पाश्चात्य देशो मे भारतीय शोध उपाधि का गिरता हुआ स्तर देखकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने अधिस्नातक तथा पी एच डी के बीच में एक सत्रीय (या कहीं-कहीं अशकालीन दो सत्रीय भी) एम फिल पाठ्यक्रम आरभ करने की अनुशसा की है। पर यू जी सी की सभी अनुशसाये मानने के लिए सभी विश्वविद्यालय अनिवार्यत बाध्य नहीं है। यही कारण है कि कई विश्वविद्यालयों में कई विषयों मे अभी तक एम फिल पाठ्यक्रम का विकास ही नहीं किया गया है वहा अभी तक अधिस्नातक परीक्षा पास विद्यार्थी ही पी एच डी के लिए पात्र माने जाते है। एम फिल पाठ्यक्रम से शोध के स्तर मे सुधार की आशा की गई थी पर उसे भी विश्वविद्यालय की मनमानी ने कार्यरूप में परिणत नहीं होने दिया।

समाज विज्ञानों मे भौतिक विज्ञानो की तरह प्रयोग नहीं किये जा सकते कारण कि समाज विज्ञानी जिन पर प्रयोग करते है वे निर्जीव वस्तुएँ नहीं है जिन बालकों या विद्यार्थियो पर प्रयोग किया गया है या जिनसे सूचनाएँ प्राप्त की गई हैं वे प्रतिवेदन पहुँचने तक परिवर्तित हो जाते है-बालक का मन/विचार हर क्षण बदलता है। इसलिए एक बार प्राप्त किया गया निष्कर्ष हर समय हर बालक पर हर स्थिति मे समान रूप से लागू होगा ऐसी

मूलत जो कारण शिक्षा के स्तर गिरने के लिए उत्तरदायी बताये जाते हैं न्यूनाधिक रूप से वे सभी कारण अनुसधान के गिरते स्तर के लिए भी उत्तरदायी माने जा सकते है। जिस प्रकार हर कोई उच्च शिक्षा पाना चाहता है उद्देश्यहीन भीड विश्वविद्यालय या महाविद्यालय मे प्रवेश की इच्छुक है-इसी भाति हर कोई शोध करने को तत्पर है। प्रथम तो उनको भविष्य सुरक्षित नही लग रहा है दूसरे वे अनुसधान के विद्यार्थी बन कर जीविका की खोज को दो ढाई या तीन वर्ष टाल रहे है। अनुसधान के विद्यार्थी बनने के पीछे उनका एक निहित स्वार्थ भी है और वह है नौकरी न सही तो छात्रवृत्ति ही सही। आज की स्थितियो में अनुसधान करने के पीछे एक और महत्त्वहीन आधार यह भी बताया जा सकता है कि वे वरिष्ठ छात्र के रूप मे विश्वविद्यालय या महाविद्यालय मे दादागिरी करना चाहते हैं। स्पष्ट है कि इन विचारो से या पृष्ठभूमि मे अनुसधान करने वाला पूरे मन से काम नहीं करेगा उनका उद्देश्य येनकेन प्रकारेण उपाधि प्राप्त करना रहेगा। इन स्थितियो मे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि अनुसधान का स्तर यदि गिरे तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

पिछले दशक मे विश्वविद्यालयो या महाविद्यालयों में व्याख्याता पद के आप्रवशन के लिए अनुसधान उपाधि की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनिवार्यता से लागू किय जाने से भी अनुसधान का स्तर गिरा है। कारण कि हर कोई व्याख्याता बनने का इच्छुक येन-केन प्रकारेण शॉर्टकट से भी उपाधि प्राप्त करने मे जुट जाता है। इससे पी एच डी के विद्यार्थियों का मार्गदर्शन तथा निर्देशन करने वाले शिक्षाविदों के सामने प्रवेशार्थियों की अनपेक्षित भीड इकट्ठी हो गई। प्राप्त समय को तो आप बढा नही सकते फलत वे सभी का सही रूप में उपयुक्त मार्गदर्शन नही कर सकते और न ही स्पष्ट है कि भीड मे सम्मिलित सबके सब विद्यार्थी पी एच डी के लिए पात्र हो सकते हैं। इसके सिवाय शोध प्रबध की रूपरेखा अनुमोदित होते ही शोध प्रबन्ध लेखन का कार्य भी तय हो जाता है। जो शोधकर्ता रूपरेखा ही तैयार नहीं कर सके तथा उसमें बार-बार सशोधन होता रहे, इस स्थिति में शोध प्रबन्ध लेखन बडा दुरूह हो जाता है इसलिए उसे इस प्रविधि में निष्णात होना चाहिए। यदि कार्य प्रणाली या योजना ही ठीक न बने तो कई कठिनाइयो का सामना करना पडता है। इसलिये इन स्थितियो से बचना श्रेयष्कर रहता है।

व्याख्याता की पदोन्नति प्रवाचक के पद पर होती है इस पदोन्नति के लिए मानदण्ड मे अपने मार्गदर्शन में पी एच डी प्राप्त छात्रों की सख्या भी एक है। शोध निर्देशक अपनी पदोन्नति की आशा मे अधिकाधिक पी एच डी करवाने के काम में जुट जाते हैं वे अपने साथियो से आगे बढने की होड

करते हैं ये शार्टकट भी अपनाते है आप मेरे विद्यार्थी को पास कीजिये वदले म मैं आपके विद्यार्थी को पास करता हू या करवाता हूँ। यह होड की प्रवृत्ति कइ बार सकाया तथा विश्वविद्यालया मे भी देखी जाती है। इस मनोवृत्ति स भी अनुसधान कार्य का स्तर गिरा हैं।

इस तथ्य पर एक अन्य दृष्टिकोण से भी विचार किया जाना चाहिए। आप्रवशन के लिए आपक सामन तीन आशार्थी है–

अ-हाई स्कूल या सैकेण्डरी स्कूल से अधिस्नातक तक की सभी पराक्षाए प्रथम श्रेणी स उत्तीर्ण

आ-हाई स्कूल या सकण्डरी स्कूल से अधिस्नातक तक की सभी परीक्षाए सामान्य द्वितीय श्रणी से उत्तीर्ण+पी एच डी

इ-हाइ स्कूल या सैकण्डरी स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी हायर सकेण्डरी प्रथम स्नातक परीक्षा तृतीय तथा अधिस्नातक द्वितीय श्रणी मे उत्तीर्ण+पी एच डी

इन आशार्थियों की याग्यताओं से इनकी गुणवत्ता स्वय स्पष्ट है। व्याख्याता पद क लिए पी एच डी की अनिवार्यता दूसरे तथा तीसर आशार्थी को व्याख्याता तो बनवा देगी पर क्या वे सभी परीक्षाऐं प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण आशार्थी से श्रेष्ठ है? यह सयाग ही माना जाना चाहिए कि सभी परीक्षाएँ प्रथम श्रणी म उत्तीर्ण करने वाला आशार्थी पी एच डी की ओर ध्यान न दे। पर उसकी श्रेष्ठता पर सन्देह किया जाना समीचीन नहीं लगता।

पाश्चात्य देशा में भारतीय शोध उपाधि का गिरता हुआ स्तर देखकर विश्वविद्यालय अनुदान आयाग न अधिस्नातक तथा पी एच डी के बीच में एक सत्रीय (या कहीं-कहीं अशकालीन दा सत्रीय भी) एम फिल पाठ्यक्रम आरभ करने की अनुशसा की है। पर यू जी सी की सभी अनुशसाये मानन के लिए सभी विश्वविद्यालय अनिवार्यत बाध्य नहीं है। यही कारण है कि कई विश्वविद्यालयों म कई विषयों म अभी तक एम फिल पाठ्यक्रम का विकास ही नहीं किया गया है वहा अभी तक अधिस्नातक परीक्षा पास विद्यार्थी ही पी एच डी के लिए पात्र माने जाते है। एम फिल पाठ्यक्रम से शोध के स्तर मे सुधार की आशा की गई थी पर उसे भी विश्वविद्यालय की मनमानी ने कार्यरूप में परिणत नहीं होने दिया।

समाज विज्ञानों मे भौतिक विज्ञाना की तरह प्रयोग नहीं किये जा सकते कारण कि समाज विज्ञानी जिन पर प्रयोग करते है वे निर्जीव वस्तुएँ नहीं है जिन बालकों या विद्यार्थियो पर प्रयोग किया गया है या जिनसे सूचनाएँ प्राप्त की गई हैं वे प्रतिवेदन पहुँचने तक परिवर्तित हो जाते है–बालक का मन/विचार हर क्षण बदलता है। इसलिए एक बार प्राप्त किया गया निष्कर्ष हर समय हर बालक पर हर स्थिति में समान रूप से लागू हागा ऐसी

आशा नहीं की जा सकती। इस प्रकार समाज विज्ञानों मे शोध के निष्कर्ष प्राकृतिक या शुद्ध विज्ञानो की तरह तो अपक्षानुसार या पूर्व निश्चित प्राप्त नहीं होत हैं तथा न ही शत-प्रतिशत सही रूप से लागू हो सकते है। समाजविज्ञानी सामान्यीकरण पर पहुचते है पर समाज म भी भिन्नता पाई जाती है एक समाज को सस्कृति से दूसर समाज मे भी भिन्नता पाई जाती ह एक समाज की सस्कृति दूसरे समाज की सस्कृति से भिन्न होती है।

इसक अतिरिक्त समाज विज्ञानी भी शोधकर्ता होने के पूर्व समाज का सदस्य है। उस पर अच्छे बुर वाँछनीय-अवाँछनीय सभी बातों का प्रभाव पडता है। किसी भी प्रकार का निर्णय लेते वक्त वह अपने मनोभावों से सचालित हाता है उसकी विचारधारा दर्शन वातावरण उसके निर्णय को प्रभावित करत है। समाज विज्ञानी इन सब तथ्यो तथा पृष्ठभूमि से न चाहते हुए भी अनजाने म निष्कर्षों का प्रभावित कर सकता है। एक हस्तक्षेप पसद न करन वाला अर्थशास्त्री उदाहरण के लिए, मुक्त व्यापार से जुडे प्रकरण या समस्या पर शोध करवाना पसद करेगा। इसी प्रकार की स्थिति शैक्षिक अनुसधान क लिए भी आ सकती है। और, न्यूनाधिक रूप से उसके निष्कर्ष उसकी वैयक्तिक मूल्य सरचना से प्रभावित हो सकते है। और वह शुद्ध या प्राकृतिक विज्ञानी की तरह ही निर्णय लगा एसी आशा नहीं की जा सकती। इस स्थिति में भी अनुसधान का स्तर गिरता है।

अनुसधानकर्ता की मूल्य सरचना के साथ ही जरा भिन्न एक कदम आगे बढकर देख तो ज्ञात हाता है कि अनुसधानकर्ता निर्धारित उद्देश्यो के विपरीत निष्कर्षो के प्राप्त होने पर उसके उद्देश्यो से ही सशोधन कर लिया उन्हे बदल दिये कई बार एसा करना शोध निदशक की जानकारी मे होता है तथा कई बार नहीं भी । विद्यार्थी अपने शोध निदेशक की अप्रसन्नता माल न लेने के कारण निष्कर्ष बदल लेता है। एसा प्राय परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए किया जाता है। एक विवेकी अनुसधानकर्ता का यह नैतिक एव व्यावहारिक दायित्व है कि वह जो भी जैसे भी निष्कर्ष प्राप्त करता है साहस पूर्वक उन्हें उसी रूप म प्रस्तुत कर। यही व्यावहारिक नैतिकता का आग्रह है।

कई अनुसधान कार्य निरीक्षण या अवलोकन तकनीक पर आधारित हात ह। कइ बार निरीक्षणकर्ता को समक एकत्र करने का उद्देश्य ही ज्ञात नहीं हाता उसे नहीं मालूम कि उस क्या सूचनाएँ लनी है फिर वह भी समाज का सदस्य है उस पर भी अच्छ बुर का प्रभाव पडता है। कई बार सहभागिता निरीक्षण के समय सूचना दाता जागरूक होने से सही प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। एक बात और भी कि न हा निरीक्षणकर्ता को सूचना एकत्र

करने का विधिवत ट्रेनिंग मिला हाती है। इन गलत सूचनाओं से शोध की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पडने की पूरी-पूरी सभावना रहती है।

एक और कठिनाई यह है कि यदि शोधार्थी की पृष्ठभूमि मनाविज्ञान की है तथा उसे न्यून शैक्षिक सम्प्राप्ति के घटकों की जाच करनी है परीक्षण करना है-ऐसा व्यक्ति किसी एक विषय की आर झुक सकता है। बुद्धिलब्धि भी देखनी है ता यह शोधार्थी सभी पूर्वाग्रह छाड देगा-यह सम्भव नहीं है। बुद्धिलब्धि क लिए स्थानीय भाषा म या अभाषीय परीक्षण सामग्री यदि नहीं है तो अन्य उपकरणों से इसका सही-सही मापन होगा एसा सोचना भी बहुत बडी भूल है। या शोधार्थी या मार्ग निर्देशक की भिन्न-भिन्न पृष्ठ भूमि म भी शाध का स्तर गिरने की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है और एस अनुसधान काय धडल्ले से सम्पन्न हो रहे है।

अनुसधान के स्तर गिरने का एक और स्रोत है पुस्तकालय सेवायें। टिप्पणिया लेन पाद टिप्पणी बनाने सदर्भ साहित्य की सूची तैयार करने का अधूरा ज्ञान अपनी भूमिका निभाता है। आज स्थिति यह है कि पाद टिप्पणी तथा सदर्भ साहित्य की टिप्पणी म कोई अन्तर ही नहीं किया जाता इनको तैयार करने का ज्ञान एव कौशल शोधार्थियों को होता ही नहीं ह। यहा यह याद रखा जाना चाहिए कि एक अच्छा शिक्षक या अच्छा विद्वान सन्दर्भ साहित्य क क्षेत्र मे भी अच्छा कार्य करेगा यह जरूरी नहीं है। अच्छा शिक्षक या विद्वान हाना एक बात है तथा अच्छी सन्दर्भ सूची या पाद टिप्पणी तैयार करना पूर्णत दूसरी या भिन्न बात है और सम्भव है एक अच्छा विद्वान पाद टिप्पणी तैयार करने की कला मे पारगत या निष्णात न हो/पाद टिप्पणी का विवरण देते समय वर्ष तथा पृष्ठ सख्या के बारे पूर्णतया आश्वस्त हो लेना चाहिए। अन्यथा पाठकों को मूल पाठ देखते समय असुविधा हाती है। इसलिए सावधानी बरती जानी चाहिए। इतना ही नहीं शोधार्थियों व मार्ग निर्देशक भी कइ उदाहरणा म इस कौशल में परिपक्व नहीं हाते। पाद टिप्पणी बनाना जानते हैं तो लखक सम्पादक एक से अधिक लेखक तथा पत्रिका की पाद टिप्पणियों में कोई अन्तर नहीं होता। इस दोष से मुक्ति पाने क लिए पुस्तकालय सेवा को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। इसकी नितान्त आवश्यकता है। पर दयनीय स्थिति तो तब हाती है जब स्वय शिक्षक ही इस ज्ञान के क्षेत्र में कोरे होते है उनसे कैसे उच्च स्तर के कार्य की त्रुटि या दोष रहित काय की आशा की जाये? यह देखा गया है कि टिप्पणिया बनाने या पाद टिप्पणी का कौशल विकसित करने के लिए समय विभाग चक्र म कोई प्रावधान ही नहीं है इस काय के लिए कालाश ही नहीं रखा गया है। शोध प्रतिवेदन का स्तर सुधारने के लिए, उनका महत्व बनाय रखन क लिए इस क्षेत्र में पयाप्त ध्यान तथा समय दिया ही जाना चाहिए। न केवल इतना ही बल्कि शाधार्थियों का पयाप्त अभ्यास भी कराया जाना चाहिए। जिन ग्रन्थों पत्र-पत्रिकाओं

आशा नहीं की जा सकती। इस प्रकार समाज विज्ञानों में शोध के निष्कर्ष प्राकृतिक या शुद्ध विनाना की तरह तो अपेक्षानुसार या पूर्व निश्चित प्राप्त नहीं होते हैं तथा न ही शत-प्रतिशत सही रूप से लागू हो सकते है। समाजविज्ञानी सामान्यीकरण पर पहुचते है पर समाज में भी भिन्नता पाई जाती है एक समाज की सस्कृति से दूसरे समाज मे भी भिन्नता पाई जाती है एक समाज की सस्कृति दूसरे समाज की सस्कृति से भिन्न होती है।

इसके अतिरिक्त समाज विज्ञानी भी शोधकर्ता होने के पूर्व समाज का सदस्य है। उस पर अच्छे बुरे वॉछनीय-अवॉछनीय सभी बातों का प्रभाव पडता है। किसी भी प्रकार का निणय लेते वक्त वह अपने मनाभावों से सचालित होता है उसकी विचारधारा दर्शन वातावरण उसके निर्णय को प्रभावित करते है। समाज विज्ञानी इन सब तथ्यो तथा पृष्ठभूमि से न चाहते हुए भी अनजाने म निष्कर्षों को प्रभावित कर सकता है। एक हस्तक्षेप पसद न करने वाला अर्थशास्त्री उदाहरण के लिए, मुक्त व्यापार से जुडे प्रकरण या समस्या पर शोध करवाना पसद करेगा। इसी प्रकार की स्थिति शैक्षिक अनुसधान के लिए भी आ सकती है। और, न्यूनाधिक रूप से उसके निष्कर्ष उसकी वैयक्तिक मूल्य सरचना से प्रभावित हो सकते है। और यह शुद्ध या प्राकृतिक विज्ञानी की तरह ही निर्णय लेगा एसी आशा नहीं की जा सकती। इस स्थिति मे भी अनुसधान का स्तर गिरता है।

अनुसधानकर्ता की मूल्य सरचना के साथ ही जरा भिन्न एक कदम आगे बढकर देखे तो ज्ञात होता है कि अनुसधानकर्ता निर्धारित उद्देश्यों के विपरीत निष्कर्षों के प्राप्त होने पर उसके उद्देश्यो से ही सशोधन कर लिया उन्हें बदल दिये कई बार ऐसा करना शोध निदेशक की जानकारी में होता है तथा कई बार नहीं भी । विद्यार्थी अपने शोध निदेशक की अप्रसन्नता मोल न लेने के कारण निष्कर्ष बदल लेता है। ऐसा प्राय परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए किया जाता है। एक विवेकी अनुसधानकर्ता का यह नैतिक एव व्यावहारिक दायित्व है कि वह जो भी जैसे भी निष्कर्ष प्राप्त करता है साहस पूर्वक उन्हें उसी रूप मे प्रस्तुत करे। यही व्यावहारिक नैतिकता का आग्रह है।

कई अनुसधान कार्य निरीक्षण या अवलोकन तकनीक पर आधारित होते है। कई बार निरीक्षणकर्ता को समक एकत्र करने का उद्देश्य ही ज्ञात नहीं होता उसे नहीं मालूम कि उसे क्या सूचनाऐं लेनी है फिर वह भी समाज का सदस्य है उस पर भी अच्छे बुरे का प्रभाव पडता है। कई बार सहभागिता निरीक्षण के समय सूचना दाता जागरूक होने से सही प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। एक बात और भी कि न ही निरीक्षणकर्ता को सूचना एकत्र

करने की विधिवत ट्रेनिंग मिला होती है। इन गलत सूचनाओं से शोध की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की पूरी-पूरी संभावना रहती है।

एक और कठिनाई यह है कि यदि शोधार्थी की पृष्ठभूमि मनोविज्ञान की है तथा उसे न्यून शैक्षिक सम्प्राप्ति के घटकों की जाँच करना है परीक्षण करना है-ऐसा व्यक्ति किसी एक विषय की ओर झुक सकता है। बुद्धिलब्धि भी देखनी है तो वह शोधार्थी सभी पूर्वाग्रह छोड़ देगा-यह सम्भव नहीं है। बुद्धिलब्धि के लिए स्थानीय भाषा में या अभाषीय परीक्षण सामग्री यदि नहीं है तो अन्य उपकरणों में इसका सही-सही मापन होगा ऐसा मानना भी बहुत बड़ी भूल है। यो शोधार्थी या मार्ग निर्देशक की भिन्न-भिन्न पृष्ठ भूमि में भी शोध का स्तर गिरने की पूरी-पूरी सम्भावना रहती है और ऐसे अनुसंधान कार्य धड़ल्ले से सम्पन्न हो रहे हैं।

अनुसंधान का स्तर गिरने का एक और स्रोत है पुस्तकालय सेवाएं। टिप्पणियां लेने बाद टिप्पणी बनाने संदर्भ साहित्य की सूची तैयार करने का अधूरा ज्ञान अपनी भूमिका निभाता है। आज स्थिति यह है कि पाद टिप्पणी तथा सदर्भ साहित्य की टिप्पणी में कोई अन्तर ही नहीं किया जाता इनको तैयार करने का ज्ञान एवं कौशल शोधार्थियों का होता ही नहीं है। यह भी याद रखा जाना चाहिए कि एक अच्छा शिक्षक या अच्छा विद्वान सन्दर्भ साहित्य के क्षेत्र में भी अच्छा कार्य करेगा यह जरूरी नहीं है। अच्छा शिक्षक या विद्वान होना एक बात है तथा अच्छी सन्दर्भ सूची या पाद टिप्पणी तैयार करना पूर्णतः दूसरी या भिन्न बात है और सम्भव है एक अच्छा विद्वान पाद टिप्पणी तैयार करने की कला में पारंगत या निष्णात न हो/पाद टिप्पणी का विवरण देते समय वर्ष तथा पृष्ठ संख्या के बारे पूर्णतया [illegible] चाहिए। अन्यथा पाठकों को मूल पाठ देखते समय असुविधा होती है। इसलिए सावधानी बरती जानी चाहिए। इतना ही नहीं शोधार्थियों के मार्ग निर्देशक भी कई उदाहरणों में इस कौशल में परिपक्व नहीं होते। [illegible] जानते हैं तो लेखक सम्पादक एक से अधिक लेखक तथा पत्रिका की [illegible] टिप्पणियों में कोई अन्तर नहीं होता। इस दोष से मुक्ति पाने के लिए पुस्तकालय सेवा को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। इसका नितान्त आवश्यकता है। [illegible] दयनीय स्थिति तो तब होती है जब स्वयं शिक्षक ही [illegible] कोरे होते हैं उनसे कैसे उच्च स्तर के कार्य की [illegible] की आशा की जाये? यह देखा गया है कि टिप्पणियां [illegible] का कौशल विकसित करने के लिए समय विभाग [illegible] ही नहीं है इस कार्य के लिए कालांश ही नहीं [illegible] का स्तर सुधारने के लिए, उनका महत्व [illegible] पर्याप्त ध्यान तथा समय दिया हो जाना [illegible] शोधार्थियों का पर्याप्त अभ्यास भी कराया [illegible]

से सहायता प्राप्त हुई उनकी सूची दी जानी चाहिए। यदि किसी अज्ञात सामग्री की मदद ली गई है तो इसे बिना किसी भेद भाव के सही रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। सन्दर्भ साहित्य कैसे तैयार करना है-कालक्रमानुसार या वर्णमालानुसार यह निश्चित करना महत्वपूर्ण ह तथा इस विषय अनुसार तैयार करना हैं- पृष्ठभूमि सम्प्रत्यय सन्दर्भ साहित्य शोधविधि क्षेत्रवार आदि। किसी भी प्रकार का निर्णय लेने से पूर्व शोधार्थी को पक्ष-विपक्ष की सभी बातों पर ध्यान देना चाहिए। शोध निदेशक के साथ विचार विमर्श कर स्पष्ट कर लेना चाहिए। कई शोध छात्र तालिकायें भी पाठ्य सामग्री के साथ ही जोड देते हैं। इस सम्बन्ध में सर्वमान्य नियमो का पालन होना चाहिए। यदि तालिका 5 पंक्तियां से अधिक विस्तारवाली है तो उसके लिए पृथक्-पृष्ठ काम म लिया जाना चाहिए। तालिका का स्रोत यदि आवश्यक हो तो उसी के नीचे या चरण लेखन के रूप मे पूरे विवरण सहित देना चाहिए। ऐसा न करने से अनुसधान की गुणवत्ता का स्तर प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।

सूचनाए सग्रह करने के जिन उपकरणो प्रश्नावलियों अनुसूचियों, को चाहे वे स्वनिर्मित ही क्यो न हो सहायता ली गई है उन्हे परिशिष्ट में दिया ही जाना चाहिए। जो सर्वसुलभ हो उन्ह एक बार छोडा जा सकता है पर स्वनिर्मित साधनों या प्रश्नावलिया को तो परिशिष्ट मे जोडा ही जाना चाहिए। कई अनुसधानकर्ता इस पर ध्यान नहीं देते इस गलती से बचना चाहिए। एसा करके शोध ग्रन्थ की गुणवत्ता बढाई जा सकती है।

अनुसधान कार्य का स्तर सुधारने क लिए तथा उसकी जनसाधारण सहित समाज के सभी वर्गों के लिए उपयोगिता की दृष्टि से रेखाचित्र ग्राफ वृत्तचित्र आदि का भरपूर प्रयोग करना चाहिए, इन दृश्य साधनो की अपनी उपयोगिता है पर हर अनुसधान कर्त्ता हर क्षेत्र म कुशल हो महारत हासिल किये हो- ऐसी न तो अपेक्षा करनी चाहिए तथा न ही व्यवहार मे ऐसा सम्भव है। अनपढ या कम पढा लिखा पाठक रेखाचित्रो या ग्रन्थ की सहायता से शीघ्र ही अनुमान लगा लेते हैं उन्हें विषय वस्तु समझने में मदद मिलती है। यदि ऐसा होता है तो अनुसधान कार्य की उपयोगिता कई गुणा बढ जाती है भाषा के सम्बन्ध में विशाल शब्द भण्डार तथा योग्यता शोधकर्त्ता में होनी चाहिए। इसके अभाव मे गुणवत्ता का निर्वाह नहीं हो सकता। टकण के पश्चात टकण की अशुद्धियाँ निश्चित रूप से सुधारी जानी चाहिए। अच्छा यह हागा कि अशुद्धिया का परिष्कार समान स्याही से ही लिया जाये।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में कई शोधकर्त्ता अध्याय सार जोडते है। यदि ऐसा करना आवश्यक हो तो अनावश्यक सामग्री जोडने से हर सम्भव प्रयत्न कर बचा जाना चाहिए। काई भी शोधकर्त्ता सजग रह कर यह कार्य कर सकता है।

कुछ अनुसधान कार्य क्षेत्रीय कार्यों पर या बाह्य सूचनाओं पर आधारित

हो सकते हैं। ऐसे अनुसधान कार्य तो और भी अन्य प्रकार के दोषों से युक्त रहते हैं। यदि पूर्व सूचना देकर सूचनाएँ या समक एकत्र किये गये तो सूचना दाता मित्रो तथा अभिभावको से सलाह मशविरा कर सकता है यह सजग हो सकता है इससे सही सूचना प्राप्त नहीं होती है वे तैयारी कर सकते हैं जिससे सही सूचनाएँ या वास्तविक समक प्राप्त नहीं होंगे। स्वय को अच्छे रूप में प्रस्तुत करना मानव की कमजोरी रही है। सूचना देकर निरीक्षण करने पर विद्यालय कितना सुव्यवस्थित मिलता है यह किसी से छिपा नहीं है। इतना सही मान लीजिए कि कोई अनुसधान कार्य किशोरो के आत्म प्रत्यय से सम्बधित है और शोधकर्त्ता आत्मप्रत्यय का स्तर जानने के लिए हरनामसिह का परीक्षण या उपकरण प्रयोग करता है। ऐसी स्थिति में शोध का स्तर अवश्य ही घटिया रहेगा क्योंकि हरनामसिह का परीक्षण जाच तो आत्म प्रत्यय की ही करता है पर यह परीक्षण बालको के लिए है न कि किशोरों के लिए। इसका कारण यह है कि शोधकर्त्ता को उपयुक्त परीक्षण/उपकरण का ज्ञान ही नहीं है।

इन मनोवैज्ञानिक उपकरणों का एक और दोष है- वह यह है कि कई उपकरण विदेशों मे या पाश्चात्य देशों मे प्रमापीकृत हुए है तथा सास्कृतिक वातावरण से मुक्त (कलचर फ्री) भी नहीं है। इन उपकरणो से प्राप्त सूचनाओ पर आधारित या प्राप्त निष्कर्ष भी सही ही होग, विश्वास के साथ ऐसा नहीं कहा जा सकता। शोध कार्य आरम्भ करने के पूर्व ऐसे उपकरणों को जाँचा-परखा जाना चाहिए। एक कदम और, 2-3 दशको पूर्व भारतीय न्यादर्श पर प्रमाणीकृत उपकरण आज भी उतना ही प्रभावी होगा यह भी पूरे विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता। समय के अन्तराल पर एसे उपकरणो की विश्वसनीयता फिर से देखी जानी चाहिए तथा उपयुक्त न पाये जान पर उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि ऐसे उपकरण प्रयोग किये जाते हैं तो शोध का स्तर गिरने की पूरी सभावना रहती है।

क्षेत्रीय सूचनाओ पर आधारित शोध कार्यों में एक और दोष न्यादर्श सम्बन्धी यह पाया जाता है कि न्यादर्श का चयन सजगतापूर्वक निष्पक्ष हो कर नहीं किया जाता है। मान लीजिये- किसी विद्यालय के 500 छात्रो म से हर दसवा छात्र यथा 1 11 21 31 41 51 न्यादर्श में सम्मिलित किया जाना है। पर शोधकर्त्ता न्यादर्श चयन की उपयुक्त विधि का अनुसरण नहीं करता है या इस हेतु पचीदगियों या बारीकियों से बच कर हर कोई जो भी उपलब्ध हुआ 50 छात्रो को चुन लेता है। ऐसे शोध से प्राप्त निष्कर्ष सामान्यीकरण पर आधारित होंगे या पूरी जनसख्या का प्रतिनिधित्व करेंगे-इसमें सन्देह ही रहेगा। ऐसी स्थिति में भी शोध का स्तर गिरा है।

भारतीय स्थितियों में कई क्षेत्रों में उपकरणों से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित शोध कार्य वैध नहीं माने जा सकते। मुख्यत यौन सम्बन्धी दाम्पत्य

जीवन पर आधारित शोधा में प्रश्नावली अनुसूची आदि प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस क्षेत्रों म उत्तरदाताओ से सही उत्तर की मन की बात जानने की आशा नहीं की जा सकती। कितना ही आप विश्वास दिलाये कि प्राप्त सूचनाए गोपनीय रहगी तथा केवल शोध कार्य में ही उपयोग की जायगी भारतीय उत्तरदाता मन की बात कह ही देगा ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता। शोधकर्त्ता अपने प्रतिवेदन म इस दोष का सकत भी कर देते हैं पर एसे नाजुक क्षेत्रों में प्राप्त सूचनाओं की अन्य साधना या उपकरणो या तकनीकों स पुष्टि कर लनी चाहिए, उदाहरणार्थ- साक्षात्कार एव निरीक्षण आदि। पारिवारिक आय के सम्बन्ध में भी यही स्थिति न्यूनाधिक रूप से पाई जा सकती है।

लेखक को एक बार एक पी एच डी के निदशक ने बडी शिथिलता से अनौपचारिक भट के समय बताया कि वे अपने विद्यार्थियों को तीन भागों मे बाँट लेते है-

1 पी एच डी का पजीकरण कराओ तथा मौखिक परीक्षा दो।
2 पी एच डी का पजीकरण कराओ श्रुतलेख लिखो प्रतिवेदन टाईप कराओ विश्वविद्यालय को प्रस्तुत करो तथा मौखिक परीक्षा दो।
3 तीसर वर्ग म व विद्यार्थी आते हैं जो पजीकरण करवाते हैं पढते हैं सूचनाए सग्रह करते हैं टिप्पणिया लेते हैं प्रतिवेदन तैयार करते हैं शोध निदेशक से अनुमादित करवाते हैं प्रतिवेदन में सशोधन होता है टाईप करवाया जाता है विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया जाता है मौखिक परीक्षा दी जाती है।

इन तीना प्रकार के विद्यार्थियो से शाध निदेशक महोदय अपने गुणानुक्रम की दृष्टि से स्तरानुसार विद्यार्थी की स्थिति एव गभीरतानुसार शुल्क वसूल करते हैं।

पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि इस प्रकार के शोध निदेशकों की उपज पी एच डी पाने वाले विद्यार्थी कैसे होगे? पाठक पटना चण्डीगढ दिल्ली बम्बई के शोध निदेशकों के व्यवहार से भी अपरिचित नहीं होगें। शोध ग्रन्थ किसका मुखपृष्ठ कहा किसने बदला? मौखिक परीक्षा किसने दी उपाधि किसको मिली? दिल्ली में विज्ञान सकाय की शौध छात्रा के साथ निर्देशक का क्या कैसा व्यवहार रहा? पाठक इन घटनाओं से भलीभाँति परिचित होंगे।

अब आप साच सकते हैं कि अनुसधान कार्य का स्तर गिरने में कौन कितना उत्तरदायी है? यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध का स्तर सुधार कर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा के लिए समान धरातल पर लाना है तो इन स्थितियों मे सुधार करना ही होगा अन्य कोई विकल्प नहीं है।



डॉ. जमनालाल बायती, डी. लिट.

जन्म 1938 पारसोली (चित्तौड़गढ़) राजस्थान
शिक्षा एम. ए. (चार बार) एम. कॉम. एम. एड. ए. एन. आई. ई. साहित्य रत्न पी. जी. पत्रकारिता डिप्लोमा, पी एच. डी. (शिक्षा) डी. लिट. (यू. एस. ए. शिक्षा)
प्रकाशित पुस्तकें बालकों की सामान्य समस्यायें शैक्षिक विचार, सफल साक्षात्कार कैसे दें? शिक्षा के नये उभरते क्षितिज, शिक्षक मोड़ पर, बालक की समस्यायें नैदानिक परीक्षण एवं उपचारात्मक शिक्षण, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, रोजगार निर्देशिका, टीचिंग इन एजूकेशन प्रॉब्लम्स ऑफ एजूकेशन इन थर्ड वर्ल्ड स्टूडेन्ट लिडरशिप व्यावसायिक शिक्षा भाग एक दो नौकरी कैसे पायें? नॉलेज ऑफ रिजल्ट्स
प्रकाश्य शैक्षिक विविधा तृतीय विश्व के सन्दर्भ में शिक्षा की समस्यायें
पदक एवं सम्मान आगरा मेरठ जयपुर मद्रास तथा पटना से प्रकाशित पांच राष्ट्रीय पत्रिकाओं के सम्पादक मण्डल के सदस्य

- अखिल भारतीय शैक्षिक शोध परिषद के उपाध्यक्ष
- 18 विभिन्न राष्ट्रीय शैक्षिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठनों की आजीवन सदस्यता
- शिक्षा संकाय की पूर्ण सदस्यता
- पी एच डी शोध छात्रों के परीक्षक/पर्यवेक्षक
- राष्ट्रीय एवं राजस्थानीय विभिन्न प्रतियोगिताओं में अनेक बार पुरस्कृत
- राष्ट्रीय एवं राजस्थानीय संगोष्ठियों में सम्पर्क व्यक्ति
- युनाइटेड राइटर्स एसोसिएशन ऑफ इण्डिया से श्रेष्ठ लेखक एवं कम्प्यूटर एवार्ड
- राज्य स्तरीय शैक्षिक निदेशन के राज्य कार्य का सम्पादन

पूर्व प्राचार्य : शिक्षा रत्न डॉ. राधाकृष्णन उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान, बीकानेर (राज.)
सम्प्रति प्रा. स्नातकोत्तर राजकीय उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थान, बीकानेर (राजस्थान)